ग्राम्य अर्थशास्त्र

३८९९

(उत्तर-प्रदेश के हाई-स्कूल और इंटरमीडियेट बोर्ड की हाई-स्कूल परीक्षा के अर्थशास्त्र के लिये स्वीकृत)

लेखक

पण्डित दयाशंकर दुबे, एम० ए०, एल-एल० बी०

अर्थशास्त्र अध्यापक, प्रयाग विश्वविद्यालय

श्री शंकरसहाय सक्सेना, एम० ए०, बी० काम०

प्रिंसिपल, महाराणा कालेज, उदयपुर तथा डीन, कामर्स-फैकल्टी

राजपूताना विश्वविद्यालय

और

श्री महेशचंद, एम० ए०, बी० एस-सी (आनर्स), 'विशारद'

अर्थशास्त्र अध्यापक, प्रयाग विश्वविद्यालय

प्रकाशक

नेशनल प्रेस

इलाहाबाद

ग्यारहवाँ संस्करण] १९५२ [मूल्य २)

भूमिका

मैं उन व्यक्तियों मे से हूँ जो अर्थशास्त्र के ज्ञान का प्रचार छोटे दर्जे के विद्यार्थियों में भी चाहते हैं। इसलिये मैंने अर्थशास्त्र सम्बन्धी कई विषयों पर पाठ अपनी 'बालबोध' पुस्तक में दिये। वह पुस्तक चार भागों में प्रकाशित हुई और कई वर्षों तक उत्तर प्रदेश की प्रारम्भिक पाठशालाओं के लिए पाठ्य-ग्रन्थ के रूप मे स्वीकृत रही। मुझे यह सूचित करते हर्ष होता है कि इस पुस्तक के अर्थशास्त्र सम्बन्धी पाठों को अध्यापकों और विद्यार्थियों ने बहुत पसन्द किया। इससे यह भी सिद्ध हो गया कि अर्थशास्त्र ऐसा सरल विषय है, जिसका ज्ञान छोटे बच्चों को भी प्रारम्भिक पाठशालाओं मे आसानी से कराया जा सकता है।

अर्थशास्त्र का विषय सरल और महत्वपूर्ण होने पर भी उसे प्रारम्भिक पाठशालाओं के पाठ्य-ग्रंथों में अभी तक स्थान नहीं मिला। सन् १६१७ तक तो, जिस वर्ष मैंने बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की, अर्थशास्त्र को बी० ए० से नीचे दर्जे की परीक्षा के पाठ्य विषयों में स्थान नहीं दिया गया था। उन दिनों अर्थशास्त्र के विषय का पढ़ना बी० ए० क्लास से ही आरम्भ होता था। इन्टरमीडियट तक पढ़ने वालों को तो इस विषय का ज्ञान प्राप्त करने का अवसर ही नही मिलता था। कुछ वर्ष बाद अर्थशास्त्र को इंटरमीडियट के पाठ्य विषयो की सूची में स्थान मिला और सन् १६४० में ग्राम्य अर्थशास्त्र को उत्तरप्रदेश को हाई-स्कूल-परीक्षा के पाठ्य विषयों की सूची मे स्थान पहले-पहल मिला। ग्राम्य अर्थशास्त्र के पाठ्य क्रम के अनुसार ही यह पुस्तक तैयार की गई थी और इसका शीर्षक "ग्राम्य अर्थशास्त्र" रक्खा गया था। सन् १६०५ से पाठ्य विषय का नाम अर्थशास्त्र हो गया है। उसी के अनुसार प्रस्तुत पुस्तक की पाठ्य-सामग्री मे यथोचित परिवर्तन व परिवर्द्धन कर दिया गया हैं। अतः यद्यपि पुस्तक का शीर्षक वही पुराना "ग्राम्य अर्थशास्त्र" है, पुस्तक वर्तमान पाठ्यक्रम के अनुसार है। पुस्तक में इस बात का भी पूरा ध्यान रक्खा गया है कि अब भारत की सीमाएँ पहले-जैसी नहीं हैं और इसलिए यथा-संभव उदाहरण तथा समस्याएँ भारतीय सघ की हैं। पुस्तक का प्रस्तुत ग्यारहवाँ संस्करण इसकी उपयोगिता तथा प्रचार का द्योतक है। इस नवीन सस्करण में यथोचित सुधार तथा संशोधन किया गया है।

इसमें ज़मींदारी प्रथा की बुराइयों तथा जमींदारी उन्मूलन एक्ट का यथास्थान उल्लेख कर दिया गया है। सहकारी समिति सम्बन्धी अध्यायों में भी उचित सुधार किया गया है।

महाराणा कालेज उदयपुर के प्रिंसिपल श्री शंकरसहाय जी सक्सेना तथा श्री महेशचन्द जी के सहयोग से यह पुस्तक तैयार की गई है। हम लोग आशा करते हैं कि इस पुस्तक से हाई-स्कूल के विद्यार्थियों को ग्राम्य अर्थशास्त्र का विषय समझने में पहले से अधिक सहायता मिलेगी।

यदि कोई सज्जन इस पुस्तक की त्रुटियों की तरफ मेरा ध्यान आकर्षित करेंगे या इसको और भी अधिक उपयोगी बनाने के उपाय बतलावेंगे तो मैं उनका बहुत आभारी होऊँगा।

"श्री दुबे निवास"
दारागज (प्रयाग)
१ जुलाई, १९५२

दयाशंकर दुबे
अर्थशास्त्र अध्यापक
प्रयाग विश्वविद्यालय

विषय सूची

पहला अध्याय

अर्थशास्त्र के विभाग

दूसरा अध्याय

परिभाषाएँ

तीसरा अध्याय

उत्पत्ति

चौथा अध्याय

भारतीय गाँव की खास पैदावारें

पाँचवाँ अध्याय

घरेलू तथा स्थानीय उद्योग-धंधे

छठा अध्याय

आवश्यकताएँ

सातवाँ अध्याय

भारतीय रहन-सहन का दर्जा

आठवाँ अध्याय

भोजन कितना और कैसा हो ?

नवाँ अध्याय
विनिमय

दसवाँ अध्याय
ग्रामीण फसल की बिक्री

ग्यारहवाँ अध्याय
वितरण

बारहवाँ अध्याय
औद्योगिक मजदूर

तेरहवाँ अध्याय
बटाई-प्रथा

चौदहवाँ अध्याय
जमींदार और किसान

पन्द्रहवाँ अध्याय
ग्रामों की समस्याओं का दिग्दर्शन

सोलहवाँ अध्याय
किसानों का निराशावादी दृष्टिकोण

सत्रहवाँ अध्याय
गाँव की सफाई

अट्ठारहवाँ अध्याय
ग्रामीण शिक्षा

उन्नीसवाँ अध्याय

मनोरंजन के साधन

बीसवाँ अध्याय

स्वास्थ्य-रक्षा के सिद्धान्तों का प्रचार

इक्कीसवाँ अध्याय

पशु-पालन

बाईसवाँ अध्याय

खेती की उन्नति के उपाय

अट्ठाइसवाँ अध्याय

गाँव पंचायत

उन्तीसवाँ अध्याय

सहकारिता तथा सहकारी साख समितियाँ

तीसवाँ अध्याय

गैर-साख कृषि सहकारी समितियाँ

इकतीसवाँ अध्याय

सहकारी समितियों के सघ

बत्तीसवाँ अध्याय

सेन्ट्रल सहकारी बैङ्क

तैंतीसवाँ अध्याय

प्रदेशीय सहकारी बैङ्क

चौंतीसवाँ अध्याय

ग्राम्य-अर्थशास्त्र

पहला अध्याय

अर्थशास्त्र के विभाग

अर्थशास्त्र पढ़ने से पहले तुम अवश्य यह जानना चाहते हो अर्थशास्त्र क्या है ? इसको समझना कठिन है या सरल ? सबसे पहले इस अन्तिम प्रश्न को ही ले लें। विश्वास करो, तुमने भले ही अर्थशास्त्र का पाठ्यक्रम पहले न पढा हो, परन्तु तुम अर्थशास्त्र के अनुसार काम करते रहे हो, तुमने अर्थशास्त्र के नियमों का अपने भरसक भली प्रकार उपयोग किया है। सोते, उठते, बैठते, पढ़ते, लिखते, दौड़ते, वस्तु खरीदते व बेचते, फीस देते—सभी कार्यों में तुम अर्थशास्त्र के नियमों का पालन करते रहे हो। जिस विद्या का तुमने इस प्रकार उपयोग किया है उसको पाठ्य-विषय के रूप मे पढना उसी प्रकार सरल है जिस प्रकार मातृ भाषा बोलने वाले बालक को हिन्दी पढना। अर्थशास्त्र दैनिक जीवन की विद्या है। और इसकी सरलता शीघ्र ही तुम्हे स्पष्ट हो जायगी।

अर्थशास्त्र कैसी विद्या है ? अगर तुम अर्थशास्त्र शब्द को ही ध्यान से समझो तो तुम्हारे मन मे यह भाव अवश्य आएगा कि अर्थशास्त्र शायद "अर्थ का शास्त्र" है। "अर्थ" शब्द धन के लिए भी प्रयोग होता है और शास्त्र विधिपूर्ण विद्या को कहते हैं। इसलिए तुम सोच सकते हो कि शायद अर्थशास्त्र मे धन सम्बन्धी अध्ययन विधिपूर्ण किया जाता है। तुम्हारा ऐसा सोचना बहुत कुछ ठीक है। व्यावहारिक जीवन में हमारा तुम्हारा क्या सभी का काम धन के बिना नहीं चलता। अतः धन के कमाने और खर्च करने आदि के सम्बन्ध मे किसी विषय में विचार करना उचित ही है।

लेकिन हम तुम्हारा ध्यान अर्थशास्त्र के असली मतलब की ओर दिलाना चाहते हैं। ऊपर हमने तुम्हारे दिमाग मे उठने वाले एक विचार की ओर

ध्यान दिलाया है। वह कुछ-कुछ वैसा ही है जैसा हम कहे कि "फाउन्टेनपेन" का मतलब है कि फाउन्टेन का पेन अर्थात् तालाब का कलम। अर्थशास्त्र के असली अर्थ जानने से पहले तुम यह सोचो कि अपने जीवन में तुम विभिन्न काम क्यों करते हो। इसी लिए न, कि तुमको खाने, पीने, पढने, लिखने आदि की आवश्यकता मालूम पड़ती है। दर असल कुछ काम तो हम इस-लिए करते हैं कि उनके बिना जीवित रहना सम्भव नहीं है। भोजन करना तथा पानी पीना ऐसे ही काम हैं। कुछ काम हम इस लिए करते हैं क्योंकि हम जानते हैं कि उनके बिना हम जीवन में वह तरक्की न कर सकेंगे जो हम करना चाहते हैं। पढना, लिखना, धन कमाना ऐसे कामों के उदाहरण-स्वरूप गिनाए जा सकते हैं। और कुछ काम हम इसलिए करते हैं क्योंकि हमारा मन कुछ इच्छाएँ प्रकट करता है। उदाहरणार्थ, हमको भूख ही मिटानी है तो हम नित्य दाल रोटी खा सकते हैं। हमको विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट पदार्थ बनवाकर या खरीदकर खाने की क्या जरूरत ? तुम कहोगे कि पेट तो गाय बैल भी भर लेते हैं अगर आदमी होकर हम ऐसा न करे तो गाय-बैल में और हममे अन्तर ही क्या रह जायगा। यही सही, मनुष्य होने के नाते तुम्हारी इच्छाएँ रहती हैं और उन्हें पूरा करने के लिए भी तुम काम करते हो। अतः सक्षेप मे हम कह सकते हैं कि जीवन चलाने के लिए, जीवन सफल बनाने के लिए तथा मानवी इच्छाओं की पूर्ति के लिए तुम काम करते हो। इसी बात को दूसरी प्रकार से भी कह सकते हैं। जीवित रहने, सफल बनाने अथवा अन्य कारणों से तुम्हारी आवश्यकताएँ बनती हैं। और उन्हें पूरा करने के लिए तुम विभिन्न काम करते हो। तुम उन्हे पूरा कर पाते हो या नही यह तो दूसरी बात है। परन्तु यह सत्य है कि अपनी आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए तुम प्रयत्न अवश्य करते हो।

अर्थशास्त्र (Economics) क्या है ?

अब अर्थशास्त्र क्या है इसको हम समझ सकते हैं। "अर्थशास्त्र वह जिसमे हम मनुष्य के उन प्रयत्नों का अध्ययन करते है जो आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए करता है।"

कोई मनुष्य अधिक प्रयत्न करता है तो वह अपनी बहुत सी

आवश्यकताओं (Wants) को पूरा कर लेता है और यदि वह थोड़ा ही प्रयत्न करता है तो उसकी कम आवश्यकताएँ ही पूरी हो सकेंगी। दूसरे शब्दों में पहला आदमी अमीर होगा और दूसरा गरीब। यही दशा एक देश की होती है। अगर किसी देश के लोग अधिक प्रयत्न करके प्रकृति से बहुत सी वस्तुएँ प्राप्त नहीं करते तो वह देश निर्धन रहेगा। अर्थशास्त्र मे मनुष्य के इन प्रयत्नों का ही अध्ययन किया जाता है। इसलिए अर्थशास्त्र के अध्ययन से हमें यह भी मालूम हो सकता है कि हम निर्धन क्यों हैं और किस प्रकार धनी बन सकते हैं।

"संक्षेप मे हम कह सकते है कि 'अर्थशास्त्र वह शास्त्र है जिसमें हम मनुष्य के अपने पालन-पोषण के लिए किए गए प्रयत्नों का अध्ययन करते है।"

उदाहरण के लिए विद्यार्थियों में से ऐसे बहुत से होगे जिनके पिताजी नौकरी करके, वकालत या डाक्टरी से धन उत्पन्न करते हैं। क्या कभी तुमने यह भी सोचा है कि तुम्हारे पिताजी इन पैसों को कैसे पैदा करते हैं और इनको कैसे खर्च करना चाहिए? क्या यह अच्छा होगा कि तुम्हारे पिता जी तनख्वाह पाते ही सब रुपयों को खर्च कर दे? नहीं, क्योंकि ऐसा करने से महीने भर का खर्च कैसे चलेगा! क्या तुम्हारे पिता जी सब रुपयों को मुफ्त मे ही बाँट देते हैं? क्या वे रुपये के बदले मे कुछ नहीं लेते? जब तुम मडी में अनाज खरीदने जाते हो तो रुपये के बदले में गेहूँ, चना, मटर, चावल आदि चीजे खरीदते हो। तुम लोगों मे से बहुत से गाँवो के रहने वाले हैं। वहाँ किसान खेती करके अनाज की उत्पत्ति करते हैं। जब फसल कटकर खलिहान मे आ जाती है तो उपज का थोड़ा सा हिस्सा तो खाने के लिए घर मे रख लिया जाता है और एक बहुत बड़ा हिस्सा व्यापारी के हाथ बेच दिया जाता है, लेकिन एक बात और है। इन सबके पहले खलिहान पर—नाऊ, धोबी, मालगुजार, महाजन आदि का धावा होता है। शहर की तरह गाँवों में नाऊ, धोबी, बढ़ई वगैरह को नकद पैसा मिलता नहीं। घर पीछे उनका हिस्सा बँधा रहता है। फसल कट जाने पर अनाज में से पहले उनका हिस्सा निकाल देना पड़ता है। महाजन जिनसे किसान रुपया उधार लेते हैं सूद की जगह अनाज ही ले लेते हैं।

अर्थशास्त्र के विभाग

ऊपर दिये हुए उदाहरण से यह साफ हो जाता है कि हर एक मनुष्य जो अपने भरण-पोषण के लिए प्रयत्न करता है अर्थात् कोई धन्धा या पेशा करता है उसको सबसे पहले धन पैदा करना पड़ता है, फिर वह उसके बदले उन चीजों को मोल लेता है जिनकी उसको आवश्यकता है, फिर वह उनका उपभोग करता है अर्थात् काम में लाता है या खर्च करता है और यदि उसने कुछ और लोगों की मदद से धन की उत्पत्ति की है तो उनका हिस्सा बाँटना पड़ता है। साराश यह है कि अर्थशास्त्र के अध्ययन के लिये हमें उसको चार विभागों में बाँट लेना चाहिए—

१—उत्पत्ति (Production)
२—उपभोग (Consumption)
३—विनिमय (Exchange)
४—वितरण (Distribution)

अब हम आगे इन चार विभागों के सम्बन्ध में विचार करते हैं।

उत्पत्ति (Production)

हम ऊपर कह आए हैं कि अर्थशास्त्र हमे उत्पत्ति के बारे में बहुत कुछ बतलाता है, पर यह उत्पत्ति है क्या बला ? क्या केवल किसान ही का सम्बन्ध उत्पत्ति से है ? नहीं। दर्जी, बढ़ई, हलवाई सबके सब उत्पत्ति का कार्य करते हैं। जुलाहा क्या करता है ? वह रुई के रेशों को इस प्रकार बुन देता है कि कपड़ा तैयार हो जाता है। दर्जी उसी कपड़े को क्या करता है ? वह आपके बदन का नाप लेकर उस कपड़े को काट-छाँटकर इस प्रकार मिलाता है कि उसकी बनाई हुई कमीज व कोट आपके बदन पर ठीक फिट कर जाती है। इसी प्रकार हलवाई मैदा, खोवा, चीनी वगैरह को इस प्रकार मिला कर आग पर भून कर तैयार करता है कि मिठाई बन जाती है। बढई लकड़ी और कुछ कीलों को इस प्रकार मिला देता है कि हमारा हल, खाट, कुर्सी या मेज बन जाती है। कुम्हार गीली मिट्टी को चाक पर प्रकार सँवारता है कि सकोरा, करई व हाँड़ी तैयार हो जाती हैं। न को ही ले लो। वह थोड़े से बीजों में मनों अनाज पैदा करता है। कैसे ? वह बीज को एक खास ढंग से खेत में रखता है। फिर इस

प्रकार से खाद व पानी डालता है कि बीज उनके तथा हवा के अंशों को लेकर अपना वेष बदल डालता है। उसमें से एक छोटा सा पौधा फूटकर निकलता है और यह पौधा अन्त में अन्न के सैकडों दाने पैदा करता है। कहने का मतलब यह है कि कोई भी अपनी ओर से कुछ नही जोड़ता। किसान से लेकर, जुलाहे और दर्जी तक सबके सब पहले से प्राप्त किसी वस्तु को इस प्रकार से रखते हैं कि उस वस्तु की उपयोगिता बढ जाती है। जहाँ पहले रुई हमारे बहुत कम काम की रहती है, वही रुई की कमीज या कोट को हम अपना बदन ढकने मे उपयोग करते है। **"इसलिये किसी वस्तु की उत्पत्ति से हमारा मतलब होता है उसे और उपयोगी बनाना। किसी चीज को पहले से अधिक उपयोगी बनाना ही धन की उत्पत्ति कहलाती है।"**

मान लीजिये आपके खेत के छोर पर आपका एक पुराना सूखा पेड़ खड़ा है। आप उसे बेंचना चाहते है और श्याम आपको बीस रुपये देने को तैयार है। आपको दाम कम जँचता है और स्वयं पेड काट-कर उसके तख्ते बना डालते हैं। इन तख्तो को आप तीस-पैंतीस रुपये में बेंच सकते हैं। पर यदि आप इन तख्तों से चौखट, कुर्सी, चारपाई आदि बना डालिये तो आपको पचास रुपये भी मिल जायॅ तो कोई आश्चर्य नही। लेकिन आपने इतने समय तक किया क्या? उस पेड़ की लकड़ी को तो बढा ही नही दिया। उल्टा आप उसे काटते-छाँटते रहे। हाँ, आपने उस लकड़ी की उपयोगिता अवश्य बढा दी। यहाँ पर आप किसी प्रकृति से प्राप्त की हुई वस्तु की उपयोगिता बढ़ाते रहे हैं लेकिन जब वकील साहब हमारा मुकदमा जीत जाते हैं, जब ब्राह्मण महाराज हमारे लिये कोई पूजा कर देते हैं अथवा जब पुलिस का आदमी हमारे जान-माल की रखवाली करता है, तब तो शायद किसी वस्तु के रूप में परिवर्तन नही होता। उपयोगी तो ये सेवाये भी होती हैं, परन्तु ये ऊपर बताई हुई वस्तुओं से भिन्न हैं। इनसे हमारी विविध आवश्यकताएँ सीधी-सीधी पूरी होती हैं। पहले दिये गये उदाहरण अर्थात् किसान का अनाज पैदा करना, दर्जी का कोट सीना, बढ़ई का हल बनाना आदि भौतिक (Material production) उत्पत्ति के उदाहरण हैं। लेकिन वकील, पुलिस, मास्टर वगैरह के कार्य अभौतिक उत्पत्ति (Immaterial production) के अन्तर्गत

शामिल किये जाते हैं। भौतिक उत्पत्ति करते समय किसी वस्तु का रूप, स्थान आदि बदलकर उपयोगिता की वृद्धि की जाती है। अभौतिक उत्पत्ति के लिये सेवाकार्य किये जाते हैं कि जिससे मनुष्य की आवश्यकता सीधे-सीधे पूरी हो जाती है।

उपभोग (Consumption)

उत्पत्ति का अर्थ समझ लेने पर अब हम उपभोग के सम्बन्ध में विचार करते हैं। रामू किसी खेत में क्या बोवेगा, इससे अब हमसे बिलकुल मतलब नहीं। वह स्वतन्त्र है। चाहे वह गेहूँ बोवे, चाहे चना, चाहे जौ या बाजरा। मान लीजिये वह गेहूँ बोता है। फसल के कट जाने पर किसान गेहूँ को काट झाड कर घर में लाता है। घर वाले उसको पीस कर रोटियाँ पकाते हैं और तब कोई उसे खाते हैं। खाने से किसान की भूख मिट जाती है। उसे एक तरह का संतोष मिलता है और हम कहते हैं कि किसान ने रोटी का उपभोग किया। आमतौर पर उपभोग से किसी वस्तु का उपभोग करने या सेवन करने का मतलब निकाला जाता है। लेकिन अर्थशास्त्र में उपभोग के मतलब कुछ और ही होते हैं। मान लो तुम्हारे पास रोटी का एक टुकडा है। उसे तुम खा भी सकते हो और आग में डाल कर जला भी सकते हो। दोनों हालत में कहा जाता है कि रोटी का उपभोग हो गया लेकिन अर्थशास्त्र के मत से केवल जब रोटी खाई जाती है तभी उसका उपभोग समझा जाता है, अन्यथा नहीं। रोटी खाने से मनुष्य को एक प्रकार का संतोष मिलता है; लेकिन यदि रोटी आग में जला दी जाय तो किसी की आवश्यकता पूरी नहीं होती और इसलिये किसी को सन्तोष नहीं मिलता। रोटी खाई जाय अथवा जलाई जाय दोनों हालत में उसकी उपयोगिता नष्ट हो जाती है। अतएव अर्थशास्त्र के अन्तर्गत जब किसी सेवा या वस्तु का इस प्रकार से उपयोग किया जाता है कि मनुष्य की कोई आवश्यकता पूरी होती हो अर्थात् जिससे मनुष्य को किसी प्रकार का संतोष मिलता हो तभी हम कहते हैं कि उस सेवा या वस्तु का उपभोग किया गया। एक बात और, कभी कभी किसी वस्तु का [illegible] किसी अन्य वस्तु के पैदा करने में किया जाता है जैसे किसी कारखाने [illegible]यले का उपयोग। यहाँ पर देखना चाहिये कि कोयले के जलने से किसी [illegible]मी की कोई इच्छा पूरी हुई या नहीं। उत्तर है कि हमारे देखते तो कोई

इच्छा पूरी होती नहीं दिखाई देती। परन्तु कोयले से भाप बनती है जो उपयोगी है। हाँ, अगर जाड़े का दिन हो और आप कोयला जला कर आग तापे तो हम कहेंगे कि आपने कोयले का उपभोग किया, क्योंकि इस बार कोयला जलाने से आपकी ठडक दूर करने की इच्छा पूरी हो गई।

उपभोग का महत्व

उपभोग के सम्बन्ध में यह जानना जरूरी है कि इसी के लिये आदमी सब चीजें पैदा करता है और जितनी चीजें पैदा की जाती हैं उन सबका उपभोग किया जाता है। परन्तु किसी आदमी की एक समय में एक इच्छा तो होती नहीं। हर वक्त बहुत सी बातें उसके दिमाग में घूमा करती हैं और सबसे बड़ा प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि कौन सी इच्छा पहले पूरी की जाय। इसका साधारण सा उत्तर है। उस इच्छा को जिसको पूरा करने से सबसे अधिक संतोष या उपयोगिता (Utility) प्राप्त हो। लेकिन आमतौर पर आदमी क्या करते हैं? कौन सी वस्तुएँ आवश्यक (Necessaries) होती हैं, कौन आरामदायक (Comforts) और कौन गुलछर्रें उडाने के लिये बनाई जाती हैं? फिजूलखर्ची किसे कहते हैं? उपभोग में इन सब प्रश्नों पर विचार होता है। उससे यह भी पता लगता है कि जो वस्तु किसी गरीब किसान के लिये आरामदायक (Comfort) और विलासपूर्ण (Luxuries) हो वही जमीदार के लिये आवश्यक हो सकती है। अपनी आमदनी का विचार न कर जो गरीब किसान रोज हलुवा-पूरी उड़ाता है उसे दुनिया भोग-विलासी कहती है। लेकिन जमीदार हलुवा-पूरी आवश्यक समझते हैं। उनके हिसाब से अमीरी ठाट के अन्दर रेडियो, बिजली, मोटर आदि स्थान रखते हैं। इस बात से रहन-सहन के दर्जे की समस्या उठती है। एक मजदूर किस तरह की जिन्दगी बसर करता है; पचास-साठ रुपया मासिक तनख्वाह पाने वाले क्लर्क साहब किस प्रकार रहते हैं; महीने में सौ दो सौ रुपये पैदा कर लेने वाले दूकानदार तथा उद्योग-धन्धे वाले कैसा जीवन व्यतीत करते हैं और हजार-पाँच सौ रुपये माहवार फटकारने वाले बाबू, डाक्टर या कलक्टर साहब किस मौज से रहते हैं, इन सब बातों का वर्णन व विवेचन रहन-सहन के दर्जे (Standard of living) के अन्तर्गत किया जाता है। जैसे-जैसे आवश्यकता

बढती है वैसे ही वैसे मनुष्य अच्छी जिन्दगी बसर करने की कोशिश करता है और उसके रहन-सहन का स्तर ऊपर को उठता जाता है। इतना ही नहीं किसी देश के रहने वाले को किस प्रकार रहना चाहिये, वहाँ की सरकार को उपभोग (Consumption) के सम्बन्ध मे किन-किन बातों मे दखल देना चाहिये इत्यादि और भी बहुत बातें हमें उपभोग के अन्तर्गत ही माननी पड़ती हैं।

उपभोग का क्षेत्र

अब हम यह कह सकते हैं कि अर्थशास्त्र के इस भाग में यह विचार किया जाता है कि मनुष्य जो तरह तरह की वस्तुओं का उपभोग करता है, कहाँ तक उसके और देश के लिये लाभदायक है और किस हालत में वह हानिकर होता है। लगे हाथ इस बात का भी विचार किया जाता है कि मनुष्य कैसा रहता है और उसका रहन-सहन का दर्जा क्या होना चाहिये तथा उस दर्जे को बनाये रखने के लिए देश की सरकार को क्या करना चाहिये।

विनिमय (Exchange)

लेकिन सोचने की बात है कि आजकल कोई आदमी अपने आप मतलब की सारी वस्तुएँ नहीं उत्पन्न करता। कोई केवल किसानी करता है तो कोई नौकरी, कोई मजदूर है तो कोई बढई, कोई धोबी है तो कोई चमार। चमार के लिये यह बिलकुल जरूरी है कि जूते बेचने से आने वाले पैसों से आटा खरीदे और मजदूर मजदूरी की रकम से दाल-चावल मोल ले। ऐसा क्यों होता है? बनिये के पास आटा इतनी अधिक मात्रा मे रहता है कि वह आटे से पैसों को अधिक उपयोगी समझता है और हमारे चमार के पेट के लिये तो आटा जरूरी है ही। कहने का मतलब यह है कि दोनों ओर वालों को कुछ फायदा होता है तभी अदल-बदल होता है और जब दो वस्तुओं का अदला-बदला होता है तो एक वस्तु के कुछ वजन के लिये थोडी सी दूसरी वस्तु दी जाती है। उदाहरण के लिये हो सकता है कि बीस सेर गेहूँ के लिये दस सेर चावल मिले। इस प्रकार अर्थशास्त्र (Economics) की दृष्टि से दो सेर गेहूँ का मूल्य हुआ एक सेर चावल। आजकल गाँवों को छोडकर शहरों में तो ऐसे उदाहरण बडी मुश्किल से मिलते हैं। अधिकतर पैसे देकर हम तुम बाजार से तरकारी, मसाला आदि खरीद लाते हैं।

अगर सेर भर गेहूँ का मूल्य छः आना है तो हम कहेंगे कि गेहूँ की कीमत छः आना सेर है। वस्तुओं को इस तरह से देने-लेने का नाम विनिमय है। पहले जमाने मे जब रुपये-पैसे का चलन नही था तो वस्तु से ही विनिमय होता था।

विनिमय के साथ प्रश्न उठता है कि विनिमय के दर के सम्बन्ध में किस प्रकार यह निश्चित किया जाय कि एक रुपये के बदले में कितने सेर गेहूँ बेचा जाय अथवा एक मिर्जई को बनाने के लिये रामू गाजी दर्जी को कितना पैसा देवे। इसके अलावा विनिमय के अध्ययन से हमें पता चलता है कि किसान, कारीगर तथा व्यापारी माल को बाजार में लाकर किस प्रकार बेचते हैं। गाँवों के हाट और मेले-तमाशे कितना महत्व रखते हैं।

वितरण (Distribution)

उपभोग करने वाले की दृष्टि से तो हमने देख लिया कि वह किस प्रकार विनिमय करके किसी वस्तु का उपभोग करता है। अब हमें देखना चाहिये कि बेचने वाला बिक्री से आने वाले धन मे किस प्रकार अपना हिस्सा लेता है। क्या सारी रकम उसी की होती है अथवा कोई दूसरा भी उसमे साझीदार होता है। मान लीजिये किसान अपने अनाज को शहर वाले व्यापारी को दे देता है और वह उसे शहर के बाजार में जाकर बेचता है। बेचने से जो दाम आयेगा उसका किस प्रकार बँटवारा किया जाय। सोचने पर मालूम पड़ता है कि उत्पत्ति मे जो शक्तियाँ मिलकर काम करती हैं उनके मालिक अनाज को बेचकर आने वाली रकम के हकदार हैं। इसलिये हमारी समस्या यह हो जाती है कि किस प्रकार से निपटारा किया जाय कि भूमि-मालिक को कितना लगान, मजदूर को कितनी मजदूरी व महाजन को कितना सूद मिले। परन्तु, यहाँ पर हम एक बात भूल जाते हैं। उसे साफ करने के लिए थोडी देर के लिये मिल-मालिक को ले लीजिये। वह मिल का बीमा कराये रहता है और हर साल बीमे की रकम देता है। इसके अलावा हर साल उसकी मशीनें कुछ न कुछ घिस जाती हैं। उसके लिये आने वाली रकम से कुछ निकालकर अलग कर लेना चाहिये। उन सब को काटकर जो बचता है जमीन के मालिक, मेहनत करने वाले मजदूर, धन लगाने वाले महा-

जन, प्रबन्धक व साहस प्रदान करने वाले मनुष्य के बीच बाँटा जाना चाहिए। परन्तु यह कोई जरूरी नहीं है कि पाँचों कार्य भिन्न-भिन्न व्यक्ति करें। हम जानते हैं कि मिल-मालिक रुपया भी लगाता है, प्रबन्ध भी करता है और साहस भी दिखाता है। इसी तरह किसान अधिकतर मेहनत भी करता है और अनाज पैदा करने के लिये पूँजी भी लगाता है। अब प्रश्न यह उठता है कि इन पाँचों के बीच किस हिसाब से रकम का बँटवारा हो। इसका उत्तर हमें अर्थशास्त्र के वितरण विभाग से मिलता है।

यही नहीं, इस विभाग में यह भी विचार किया जाता है कि कहीं भूमि वाला इतना अधिक भाग तो नहीं लेता कि मजदूरों के पास बहुत कम रह जाए और उनकी हालत खराब हो जाये। इसके अलावा हमें यह भी मालूम होता है कि जमींदारों और किसानों के बीच में कैसा सम्बन्ध होना चाहिए। धन वितरण इस प्रकार न होना चाहिए कि जमींदार जो गिनती में किसानों से बहुत कम हैं गुलछर्रे उड़ावें और मर मर कर अनाज पैदा करने वाले किसान भूख और बेगार भुगतें। किसानों के पास कितना धन पहुँचना चाहिए? क्या उनके लिये इतनी रकम काफी होगी जिससे उनके कुटुम्ब का काम चल जावे? कहा जा सकता है कि देश की उन्नति के लिये यह जरूरी है कि हर एक देशवासी उन्नति करे अर्थात् प्रत्येक आदमी इतना धन पावे जिससे वह दूसरों का कम से कम हानि पहुँचाते हुए अधिक से अधिक लाभ उठाये।

सारांश

अस्तु, हम जान गये कि अर्थशास्त्र उस विद्या का नाम है जो मिलजुल कर रहने वाले मनुष्यों के उन प्रयत्नों के बारे में विचार करती है जिनसे वे अपनी-अपनी इच्छाओं और आवश्यकताओं को पूरा करते और अर्थ (अर्थात् धन) या अन्य सामग्रियाँ उत्पन्न करते हैं। आदमियों के धन-सम्बन्धी उपायों का पूर्ण रूप से विचार करने के अलावा अर्थशास्त्र में देशों की आर्थिक दशा और उन्नति का भी ध्यान रक्खा जाता है। अर्थशास्त्र का ...न अधिकतर उत्पत्ति, उपभोग, विनिमय और वितरण नामक चार ...भागों में बाँट कर किया जाता है।

अर्थशास्त्र के अध्ययन से लाभ

अर्थशास्त्र के अध्ययन से हमें बहुत लाभ होता है। उसके अध्ययन से हम जान सकते है कि हमारा देश जिसको प्रकृति ने भरा-पूरा बनाया है—यहाँ की मिट्टी जलवायु पैदावार के लिए अच्छी है, यहाँ की खानों में खनिज पदार्थ भरे है, जंगलों में कीमती लकड़ी है, नदियों के जल से बिजली पैदा हो सकती है लेकिन फिर भी हमारा देश गरीब क्यों है ? उसकी गरीबी के क्या कारण हैं ? यहाँ के अधिकाश निवासियों को भरपेट भोजन भी नहीं मिलता। पहनने को कपडे नही मिलते, रहने के लिए मकान नहीं मिलते और बीमारी मे उनका इलाज नहीं हो पाता। देश को राजनैतिक आजादी मिले कई साल गुजर गए लेकिन कन्ट्रोल हटने का समय नहीं आता। वस्तुओं के भाव बढते जाते हैं। राशन में जो अनाज पहले मिलता था वह घट रहा है। कपड़े की मिलें बन्द होने का डर बना रहता है। कपड़ा महँगा होता जा रहा है। घरों के किराए बढ रहे हैं। ऐसा क्यों है ? क्या इस देश के प्राकृतिक साधन खतम हो गये हैं ? क्या भारत की शस्यश्यामला भूमि रेगिस्तान है ? क्या ईश्वर इससे क्रुद्ध है ? क्या हमारा भाग्य हमसे रूठा है ? अथवा क्या हम कामचोर बनते जा रहे हैं ? क्या हम सब अपना-अपना काम मन लगा कर नही करते ? क्या हम इसलिए काम से मन चुराते हैं कि काम का फल कोई दूसरा भोगेगा ? क्या हम आजादी से यह मतलब समझने लगे हैं कि किसी भी प्रकार के अधिकार का दुरुपयोग करके भी धन कमाना चाहिये ? क्या आजादी के कारण हमारे नीचे श्रेणी के भाई अब यकायक अमीरों जैसा जीवन व्यतीत करना चाहते हैं ? इस प्रकार के अनेकों प्रश्न तुम्हारे दिमाग मे उठते होंगे। अर्थशास्त्र के अंतर्गत ये सब प्रश्न आते हैं। हमारी वर्तमान गरीबी और आर्थिक कठिनाइयाँ कैसे दूर की जा सकती हैं। किस प्रकार हमारा देश धनी बन सकता है ? किस प्रकार हमारे देशवासी सुखी जीवन व्यतीत कर सकते हैं ? अर्थशास्त्र के अध्ययन द्वारा हम इन प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अतः इस अध्ययन से हमको बहुत बडा लाभ है।

अभ्यास के प्रश्न

१—अर्थशास्त्र क्या है ? इसके अन्तर्गत किन बातों का अध्ययन किया जाता है ?

२—अर्थशास्त्र की परिभाषा लिखिए। व्यावहारिक जीवन में इसके अध्ययन से क्या लाभ है?

३—आपके गाँव में या मुहल्ले मे कितने अमीर और गरीब कुटुम्ब रहते हैं?

४—अपने गाँव या मुहल्ले के भिन्न-भिन्न पेशे के ऐसे व्यक्तियों की सूची तैयार कीजिए जो परिश्रम करके अपनी जीविका प्राप्त करते हैं। इसी सूची मे उनका पेशा भी बतलाइए।

५—ऐसी २० वस्तुओं की सूची तैयार कीजिए जिनका उपयोग आपके मकान में प्रति सप्ताह होता है।

६—आपके गाँव के साप्ताहिक हाट मे अथवा आपके मुहल्ले के बाजार में जो वस्तुएँ बिकती हैं उनकी संक्षिप्त सूची तैयार कीजिये।

७—किसी गाँव मे जाकर यह जानने का प्रयत्न कीजिये कि फसल के तैयार होने पर किसी एक किसान को बढ़ई, लोहार, नाऊ इत्यादि को कितना अनाज देना पड़ा।

८—अपने कुटुम्ब की एक मास की आमदनी और खर्च का पूरा हिसाब रखिए और यह बतलाइए कि भोजन, कपडा, किराया, शिक्षा, दान-धर्म इत्यादि में कितनी रकम उस मास मे खर्च हुई?

९—यदि तुम्हारे गाँव मे किसी को रुपये उधार लेने की जरूरत पड़ती है तो रुपया किससे उधार लिया जाता है और किस दर पर सूद दिया जाता है?

१०—तुम्हारे गाँव में जमींदार और किसानों का संबंध कैसा है? क्या किसान जमींदार से प्रेम करते हैं। यदि प्रेम नहीं करते तो उनके प्रधान कारण क्या हैं?

११—उपभोग की परिभाषा लिखिये और उसका महत्व समझाइए।

१२—अर्थशास्त्र के कितने विभाग हैं। उनका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।

दूसरा अध्याय

परिभाषाएँ (Definitions)

धन या सम्पत्ति (Wealth)

पिछले अध्याय मे हम बतला आए हैं कि अर्थशास्त्र में धन-सबधी बातों का विवेचन रहता है। अब हम धन का अर्थ समझने का प्रयत्न करते हैं। ससार मे सर्वत्र रुपये की ही माया है। बिना रुपये के किसी की गुजर नही हो सकती। तुम शहर मे जरूर गये होगे। वहाँ तुमने देखा होगा कि लोग अच्छे-अच्छे कपड़े पहन कर घूम रहे हैं। फिटन, टमटम, मोटर, साइकिल दौड रही हैं। बड़ी-बड़ी दूकानों और कोठियों में लाखों रुपये का माल भरा हुआ है। अमीर आदमियों के ऊँचे-ऊँचे मकान बने हुए हैं। अमीर कौन कहलाता है? वह, जिसके पास खूब धन-दौलत होती है, जो बड़ी बढिया शानदार कोठी मे रहता, तथा जिसके यहाँ बहुत से नौकर-चाकर होते हैं। लेकिन क्या अमीर आदमी की तमाम दौलत रुपये के रूप में ही रहती है? उत्तर है, नहीं। किसी मनुष्य के धन से उसका रुपया, जेवर, मकान, जमीन इत्यादि कीमती वस्तुओं का बोध होता है और वही मनुष्य धनवान् कहलाता है जिसके पास ये सब चीजे अधिक तादाद में होती हैं। लेकिन अर्थशास्त्र में केवल इन चीजों को ही धन नहीं कहते। **अर्थशास्त्र मे हम उन वस्तुओं को धन के नाम से पुकारते हैं जिनको हम काम में ला सकते है और जो बेची जा सकती है अर्थात् जो विनिमय-साध्य हैं।** उदाहरण के लिए गेहूँ को ले लो। उसको पीसकर हम आटे की रोटियाँ पका सकते है और रोटियों के खाने से हमारी भूख मिट जायगी। अतएव गेहूँ उपयोगी है। गेहूँ को हम बेच भी सकते हैं। जरूरत होने पर हम गेहूँ देकर धोती का जोडा खरीद सकते हैं। रुपए के बदले मे हम गेहूँ दे सकते हैं और धोती के बदले में रुपया। अतएव गेहूँ विनिमय-साध्य वस्तु है इसलिये अर्थशास्त्र के हिसाब से गेहूँ भी धन है। इस बात को और साफ करने के लिये हवा को ले लो। यह सबको मालूम है कि वायु हमारे लिये कितनी जरूरी है। इसके बिना हम एक घटा भी नहीं जी सकते। इसलिये वायु की उपयोगिता बहुत ज्यादा है। परन्तु क्या यह विनिमय-साध्य है? क्या

आप वायु के बदले कोई वस्तु ले सकते हैं ? वायु हर जगह मौजूद रहती है। इसलिये किसी को मोल लेने की जरूरत नहीं पड़ती। यह ईश्वर की देन है और हम इसे धन में नहीं गिन सकते। इसी तरह यदि आप नदी या तालाब से दो चार घड़ा पानी भर कर किसी वस्तु से बदला करना चाहेंगे तो कोई बदला नहीं करेगा। क्योंकि नदी या तालाब का पानी आसानी से अधिक मात्रा में प्राप्त किया जा सकता है। जिस व्यक्ति को जितने पानी की जरूरत होती है उतना पानी वह आसानी से नदी से ले लेता है। इसलिये पानी हमारे लिए उपयोगी होते हुए भी धन नहीं कहला सकता, परन्तु यही जल राजपूताना के रेगिस्तान में धन कहलाने लगेगा, क्योंकि जल की कमी के कारण वहाँ पर तो सब इसे मोल लेने के लिये तैयार हो जायँगे। गाय, बैल, मकान, लकडी, कडा, कोयला, पत्थर, पेड़, फल, फूल आदि सब वस्तुएँ सम्पत्ति या धन के स्वरूप में हैं। और जब ऐसी चीज सम्पत्ति हो सकती है तो इस हिसाब से हम कूडा, करकट, गोबर, राख, हड्डी आदि तक को गिनती सम्पत्ति में कर सकते हैं।

केवल रुपया-पैसा (Money) ही धन (Wealth) नहीं—

हम ऊपर कह आये हैं कि कुछ लोगों के हिसाब से रुपया-पैसा व सोना-चाँदी का ही नाम धन है। यह बिलकुल गलत है। भारत में ऐसे भी कितने गाँव मिल जाते हैं जहाँ पर लोगों के पास रुपए नहीं हैं, लेकिन क्या उन गाँवों में अमीर और गरीब नहीं बसते ? तुम पूछ सकते हो कि फिर रुपया-पैसा आया कैसे ? इसकी क्यों जरूरत पड़ी ? असली बात यह है कि बिना रुपए-पैसे के सम्पत्ति की अदला-बदली करने में बड़ा झंझट करना पड़ता है। मान लो तुम्हारे पास चना है और तुम्हे मिर्जई की जरूरत है। अब तुम्हें किसी ऐसे आदमी को तलाश करना पड़ेगा जिसके पास मिर्जई हो। ख्याल करो कि ऐसा मनुष्य मिल गया लेकिन वह मिर्जई के बदले में जूता माँगता है। अब दोनों आदमियों को एक तीसरे आदमी को ढूँढ़ना पड़ेगा जिसके पास जूता हो और जो जूते के बदले में चना लेना चाहता हो। इन्हीं सब झंझटों को दूर करने के लिए रुपये-पैसे का रिवाज चला है। रुपए-पैसे [illegible]ने से हम जान सकते हैं कि राम और श्याम में कौन अमीर है। हम [illegible]गे ? हम इस बात का पता लगावेंगे कि राम का घर-बार, खेत-बात

कपड़ा-लत्ता आदि का क्या दाम है। मान लो सब मिलाकर चार हजार रुपया हुआ और श्याम के पास इस तरह से छः हजार का माल निकला तो हम कहेंगे कि श्याम राम से अमीर है। अस्तु, यह तै हो गया कि कठिनाइयों को दूर करने के लिए ही रुपये-पैसे चलाए गए और केवल यही धन-स्वरूप नहीं है।

पर इन रुपये-पैसे द्वारा हम कोई वस्तु कब खरीदते हैं? तुम कब गेहूँ खरीदते हो अथवा कब तुम्हारे पिता गाँव के चमार से जूता मोल लेते हैं? उस समय जब कि उन्हें जूते की जरूरत मालूम पड़ती है। वह जूते के दाम क्यों देते हैं? क्योंकि जूता हवा या जल की तरह ईश्वर की देन होकर काफी परिमाण मे आसानी से नहीं मिल सकता। अर्थात् जूतों की संख्या परिमित है। इसके अलावा एक बात और है। जूता बनाने के लिए चमार को मेहनत करनी पड़ती है। उस मेहनत के बदले में कुछ देना जरूरी है। इसलिए वह दाम देकर चमार से जूता मोल ले आते हैं। अब तुम जान गए कि अर्थ-शास्त्र मे धन किसे कहते हैं। प्रत्येक वस्तु जो उपयोगी होती है, जिसकी संख्या परिमित होती है व जिसके प्राप्त करने के लिए श्रम करने की आवश्यकता पड़ती है अर्थात् जो वस्तु विनिमय-साध्य है, उस वस्तु की गणना हम धन मे करते हैं।

धन-वृद्धि (Increase of Wealth)

बीघा खेत है और तुम उससे अधिक से अधिक अनाज पैदा कर रहे हो, यदि तुमको और अधिक माल की जरूरत है तो इसका उपाय यही है कि तुम दस की जगह बारह-पन्द्रह बीघे जमीन में खेती करो। उत्पत्ति बढ़ाने का दूसरा साधन है श्रम बढ़ाना। अगर खेत में काम करने वाले आठों मजदूर पूरी मेहनत के साथ काम कर रहे हैं तो यह जरूरी है कि उनकी संख्या बढ़ा कर दस या बारह कर दी जाय। धन या पूँजी का भी यही हाल है। जब आप धनोत्पत्ति की दो शक्तियों को बढ़ा रहे हैं तो आपको तीसरी को भी जरूर ही बढ़ाना पड़ेगा अन्यथा आपका काम नहीं बनेगा। अतएव धनी समृद्धि-शाली बनने के लिए यह जरूरी है कि आप अधिक क्षेत्र में काम करें, अधिक मेहनत लगावें व अधिक पूँजी का उपयोग करें।

धन और सुख (Wealth and Welfare)

वस्तु के उपभोग से संतोष होता है और सुख की प्राप्ति होती है। गरीब मनुष्य के पास वस्तुओं की कमी रहती है, उसके पास सुख प्राप्त करने के साधनों का अभाव सा रहता है। गरीब को अधिक सुखी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसके धन का परिमाण बढ़ाया जाय, उसकी आमदनी में वृद्धि की जाय। इसी प्रकार आर्थिक उन्नति की जा सकती है। परन्तु धनी बनने और सुखी बनने में महान् अन्तर है। यह बात ठीक है कि धनी मनुष्य जो चाहे सो कर सकता है। वह मोटर खरीद सकता है। दो चार लठैत और अन्य व्यक्तियों को नौकर रख सकता है। अच्छा-अच्छा खाना खा सकता है। परन्तु अमीर आदमी बदमाश और बदचलन भी हो सकते हैं। बुरे कामों में रुपया भी लुटा सकते हैं। समृद्धिशाली और सुखी बनने के लिए यह जानना जरूरी है कि रुपया किस प्रकार खर्च किया जाता है। सुखी जीवन बिताने के लिये थोड़ी सी सादगी अख्तियार करनी पड़ेगी। यही नहीं, ज्ञान की भी जरूरत पड़ती है। क्या हुआ यदि आपको यकायक एक लाख रुपये की डर्बी की लाटरी मिल गई। यदि आप मूर्ख हैं, यदि आपके लिये काला अक्षर भैंस बराबर है तो आप बड़ी जल्दी सब रुपया लुटा देंगे। दूसरी ओर अगर आप पढ़े-लिखे हैं, और आपको अर्थशास्त्र की बातें मालूम हैं तो आप उस ...पयोग इस प्रकार से कर सकते हैं कि जिससे आपकी और देश की ...करने लगे। यह भी याद रखना चाहिए कि धन होते हुए मनुष्य

दुखी हो सकता है। रुपए के लोभ मे मरने वाला महाजन सदैव चिंताग्रस्त रहेगा। धन रहते हुए भी कुचलन अथवा असतुलित व अवांछनीय भोजन करने वाला व्यक्ति रोगग्रस्त और दुखी होगा। जिन परिवारों के बालक-बालिकाएँ अनुचित लालन-पालन के कारण बिगड़ जाते हैं उनमें भी धन रहते हुए माता-पिता दुखी रह सकते हैं। कृत्रिम जीवन व्यतीत करने वाले तथा इच्छाओं के गुलाम व्यक्ति भी दुखी ही रहते हैं।

उपयोगिता (Utility)

अब प्रश्न उठता है कि आपको किस प्रकार रुपया खर्च करना चाहिये। आपको कौन-कौन सी वस्तुएँ खरीदनी चाहिये और कितनी? इससे भी मुख्य सवाल है कि आप क्यो किसी चीज को खरीदते हैं? क्योकि आपको उसकी जरूरत रहती है, क्योंकि वह चीज आपके लिए उपयोगी है। मान लीजिये आप अपने गाँव के हाट मे गए। वहाँ पर बहुत सी चीजे बिकने के लिये आती है। कोई कपडा खरीदता है, कोई गेहूँ-चना खरीदता है, कोई कुछ खरीदता है तो कोई कुछ। आप भी कोई वस्तु पसन्द करके खरीद लेते हैं। परन्तु क्या आप बता सकते हैं कि आपने उसको क्यों खरीदा? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये यह जानना जरूरी है कि किसी वस्तु की उपयोगिता क्या होती है। "कहा जाता है कि **उपयोगिता किसी वस्तु का वह गुण है जिससे उस वस्तु की चाह होती है।** दूसरे शब्दो मे मनुष्य को किसी वस्तु के उपयोग से होने वाली तृप्ति का नाम उपयोगिता है।" इसका सम्बन्ध मन से होता है। प्रत्येक मनुष्य की इच्छा या रुचि में कुछ न कुछ अन्तर जरूर रहता है। इसी लिए किसी एक चीज की उपयोगिता प्रत्येक आदमी के लिये बराबर नहीं होती और हम उपयोगिता का वर्णन किसी नाप या तौल से नहीं कर सकते। लोग किसी वस्तु का मूल्य तय करने में उस वस्तु की उपयोगिता का विचार जरूर करते हैं। मान लीजिये रामू किसान के सामने

पास खुर्पी नहीं है और खेत से घास-फूस उखाड कर फेकने के लिये उसे खुर्पी की जरूरत है। अतएव खुर्पी को मोल ले लेगा।

इसी तरह हम उत्पत्ति मे भी करते हैं। हम किसी वस्तु विशेष को उत्पन्न या नष्ट नहीं कर सकते। हम केवल उपयोगिता को ही उत्पन्न करते हैं। उदाहरण के लिये हल को ले लीजिये। बढई अपने औजारों की मदद से लकडी को काट-छाँट कर उसे हल का रूप देता है। ऐसा करने से लकडी की उपयोगिता बढ गई। काम आते-आते कई वर्षों के बाद हल टूट जाता है, उसकी उपयोगिता जाती रहती है। लकडी पडी रहती है पर हल काम का नहीं रहता।

सीमान्त उपयोगिता (Marginal Utility)

हम ऊपर कह आये हैं कि किसी वस्तु की उपयोगिता भिन्न-भिन्न मनुष्यों के लिए भिन्न-भिन्न होती है। अब हम यह बतलाना चाहते हैं कि उसी मनुष्य के लिए एक वस्तु की उपयोगिता एक दशा मे कुछ हो सकती है तो दूसरी दशा में कुछ और। उदाहरण के लिये मान लो तुमको खूब जोर से भूख लग रही है। उस समय रोटी तुम्हारे लिये बहुत बडी उपयोगिता रखती है। पर एक रोटी खा लेने के बाद तुम्हारी भूख कुछ कम हो जाती है और दूसरी रोटी की उपयोगिता उतनी नहीं रह जाती जितनी कि पहली रोटी की थी। तीसरी रोटी की उपयोगिता दूसरी से भी कम होती है। अब यदि तीन रोटी में तुम्हारा पेट भर चला हो तो तुम सोचोगे कि चौथी रोटी ली जाय या नहीं। मान लिया तुमने चौथी रोटी ले ली। इसके खाने से तुम्हारा पेट बिलकुल भर गया। यदि कोई तुम्हारे आगे दो चार रोटियाँ और डाल दे तो तुम्हारे लिये उनका मूल्य नहीं के बराबर है। पहली चार रोटियों से तुम्हारे पेट को पूरा सतोष मिल चुका, इसलिये तुम पाँचवीं व छठी रोटी को बिल्कुल नहीं खाओगे। उपयोगिता के घटने का एक बडा अच्छा उदाहरण मिलता है जब कोई मथुरा का चौबे भोजन करने बैठता है। जब वह खाकर उठने लगता है तो आप कहते हैं कि चौबे जी एक लड्डू और खा [illegible]ए। चौबे महाराज सिर हिला देते हैं। इस पर आपका दोस्त हरी [illegible] कि चौबे जी एक लड्डू खा लो तो एक आना पैसा देंगे। पैसे [illegible] चौबे लड्डू लेकर खा जाते हैं। जब वह उठने लगते हैं तो

अबकी बार आपका दूसरा मित्र श्याम कहता है कि महाराज एक लड्डू और ले लो तो मैं आपको एक दुअन्नी दूँ। महाराज राजी हो जाते हैं। इसी प्रकार तीसरे लड्डू पर चौबे जी को चार आने और चौथे पर आठ आने दिये जाते हैं। पाँचवे लड्डू के लिये एक रुपया इनाम रक्खा जाता है किन्तु इस बार पेट जवाब दे देता है। चौबे जी ने अब तक जो चार लड्डू खाये उसकी उपयोगिता पहले खाये भोजन से कहीं कम थी। परन्तु उनकी उपयोगिता मे जो कमी होती वह पैसों की उपयोगिता के कारण पूरी हो जाती थी और चौबे महाराज का पेट किसी तरह ठूँस-ठाँस कर लड्डू को स्थान दे देता था। किन्तु अब पेट एक दम भर गया और चौबे महाराज उसे बिल्कुल नहीं खा सकते। इसलिये एक छोड़ यदि उन्हें दस रुपया भी दिया जाय तो वे उस पाँचवे लड्डू को न खायँगे।

अर्थशास्त्र के हिसाब से ऊपर दिये गये उदाहरण में रोटी खाने वाले के लिये रोटियों की सीमान्त उपयोगिता चौथी रोटी की उपयोगिता के बराबर है। इसी प्रकार यदि मनोहर के पास बीस आम हों तो आमों की सीमान्त उपयोगिता बीसवे आम की उपयोगिता के बराबर होगी। परन्तु ध्यान देने की बात है कि आमों की सीमान्त उपयोगिता और कुल उपयोगिता में अन्तर है। कुल उपयोगिता तो बीसों आमों की उपयोगिता के जोड़ के बराबर है, किन्तु सीमान्त उपयोगिता केवल अंतिम आम की उपयोगिता के बराबर होती है। यदि मनोहर के पास एक ही आम होता तो कुल उपयोगिता सीमान्त उपयोगिता के बराबर हो जाती। परन्तु जैसे-जैसे वस्तु की संख्या या परिमाण बढ़ता जायगा वैसे ही उनकी सीमान्त तथा कुल उपयोगिता के बीच का फर्क भी बढ़ जायगा। उदाहरण के लिये यदि मेरे पास ३ आम हैं। पहले आम से मुझे ५ इकाई, दूसरे से ४ इकाई, तीसरे से २ इकाई उपयोगिता मिलती है तो २ इकाई तो सीमान्त उपयोगिता हुई और ११ इकाई कुल उपयोगिता हुई।

एक बात और। उपर्युक्त चौबे जी वाले उदाहरण में पाँचवे लड्डू की उपयोगिता शून्य थी। मान लो चौबे जी उस लड्डू को अपने अँगोछे में [illegible] लेते हैं। तब क्या दूसरे दिन भी चौबे जी यही कहेंगे कि उस उपयोगिता कुछ नहीं है और वे उसे नहीं खाएँगे? कदापि न

व्यतीत होने के साथ चौबे जी का भोजन पच जायगा और चौबे जी फिर भूखे होंगे। अतः समय व्यतीत होने के साथ-साथ चौबे जी के उस लड्डू की उपयोगिता बढ़ती जायगी। यदि तुम सोचो तो समय के साथ घटने-बढ़ने वाली उपयोगिता के अनेकों उदाहरण बता सकते हो।

मूल्य (Value)

मान लो बाजार में तुमने गेहूँ और चना दोनों बिकते हुए देखे और तुम दोनो को खरीदना चाहते हो। अब अगर तुम्हारे हिसाब से गेहूँ की उपयोगिता चने से दुगनी है तो तुम एक रुपये में जितना गेहूँ लोगे उसी रुपये में उससे दुगुना चना माँगोगे। उदाहरण के लिये यदि तुम एक रुपये में दो सेर गेहूँ लोगे तो चार सेर चना माँगोगे। यदि कहीं तुम गेहूँ बेचने वाले होते और श्याम चने वाला तो तुम श्याम से फी सेर गेहूँ की जगह दो सेर चने माँगते। और यदि श्याम भी एक सेर गेहूँ के बदले दो सेर चना देने को राज़ी हो जाय तो दो सेर चना का मूल्य एक सेर गेहूँ समझा जायगा। इसी तरह यदि तुम अपनी गाय को बेच बकरियाँ खरीदना चाहो और यदि तुम्हारी निगाह में गाय की उपयोगिता बकरियों से तिगुनी हो तो तुम एक गाय के बदले में तीन बकरियाँ माँगोगे। जब किसी वस्तु की किसी अन्य वस्तु से अदला-बदली की जाती है तब पहली वस्तु के बदले में दूसरी वस्तु कितनी दी जाय इसका निश्चय उपयोगिता द्वारा ही होता है। ऐसी दशा में अर्थशास्त्र के अनुसार एक गाय का मूल्य तीन बकरियाँ हुईं, और एक सेर गेहूँ का मूल्य हुआ दो सेर चना।

मूल्य (Value) का जो अर्थ ऊपर दिया गया है उससे क्या नतीजा निकलता है? इसके मतलब होते हैं कि यदि एक चीज का मूल्य बढ़ जायगा तो दूसरी का कम हो जायगा। मान लीजिये कि पहले दो आम का मूल्य होता था एक खरबूजा। अब यदि किसी तरह आम की फसल आधी हो तो आम का मूल्य दुगुना हो जायगा यानी दो आम के बदले दो खरबूजे मिलेंगे या एक आम के बदले एक खरबूजा मिलेगा। आम का ... हो गया पर खरबूजे के मूल्य का क्या हाल है? जहाँ पहले ... के लिए दो आम मिलते थे वहाँ अब एक ही आम मिलता है

अर्थात् खरबूजे का मूल्य आधा हो गया। एक बात और; यदि कही आम की फसल न बिगड़ती पर खरबूजों की सख्या दुगुनी हो जाती तब भी वही बात होती जो आमों के आधे रह जाने पर हुई थी। अर्थात् एक खरबूजे के लिए एक ही आम मिलता।

कीमत (Price)

पुराने जमाने मे जब रुपये पैसे का चलन नहीं था तब एक वस्तु दूसरी वस्तु से बदली जाती थी। उस समय मूल्य का बोलबाला था। परन्तु उसमें कठिनाई होती थी? यदि सुमेर को किसी वस्तु की जरूरत है तो उसे ऐसे मनुष्य को ढूँढना पड़ता था जिसके पास वह चीज हो जिसकी सुमेर को आवश्यकता है। इतना ही नही, उस मनुष्य को ऐसी वस्तु की आवश्यकता होनी चाहिये जो सुमेर के पास है। इसके अलावा यह भी झगड़ा रहता कि हर एक अपनी चीजे बदलने को तैयार हो। मान लो सुमेर को एक कम्बल की जरूरत थी और कुबेर जिसके पास कम्बल है सुमेर का गर्म कोट लेना चाहता है। परन्तु सुमेर कोट देने को राजी नहीं हो तो अदला-बदली होना असम्भव है। जब से रुपये-पैसे का उपयोग होने लगा तब से ये सब बाधाये हट गईं। यदि तुम अपना सेर भर घी बेचकर चार सेर शक्कर खरीदना चाहते हो, तो केवल इस बात की जरूरत है कि तुम किसी के हाथ अपने घी को पाँच रुपयों मे बेच दो और उन रुपयो की जाकर शक्कर खरीद लो। ऐसी हालत मे सेर भर घी का मूल्य हुआ पाँच रुपये और सेर भर शक्कर के एक रुपया चार आने। **जब किसी वस्तु की इकाई का मूल्य इस प्रकार रुपये-पैसों मे लगाया जाता है, तो वह मूल्य वस्तु की इकाई की कीमत कहलाता है।** यदि हम एक गाय साठ रुपये मे बेचते हैं तो गाय की कीमत हुई साठ रुपया। यदि हम उसको तीन बकरियों के एवज मे बेचते हैं तो तीनों बकरियाँ कीमत न कहला कर गाय का मूल्य कहलाती हैं। मोटी बात यह है किसी चीज के बदले मे जो चीज मिले वह उसका मूल्य है और उसकी इकाई के बदले मे जो रुपया मिला वह उसकी कीमत है।

आय (Income)

अब तक हम और किसी वस्तु की उपयोगिता, मूल्य और कीमत के बारे में बातें कर रहे थे। मान लो मुरली अनाज की दूकान रखता है। वह हर

समय रुपये के बदले गेहूँ, चना, मटर, जौ, बाजरा, मूँग, चावल आदि अन्न बेचा करता है। बेचने से जो रुपए आते हैं उन्हे वह एक कापी पर लिखता जाता है। महीने के आखीर मे जोड लगाने से उसे मालूम पड जाता है कि महीने भर मे उसे कितने रुपये मिले। इस आमदनी के योग से यदि हम वह रकम निकाल दे जिसका कि मुरली ने अनाज खरीदा था तो बची हुई रकम मुरली की आय कहलायेगी। इसी प्रकार क्लर्क साहब महीने भर काम करने के बाद पहली तारीख को अपना वेतन लेकर घर जाते हैं। परन्तु यह वेतन है क्या ? यह है क्लर्क साहब की महीने भर के काम की कीमत और अर्थशास्त्र मे ऐसी कीमत को आय कहते हैं। मजदूरों को अपनी मजदूरी रोजाना, हर हफ्ते, पन्द्रहवें दिन अथवा महीने पर मिलती है। महीने भर मे उन्हे कुल जितना रुपया मिलता है वही उनकी माहवारी आय होती है। आय रोजाना से लेकर सालाना तक हो सकती है। अर्थशास्त्र में आय से उस रकम का बोध होता है जो कोई मनुष्य किसी निश्चित समय मे कमाता है। समय के किस परिमाण की आय निकाली जाय यह आय निकालने वाले की इच्छा पर निर्भर रहता है। अधिकतर आय से लोगों का मतलब माहवारी आय से रहता है। किन्तु कहीं कहीं सालाना आय की रिपोर्ट करनी पड़ती है। तुम्हे मालूम है कि भारत की सरकार तुम्हारी आय के ऊपर आयकर या इन्कमटैक्स लगाती है। इस आय के निकालने में मकान के किराये और बैंक मे जमा सूद से लेकर कारबार का मुनाफा तक इसमे जोड लिये जाते हैं ?

अभ्यास के प्रश्न

१—'विनिमय साध्य' वस्तु किसे कहते हैं ? उदाहरण सहित समझाइये। क्या ज्ञान विनिमय साध्य है ?

२—निम्नलिखित वस्तुएँ किन दशाओं मे धन समझी जावेगी ? गंगाजल, यजमानी, रेल का टिकट, घर का कूडा-कचरा, कागजी मुद्रा, नोट, मनुष्य का शरीर, अस्पताल, सार्वजनिक पुस्तकालय।

३—कुछ ऐसी वस्तुओं का उदाहरण दीजिये जिनकी उपयोगिता किसी मनुष्य के लिए समय के साथ बदलती जाती है।

४—अग्रलिखित वाक्यों की गलतियों को दुरुस्त कीजिए :—

(अ) २० सेर गेहूँ की कीमत ८) है।

(ब) पाँच सेर चावल की कीमत दस सेर गेहूँ है।

(स) ५ गायों की कीमत १२५ रुपया है।

(ड) एक सेर चना का मूल्य ६ आने है।

(क) एक गज कपडे का मूल्य बारह आना है।

५—अपने कुटुम्ब की आमदनी का एक मास का हिसाब लिखिए और यह बतलाइए कि किन-किन जरियों से कितनी आमदनी प्राप्त हुई।

६—यदि कोई मनुष्य अपने निजी मकान मे रहता है तो उसको अपने मकान से वर्ष भर मे क्या आमदनी होती है?

७—आर्थिक उन्नति के क्या साधन हैं? गरीब लोग अधिक सुखी कैसे हो सकते हैं?

८—धनी लोग भी कभी दुखी पाए जाते हैं? इसके क्या कारण है?

९—सादे जीवन का सुख की वृद्धि से क्या सम्बन्ध है?

१०—सम्पत्ति या धन किसे कहते हैं? विस्तार सहित लिखिए।

तीसरा अध्याय

उत्पत्ति (Production)

उपयोगिता वृद्धि (Increase in Utility)

प्रत्येक मनुष्य को भोजन, कपडा आदि की जरूरत पड़ती है। इनके बिना उसका काम ही नहीं चल सकता। अपनी इन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उसे तरह-तरह की वस्तुओं को बनाना या तैयार करना पडता है। मिल-जुल कर रहने वाले किसी भी मनुष्य को देख लो। वह हर समय इस बात का उपाय करता है कि उसे किसी प्रकार धन मिले। धन की उत्पत्ति करने के लिये आदमी दिन भर मेहनत करके जगल से लकड़ी या घास काट कर लाता है, दूसरा किसी के यहाँ नौकरी करता है, तीसरा दूकानदार है तो चौथा डाक्टर। यह तो हम आपको पहले ही अध्याय में बता चुके हैं कि अर्थशास्त्र मे उत्पत्ति का क्या मतलब होता है और यह भी कह चुके हैं कि उत्पत्ति किस प्रकार को जा सकती है। कोई वस्तु उत्पन्न करने के मतलब होते है किसी प्रकार की उपयोगिता को बढ़ाना। कुम्हार मिट्टी से बर्तन

बनाकर मिट्टी की उपयोगिता में वृद्धि करता है। बढई लकडी को काट-छाँट कर मेज-कुर्सी बनाता है। ऐसा करने से लकडी की उपयोगिता और बढ़ जाती है। इसी प्रकार के रूप-परिवर्तन द्वारा चना, मटर, गेहूँ आदि अनाज खेती से पैदा किये जाते है। खेती-बारी मे अन्न पैदा करने का काम तो स्वयं प्रकृति करती है। मनुष्य तो केवल बीज, खाद, पानी आदि का प्रबन्ध करता है। परन्तु स्थान और अधिकार बदल देने से भी किसी की उपयोगिता बढाई जा सकती है। जहाँ जो सामान अधिक मात्रा मे होता है वहाँ से जब उन्हे उन जगहों मे ले जाया जाता है जहाँ उस सामान की मात्रा कम है, तो उसकी उपयोगिता बढ जाती है। लोहे, कोयले या पत्थर की अपने खान के पास या लकडियों की जगल मे उपयोगिता बहुत कम होती है। जब ये ही चीजे रेल या मोटर द्वारा बाजार मे पहुँचा दी जाती हैं तो इनकी उपयोगिता बढ जाती है। इसी प्रकार अन्न, शाक, फलों को खेतों या बागों से बाजार मे पहुँचा कर उनकी उपयोगिता बढाई जा रही है। जब हम किसानों से अनाज माल लेकर बाजार मे किसी घर-गृहस्थी वाले आदमी के हाथ उसे बेच देते हैं तब भी उपयोगिता बढती है। क्योंकि किसान के अधिकार मे तो इतना अनाज है कि उसके लिये उनकी उपयोगिता कम है लेकिन घर-गृहस्थी वाला आदमी खाने के लिये अनाज चाहता है और इसलिए उसके अधिकार मे पहुँच जाने से अन्न अधिक उपयोगी बन जाता है। उसकी उपयोगिता बढ जाती है। उपयोगिता वृद्धि में समय भी सहायता करता है। नये चावल की प्राय: बहुत कम कदर होती है। यदि नया चावल साल दो साल रख छोडा जाय तो उसमे कुछ खास गुण आ जाता है और उसकी कदर या उपयोगिता बढ जाती है। इसी तरह पूस-माघ में बरफ को कोई नहीं पूछेगा। उसे किसी तरह गर्मियों तक रख सके तो उसकी बड़ी कदर होगी। मई-जून में गेहूँ का भाव बढ़ जाता है और बरसात में सूखी लकडी तेज बिकती है। विज्ञापन के कारण भी वस्तु की उपयोगिता अधिक व्यक्तियों को महसूस होती है। अत: माँग [illegible]ती है। तब वस्तु दूर-दूर से बिक्री के लिये मँगाई जाती है। इस प्रकार [illegible] द्वारा हम वस्तु के स्थान और अधिकार परिवर्तन में योग देकर [illegible] बढ़ा देते हैं।

इसके पहले कि हम इन शक्तियों पर विचार करें, हमे यह देख लेना चाहिए कि कुछ चुने हुये उदाहरणो मे ऊपरोक्त शक्तियाँ किस प्रकार भाग लेती हैं।

पहले रूप-परिवर्तन द्वारा होने वाली उपयोगिता वृद्धि (Increased utility) के साधनो को ही लीजिये; इस रीति से कच्चा माल पैदा किया जाता है। कच्चा माल बहुधा खेती से होता है। हमारे भारत में ज्यादातर लोग खेती करके ही अपना पेट पालते हैं। अच्छा, इनमे ऊपर बताए साधन या शक्तियाॅ किस प्रकार काम आती हैं? बिना भूमि के खेती नहीं हो सकती, और मेहनत करने वाले मनुष्य बिना खेती करेगा ही कौन? किंतु जमीन और मनुष्य के होने से भी तो खेती नही हो सकती। उसके लिये बीज, हल, बैल, खाद आदि की भी आवश्यकता होती है। ये चीजे मनुष्य के धन हैं; परन्तु ज्यादा धन उत्पन्न करने के लिए काम मे आने के कारण इनका नाम पूँजी हो जाता है। इससे साफ प्रकट है कि खेती करने के लिए भूमि, श्रम और पूॅजी की आवश्यकता होती है।

अब कारीगरी का एक उदाहरण लीजिये। तैयार माल भी रूप परिवर्तन द्वारा ही बनाया जाता है। दर्जी का काम लीजिए। वह कपड़े को काट-छाॅट करके कपड़े सीता है। इसमे उसे सीने के लिए बैठने को स्थान (दूकान या मकान) चाहिये, यह भूमि है। उस पर बैठ कर वह सिलाई का काम करता है, इसमे उसे श्रम करना होता है। फिर उसे कपड़ा, सुई, डोरा आदि चाहिए, तभी तो वह कोट तैयार कर सकेगा। ये चीजें वह पहले कमाए हुये धन में बचत करके बचाता है और ये उसकी पूॅजी हैं। इसी तरह से बढ़ई,

बनाकर मिट्टी आदि के कार्य पर विचार किया जा सकता है। अतएव तैयार छाँट कर मेज, श्रम और पूँजा तीनों की आवश्यकता पडती है।
बढ़ जाती है कि हमने प्रबन्ध और साहस (Enterprise) का विचार नहीं अनाज से। आजकल के मशीन युग मे अकेला-दुकेला आदमी धन पैदा करने तो स्वयंम नही करता। सैकड़ों हजारों आदमी एक ही कारखाने में काम करते प्रबन्ध आते हैं। ऐसी हालत मे इस बात की बड़ी जरूरत होती है कि कोई की आदमी इन हजारों आदमियों के काम की देख-रेख करे और यह निश्चय करे कि कितने आदमी कौन-सा काम करे, किस प्रकार की भूमि, श्रम और पूँजी लगाई जाय और कहाँ से कच्चा माल मँगाया जाय इत्यादि। इन सब बातों के लिये प्रबन्ध करने की आवश्यकता पडती है। इस प्रकार आजकल अमेरिका आदि देशों मे खूब बडे-बडे खेतों मे खेती की जाती है। यहाँ पर भी यह देखना पडता है कि खाद कहाँ से मँगाई जाय। कितनी खाद की जरूरत है। पानी का कैसा प्रबन्ध किया जाय इत्यादि।

इसके अलावा एक ऐसे व्यक्ति-समूह की जरूरत पडती है जो कारखाने में होने वाले या बडे परिमाण से की जाने वाली खेती से आने वाले लाभ-हानि को सहने का बीडा उठाये। मजदूर अपना वेतन ले लेते हैं। प्रबन्ध करने वाला भी अपनी तनख्वाह लेता है। भूमि का मालिक केवल लगान मात्र चाहता है और पूँजी देने वाला सूद। इनमे से किसी को हानि-लाभ से कोई मतलब नहीं रहता। कारखाने के चलने या डूबने की जोखिम उस आदमी या कम्पनी पर रहती है जो उसके चलाने का साहस करती है तथा जोखिम उठाती है।

भूमि (Land)

यह तो हमने देख लिया कि उत्पत्ति के पाँच साधन होते हैं—भूमि, श्रम, पूँजी, प्रबन्ध और साहस। अब इन पाँचो पर अलग-अलग विचार करना भी जरूरी है। पहले भूमि को लीजिए। आमतौर पर इससे पृथ्वी तल का मतलब निकाला जाता है, परन्तु अर्थशास्त्र मे भूमि से हमारा मतलब उन शक्तियों से रहता है जो प्रकृति से प्राप्त होती हैं। इस तरह से खान से निकलने वाले पत्थर, लोहा, सोना आदि, जल, मछली, मोती, वायु, सर्दी

गर्मी, रोशनी, जलवायु आदि सब चीजे इनके अन्तर्गत आ जाती हैं। याद रखने के योग्य दूसरी बात यह है कि प्रकृति का वही हिस्सा भूमि कहलाता है जिसका उत्पत्ति मे प्रयोग होता है।

भूमि के गुण

भूमि अपरिमित मात्रा में बढ़ाई-घटाई नही जा सकती है। बम्बई जाते समय थोड़ा सा समुद्र का भाग आता है। आज समुद्र के स्थान पर वहाँ धीरे-धीरे सूखी जमीन बढ़ रही है। इस प्रकार तो भूमि बढ़ाई जा सकती है। अन्यथा यदि हम चाहे कि आज संसार मे जितनी भूमि में ख़ेती होती है वह दुगुनी हो जाय तो यह असम्भव है। इसी प्रकार हम बलुही जमीन को गेहूँ की खेती के योग्य नहीं बना सकते। कहा जाता है कि तिब्बत के लामा मन-चाहा पानी बरसा सकते हैं और पश्चिमी देशों मे भी विज्ञान के आधार पर ऐसे प्रयोग हुए हैं परन्तु आमतौर पर हम और आप पानी नही बरसा सकते।

सब भूमि एक समान भी नहीं होती। कोई जमीन बहुत उपजाऊ होती है, कोई कम और कोई बिल्कुल ही नहीं। किसी जमीन की मिट्टी चिकनी होती है किसी की बलुही। शहर के बाहर की जमीन खेती के योग्य होती है, परन्तु शहरों में जो जमीन पड़ी होती है वह अधिकतर पार्क, स्कूल, मकान या कारखाने के काम आती है। परन्तु यह तो हुआ आम भाषा में जमीन कही जाने वाली भूमि की बात। कोई भूमि जमीन है, कोई लोहा, कोई कोयला, कोई पानी और कोई प्रकाश। इसी से स्पष्ट है कि सब जमीन एक सी नही होती।

भूमि की उपजाऊ शक्ति की सीमा होती है—यदि हम खाद दिए बिना खेती करते चले जाएँ तो वह क्रमशः कम उपजाऊ हो जाएगी। यदि हम खेत को गहरा खोदें और खाद डाले तब भी हम खेत की उपज को एक सीमा से अधिक नहीं बढा सकते। यदि फी एकड दस मन गेहूँ होता है तो पचास मन का क्या कहना बीस मन गेहूँ पैदा करना आपके लिए एक समस्या हो जाएगी।

भूमि उत्पत्ति मे स्वयं भाग नही लेती। खेत पडा रहता है। खान मे कोयला पडा रहता है। सूर्य का प्रकाश संसार भर मे बिखरा रहता है। किसान खेत से अनाज पैदा कर लेता है। मजदूर खान से कोयला निकाल

लेते हैं। धोबी धूप में कपड़ा सुखा लेता है। अंगूर पैदा करने वाला उसे सुखा कर किशमिश बना लेता है।

जब मनुष्य प्रकृति की देन पर अपना कब्जा कर लेता है तब वह दूसरों से उस कब्जे के कारण दाम माँगता है। दर असल वह दाम उसके कब्जे के होते हैं न कि उसकी भूमि के। परन्तु आमतौर पर हम कहते हैं कि भूमि का दाम यह है और खेत का लगान यह है। ऐसी कीमत भूमि की स्थिति तथा उपयोगिता पर निर्भर है।

विभिन्न कामों के लिए भूमि-सम्बन्धी विभिन्न विचार उठते हैं। खेती में भूमि के उपजाऊपन का ध्यान रहता है। किस खेत में क्या वस्तु अधिक उत्पन्न होगी। परन्तु व्यापार और कारखानों के काम में भूमि की उपजाऊ शक्ति का ख्याल नहीं किया जाता। कारीगर या कारखाने का मालिक यह देखता है कि जमीन किस जगह है। कारीगर अपनी दूकान बाजार के करीब खोलना चाहता है। मिल मालिक कारखाने को ऐसे स्थान पर चलावेगा जहाँ से खान और बाजार दोनों पास हों। मान लो तुम लोहे का कारखाना खोलना चाहते हो। तुम ऐसी जगह ढूँढोगे जहाँ से लोहे की खान भी पास हो और तैयार माल को बाजार में पहुँचाने का सुभीता भी हो। इन्हीं कारणों से बड़े-बड़े शहरों में भूमि का मूल्य या किराया बहुत अधिक होता है।

श्रम (Labour)

यह तो हुई भूमि की बात। अब श्रम को लीजिये। किसान खेती करने में स्वयं भी मेहनत करता है और बैल से भी काम लेता है। किन्तु अर्थशास्त्र के अन्तर्गत बैल के कार्य को श्रम में नहीं गिनते। श्रम से हमारा मतलब मनुष्य द्वारा की हुई मेहनत से रहता है। मनुष्य अपने मनोरंजन के लिए फुटबाल, हाकी वगैरह खेल खेलता है। ऐसे खेलों में की गई मेहनत किसी प्रकार का धन नहीं पैदा करती। अतएव इसकी गिनती भी श्रम में नहीं की जाती। अब आपसे कोई पूछे कि श्रम से क्या समझते हो तो आपको कहना चाहिये

"[illegible]म से हमारा मतलब मनुष्य द्वारा की गई उस मेहनत से रहता है[illegible] धन की उत्पत्ति में लगाई जाती है।

श्रम के भाग (Division of Labour)

श्रम दो तरह के होते हैं :—शारीरिक व मानसिक। कुली, मजदूर, लोहार, बढ़ई आदि शारीरिक श्रम करते हैं; किन्तु डाक्टर, वकील, जज, मास्टर आदि मानसिक श्रम करते हैं। कुछ लोग दोनो तरह के श्रम करते है, परन्तु अर्थशास्त्र मे श्रम के इस भेद को अधिक महत्व नहीं दिया जाता। यदि कोई भेद माना जाता है तो वह उत्पादक और अनुत्पादक श्रम के बीच मे होता है। मनुष्य किसी इच्छा की पूर्ति के लिए जो मेहनत करता है वह उत्पादक कहलाती है। उत्पादक और अनुत्पादक मेहनत को स्पष्ट करने के लिए मान लीजिये कि कोई आदमी बिना मतलब ही एक स्थान से मिट्टी खोदकर दूसरे स्थान पर जमा करता है, ऐसा श्रम अनुत्पादक कहलायेगा। हाँ, यदि पहले स्थान पर मिट्टी का ऊँचा ढेर लगा हो और दूसरे पर गड्ढा हो तो वह श्रम उत्पादक गिना जायगा क्योंकि ऐसा काम करने से गड्ढा पट गया और किसी के उसमें गिर जाने का डर जाता रहा। अस्तु, उत्पादक श्रम के दो भाग किये जाते हैं। बढई लकड़ी से हल बनाता है, किसान खेत मे अनाज पैदा करता है और लोहार लोहे से चाकू बनाता है। इस प्रकार का श्रम प्रत्यक्ष उत्पादक श्रम कहलाता है। किन्तु जगलों से लकडी लाने मे जो श्रम पडता है, पंडितजी चेलो को पढाने मे मेहनत जो करते हैं अथवा परीक्षार्थी को परीक्षा मे बैठने के हेतु जो विद्याध्ययन तथा परिश्रम करना पड़ता है वह परोक्ष उत्पादक कहलाता है क्योंकि उससे किसी वस्तु विशेष की उत्पत्ति नहीं होती।

हमारे देश की गरीबी देखते हुये श्रम का एक अन्य वर्गीकरण हो सकता है—कुशल श्रम तथा अकुशल श्रम। आजकल वायुयान, रेल तथा मोटर चलाने मे तथा उन्हे बनाने के लिए, बड़ी-बडी इमारतें और पुलों के निर्माण मे, बडी-बडी मशीनों को चलाने और उनकी मरम्मत करने के लिये ट्रेनिंग प्राप्त अर्थात् कुशल श्रमिक चाहिये। भारत मे इनकी कमी है। इसके विपरीत ईंट, गारा या बोझ ढाने, ठेला खींचने, फावडा चलाने आदि कामो को कोई भी अर्थात् अकुशल श्रमिक कर सकता है। कुशल श्रमिको की कमी के कारण देश की उन्नति रुक जाती है।

श्रम की उपयोगिता (Utility of Labour)

जिस प्रकार सब भूमि एक-सी उत्पादक नही होती उसी तरह सब श्रम एक-से उत्पादक नहीं होते। श्रम की उत्पादकता कई बातों के ऊपर निर्भर रहती है। मेहनत करने वाले यदि मजबूत, शिक्षित और ट्रेनिंग पाए हुये हैं तो उनकी उत्पादक शक्ति अधिक होगी। कार्यक्षमता आदमी को मिलने वाले खाने, उसके रहने के स्थान की आबहवा आदि बातों से सम्बन्ध रखती है, इसके अलावा यदि मजदूर गुलाम की तरह काम करते हैं तो उनका श्रम कम उत्पादक हो जाता है। इसलिए कारखानों मे अच्छे कारीगरों और मजदूरों को हिस्सेदार बना लेते हैं। इसी प्रकार खेती में हिस्सेदार होते हैं। अर्थात् खेत मे काम करने वालों का हिस्सा बँध जाता है। इससे काम करने वाले मन लगाकर काम करते हैं, और अधिक से अधिक माल उत्पन्न करने का प्रयत्न करते हैं। चतुरता और बुद्धिमानी भी श्रम को और उत्पादक बनाती है। एक मामूली बढई जिस लकडी से एक भद्दा-सा बक्स बनाकर तीन चार रुपये को बेचता है, एक चतुर बढई उसी से एक अच्छी आलमारी बनाकर बेचने से दस पन्द्रह रुपये प्राप्त कर लेता है। जो श्रमजीवी बुद्धिमान् नहीं हैं, जिन्हे इस बात का पता नही है कि किस प्रकार सम्पत्ति की वृद्धि करनी चाहिये, उनका श्रम बहुत कम उत्पादक होता है।

श्रम विभाग (Division of Labour)

उत्पादक के सम्बन्ध मे श्रम की एक और बात जानने योग्य है। पुराने जमाने मे आदमी अपनी सारी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये स्वय ही सब काम करता था। वही झोपडी बनाता, वही मछली मारता, वही तीर और धनुष बनाता और पहनने के लिए जानवरों को मार कर उनकी खाल खीचता। लेकिन समय के परिवर्तन के साथ मनुष्य ने परिवार बसा लिया और कई परिवार मिलकर गाँवों मे रहने लगे। इसके साथ ही इस बात का ख्याल हुआ कि यदि एक आदमी एक ही काम करे तो और भी अच्छा हो। अतएव एक आदमी केवल अन्न पैदा करता है, एक केवल कपडा तैयार करता है, इत्यादि। इस प्रकार गाँव के किसान, लकडहारे जुलाहे आदि का काम अलग-अलग हो जाता है। जैसे-जैसे उन्नति हुई एक पेशे के कई-कई भाग होने लगे। कपडा तैयार करने के लिए एक

आदमी केवल कपास पैदा करता है, दूसरा कपास को ओटता है अर्थात् रुई से बिनौले अलग करता है, तीसरा सूत को कातता है और चौथा केवल कपड़ा बुनता है। इसके बाद इन भागों के भी भाग किये जाते हैं। इस प्रकार से होने वाले श्रम के बँटवारे को श्रम-विभाग कहते हैं।

श्रम-विभाग से बहुत लाभ हैं। पहले तो कोई आदमी बड़ी जल्दी किसी विभाग का काम सीख सकता है। इसके अलावा श्रम-विभाग के अन्तर्गत एक ही काम करते रहने से आदमी खूब होशियार हो जाता है। फिर प्रत्येक विभाग में की जाने वाली क्रियाएँ इतनी सरल हो जाती हैं कि उनके करने के लिये मशीन का भली-भाँति प्रयोग किया जा सकता है। इन सब का परिणाम यह होता है कि किसी वस्तु की उत्पत्ति करने में व्यय कम पड़ने लगता है।

श्रम-विभाग से कुछ हानि भी है। एक ही काम करते-करते वह काम नीरस सा लगने लगता है। उस काम के करने में फिर मन नहीं लगता। यही नहीं, यदि वह चाहे कि और किसी दूसरे पेशे को स्वीकार कर ले तो वह ऐसा नहीं कर सकता। तीसरे, इसके कारण उसे अपने शरीर के किसी एक अंग का ही अधिक उपयोग करना पड़ता है। फलतः उसका स्वास्थ्य गिर जाता है। कुछ भी हो, श्रम-विभाग के कारण श्रमी भारी और दुःखदायक कामों के करने से बच जाते हैं और उन्हें अब सप्ताह में केवल ४५-६० घंटे तक काम करना पड़ता है। बाकी समय वे अपनी शिक्षा, मनोरंजन और उन्नति के लिये लगा सकते हैं। इसी प्रकार यदि भारतीय मजदूरों को भी शिक्षा व ट्रेनिंग मिले, उन्हें उचित मजदूरी दी जाय, नियत समय तक काम लिया जाय, उनके मनोरंजन और सुख-सुविधा की व्यवस्था की जाय तो वे भी अधिक क्षमतावान बन सकते हैं।

खर्च करता है, लेकिन काम नहीं करता, तो उसका अनाज रूपी धन पूँजी नहीं कहा जा सकता। यदि वह खाने के साथ खेती भी करता जाता है तो जो अन्न वह खाता है वह पूँजी स्वरूप है। खेत में बीज बोने के दिन से लेकर और जब तक अनाज काटकर किसान के घर में आता है, इस बीच मे कई महीने गुजर जाते हैं। तब तक किसान को खाने-पीने को चाहिये। मजदूरी चाहिये, हल, बैल आदि चाहिये। पहनने को कपडे, रहने को घर तथा औजार आदि भी चाहिये। ये सब चीजे पहले से ही इकट्ठी करनी पड़ती हैं। इनमे अन्न-वस्त्र, बैल-बछिया, हल-फाल, घर-द्वार सब कुछ आ गया और इन सबकी गिनती पूँजी मे करनी चाहिये।

पूँजी की विशेषताएँ

बिना बचत के पूँजी नहीं हो सकती। किसान अपनी कमाई का कुछ भाग अलग निकालेगा तभी तो वह औजार मोल लेगा। कारखाने का मालिक लाभ का एक अश अलग करेगा तभी तो वह नई मशीनें खरीदेगा।

पूँजी की दूसरी विशेषता यह है कि भौतिक पूँजी स्थायी नहीं होती। मशीन, औजार, हल आदि वस्तुएँ काम मे आते-आते घिस जाती हैं और बेकार हो जाती हैं।

पूँजी के भेद

आमतौर पर पूँजी के दो भेद करते हैं :—अचल पूँजी और चल पूँजी। किसान बार-बार उन्हीं बैलों, हल, फावडा, तथा कुदाली से काम लेता है। जुलाहा उसी करघे पर वर्षों कपडा बुनता है। मिल मे उन्हीं मशीनो से बीस पच्चीस साल तक काम लिया जाता है। यह सब बहुत समय तक काम आने वाली पूँजी के उदाहरण हैं और इनका नाम अचल पूँजी है।

इसके विपरीत जो पूँजी केवल एक बार के प्रयोग से खतम हो जाती है उसे अचल पूँजी कहते हैं। उदाहरणार्थ, खेती मे बीज तथा जल, बढई की लकडी, मिलों का कच्चा माल आदि।

पूँजी की उत्पादकता उसके उपयोग करने के ढग पर निर्भर रहती है। यदि बुद्धिमानी के साथ पूँजी लगाई जाती है तो अधिक सम्पत्ति पैदा होती है अन्यथा कम। यदि कोई जमीन बलुई है तो उसमे आप चाहे जितना [illegible] डालिये और चाहे जितना पानी दीजिये, गेहूँ की पैदावार कभी अच्छी

न होगी। और आपने जो पूँजी उसमे लगाई है उसका आपको पूरा-पूरा बदला नहीं मिलेगा। परन्तु उसी पूँजी को यदि आप किसी उपजाऊ जमीन मे लगाते तो उसकी उत्पादक शक्ति अवश्य बढ जाती। कहने का मतलब यह है कि खेती या व्यापार मे जो पूँजी लगाई जाती है, उसके लगाने में यदि बुद्धिमानी, तजुरबे और दूरन्देशी से काम लिया जाता है तो पूँजी की उत्पादक शक्ति बढ जाती है।

प्रबन्ध (Management)

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, आजकल के जमाने मे भूमि, श्रम और पूँजी के ऊपर प्रबन्ध करने वाले का हाथ रहता है। प्रबन्ध के कार्य और श्रम मे अन्तर है। श्रमी अधिकतर शारीरिक मेहनत करता है और प्रबन्धक को दिमाग से ज्यादा काम लेना पडता है। प्रबन्धक उत्पत्ति के लिये सबसे उपयुक्त भूमि की खोज कर उस पर आवश्यक योग्यता वाले मजदूरों को श्रम-विभाजन के नियमों के अनुसार लगाता है। उसे नए-नए लाभदायक औजारों को इकट्ठा करना पड़ता है। वह समय के हिसाब से कच्चे माल को सस्ते से सस्ते दामों मे खरीदता है। बाजार मे लोगों की रुचि के मुताबिक माल बनवा कर वह उस माल को अच्छे-अच्छे दामों मे बेचता है। कहने का मतलब यह है कि प्रबन्धकर्त्ता लोगों की रुचि का ख्याल रखकर, भूमि, श्रम और पूँजी को इस हिसाब और ढग से लगाता है कि कम से कम लागत मे अधिक से अधिक वस्तु तैयार हो जाती है और इसको वह ज्यादा से अधिक मुनाफे के हिसाब से बाजार मे बेच देता है।

का प्रबन्ध करता है। प्रबन्धक का उद्देश्य रहना है कि कम से कम खर्च में अधिक से अधिक लाभ करते रहना। यदि किसी मशीन का प्रयोग करने से खर्च में कमी होती है तो वह मजदूरों का ख्याल किये बिना ही मजदूरों को घटा कर उस मशीन को कारखाने में मँगावेगा।

साहस या जोखिम (Enterprise)

मान लो उत्पत्ति के उपरोक्त चारों साधन मौजूद हैं परन्तु सबको इस बात का शक है कि कार्य शुरू कर देने के बाद उनको भूमि का लगान, श्रम की मजदूरी, पूँजी पर सूद व प्रबन्धक का वेतन मिलेगा या नहीं। ऐसी हालत में उस समय तक उत्पत्ति का कार्य शुरू ही नहीं हो सकता जब तक कोई व्यक्ति साहस न करले, सबको इस बात का विश्वास न दिला दे कि काम असफल हो जाने पर भी वह लगान, मजदूरी, वेतन, सूद आदि चुकता कर देगा। लेकिन खाली विश्वास वाला होने से काम नहीं चलता। विश्वास दिलाने वाले की हालत ऐसी होनी चाहिये जिससे सब लोग उसकी बातों का विश्वास कर ले। इसके लिए यह बहुत जरूरी है कि विश्वास दिलाने वाला साहसी मनुष्य धन तथा अपनी बात दोनों का धनी हो। इसके अलावा साहसी को बुद्धिमान तथा दक्ष होना चाहिये, जिससे वह योग्य सहायक व प्रबन्धक को ढूँढ सके। यह तो हुए साहसी के गुण। अब देखना चाहिये कि साहसी और उत्पत्ति में हाथ बटाने वाले अन्य व्यक्तियों में कोई भिन्नता है या नहीं। सबसे बडा फर्क यह है कि भूमि के मालिक का लगान, श्रमिक की मजदूरी, महाजन का सूद और प्रबन्धक का वेतन बँधा हुआ होता है लेकिन साहसी को आने वाली रकम में से यह सब काट कर जो बचता है उसी से सतोष करना पडता है। यदि कुछ कमी पडती है, तो उसे स्वयं अपनी गाँठ से लगाना पडता है। यह सब ठीक है लेकिन तिस पर भी किसी मनुष्य या कम्पनी को साहसी का बीडा उठाना ही पडता है। क्योंकि बिना साहस के न कोई व्यापार चालू किया जा सकता है और न चालू व्यापार बढाया ही जा सकता है।

अभ्यास के प्रश्न

१—उदाहरणों सहित समझाइये कि स्थान-परिवर्तन से उपयोगिता की किस प्रकार होती है ?

२—दूकानदार और व्यापारी वस्तुओं की उपयोगिता वृद्धि किस प्रकार करते हैं ?

३—समय परिवर्तन से उपयोगिता वृद्धि के उदाहरण दीजिये।

४—क्या किसी वस्तु के विज्ञापन से भी उपयोगिता-वृद्धि होती है ?

५—क्या कोई ऐसी वस्तु है जिसके अधिक उपयोग करने से उसकी उपयोगिता-वृद्धि होती है ?

६—यह समझाइये कि निम्नलिखित व्यवसायों में उत्पत्ति के साधनों का किस प्रकार उपयोग किया गया है :—

हलवाई की दूकान, कपड़े की दूकान, सूत कातना, कपड़े बुनना, गौशाला।

७—श्रम और मनोरंजन का अन्तर समझाइये। यदि कोई व्यक्ति कविता करता है या गाता है तो उसका कविता करना या गाना श्रम कहलायेगा या मनोरंजन ?

८—उत्पादक और अनुत्पादक श्रम के भेद बतलाइये। यदि कोई विद्यार्थी परिश्रम करने पर भी अपनी परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो जाता है, तो उसका श्रम उत्पादक कहलायेगा या अनुत्पादक ?

९—पंडा, जमींदार, डाक्टर, पुरोहित, साधु, सिपाही इत्यादि के श्रम किन दशाओं में उत्पादक माने जा सकते हैं ?

१०—भारतीय मजदूरों की कार्य क्षमता किस प्रकार बढ़ाई जा सकती है ?

११—अर्थशास्त्र की दृष्टि से भूमि की विशेषताएँ तथा महत्व समझाइये।

१२—क्या आपके गाँव में भूमि किसानों को काफी परिमाण में मिल जाती है ? यदि नहीं, तो कमी के प्रधान कारण क्या हैं ?

१३—चल और अचल पूँजी के भेद समझाइये। निम्नलिखित उद्योग-धन्धों की चल और अचल पूँजी लिखिये :—

गन्ने की खेती, कपास का कारखाना, मिठाई बनाना, खिलौना बनाना।

१४—प्रबन्धक के कार्य का महत्व समझाइये। उसमें किन गुणों की आवश्यकता है ?

१५—भूमि से अर्थशास्त्र में क्या अर्थ लिया जाता है ? उत्पत्ति में भूमि के महत्व को बतलाइए।

१६—उत्पत्ति मे जोखिम का क्या स्थान है ? निम्नलिखित व्यवसायों मे जोखिम कौन उठाता है :—

बटाई पर की जाने वाली खेती, मिश्रित पूँजी वाली कम्पनी, कपडे का कारखाना, चीनी का कारखाना।

१७—उत्पत्ति के अर्थ समझाइये। उत्पत्ति के साधन बताइये। गॉव के उद्योग-धंधों में इन साधनों के महत्व की तुलना कीजिये।

चौथा अध्याय

भारतीय गॉव की खास पैदावारें

भारतीय कृषि का महत्व

पिछले अध्याय मे हम देख चुके हैं कि उत्पत्ति करने मे किन-किन शक्तियों से काम लेना पडता है। अब इन शक्तियों के सहयोग से उत्पन्न होने वाली वस्तुओं के बारे मे कुछ जानना आवश्यक मालूम पडता है।

भारत में अस्सी प्रतिशत से अधिक लोग गॉव मे रहते हैं। सत्तर प्रतिशत से अधिक लोग खेती द्वारा अपना पेट पालते हैं। अतः यह मानी बात है कि हमारे यहाँ गॉव और खेती मुख्य हैं। लेकिन सन् १९४७ से, जब कि देश का विभाजन हुआ था, खेती की समस्या अधिक महत्वपूर्ण बन गई है। हमारे देश मे अन्न की कमी है। देश मे कितना अन्न अथवा कोई भी कृषि पदार्थ कितना पैदा होता है, यह हम सही-सही नहीं जानते। तब भी बहुत कुछ मालूम है। इससे हम इसी नतीजे पर पहुँचते हैं कि हमारे देश मे अन्न, रुई और जूट की अति कमी है। अन्न की कमी के कारण किसान को जबरदस्ती अपना गल्ला सरकार के हाथ बेचना पडता है। इसी कारण शहरों मे और कुछ देहातों में भी राशन पद्धति पर सरकार गल्ला देती है। रुई की कमी के कारण कपडा भी एक प्रकार से राशन समान ही मिलता है। भोजन [illegible]र वस्त्र की कमी का मूल कारण जब उपज की कमी है तब भारतीय [illegible] की उन्नति अति आवश्यक है। अतः इसका ही पहले अध्ययन करना [illegible]क महत्वपूर्ण बन जाता है। भारतीय कृषि का अध्ययन कई प्रकार से

हो सकता है। हम पहले खेत की उपज की मोटी बात बतायेंगे, फिर एक जिले की उपज की और तब भारतीय उपज की।

यदि खेत की उपज के बारे में ही पहले कुछ विचारा जाय तो अनुचित न होगा। भारत मे अधिकतर दो फसले होती हैं। एक खरीफ कहलाती है और दूसरी रबी। खरीफ की फसल जेठ मास से लेकर कार्तिक तक चलती है और बाकी छै महीनो मे अर्थात् कार्तिक से वैसाख तक रबी की फसल होती है।

उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद जिले में खरीफ की फसल बोने के पहले खेत मे खाद डाल देते हैं। पानी बरसने के बाद खेत एक बार जोत दिया जाता है। खरीफ की फसल में यहाँ ज्वार, बाजरा, मक्का, सावाँ और कोदो, चावल, अरहर, मूँग, उरद, तिल व तिली बोई जाती हैं। मक्का और ज्वार के लिये खेत अक्सर दो बार जोते जाते हैं। बाजरे के लिये एक ही बार हल चलाने से काम निकल जाता है। ज्वार और मक्के को तो किसान कूँड़ी बनाकर बोते हैं। बाजरा, उरद और मूँग के बीज को बखेर कर बोते हैं। जब वर्षा नही होती तब खरीफ में एक-दो बार खेतों को सींचने की जरूरत पड़ती है और नहीं तो खरीफ की फसल के लिये सिचाई कोई खास जरूरी नहीं है। अरहर रबी की फसल के साथ वैसाख में काटा जाती है, बाकी सब चीजे भादों और कुआर में काट ली जाती है। रबी की फसल में गेहूँ, चना, जौ, मटर, मसूर, अलसी, सरसों, गन्ना और ऊख बोया जाता है। जिन खेतों में गेहूँ, जौ, सरसों इत्यादि चीजे बोई जाती हैं उनमें खरीफ की फसल नहीं पैदा की जाती बल्कि उन खेतों को एक बार जोत कर बरसात के पहले छोड़ देते हैं। बरसात में उनमें खूब पानी भरता है। गेहूँ वगैरह बोने के पहले फिर ये खेत दो-तीन बार जोत दिये जाते हैं। रबी में चना, मटर को तो बखेर कर बोते हैं बाकी सब अनाज कूँड़ी द्वारा बोये जाते हैं। रबी की सब फसले वैसाख के आखीर तक कट जाती हैं। अस्तु, इस प्रकार से इलाहाबाद जिले में पैदा होने वाले अन्नों में चावल, गेहूँ, चना, ज्वार, बाजरा, जौ, मकई मुख्य हैं। दालों में मूँग, उड़द, अरहर, मटर, मसूर आदि पैदा होती हैं। तेलहन को वस्तुओं में तिल, सरसों, या अलसी प्रधान हैं। इसके अलावा गन्ना और आलू की खेती होती है।

भारतीय भूमि की पैदावार की कमी

इलाहाबाद जिले में जो उपज पैदा होती है, उनमें मेवा, मसाला, कपास, जूट, सन, चाय, तम्बाकू व पशुओं के चारे का नाम जोड़ दिया जाय तो भारत की सारी मुख्य उपज गिनती में आ जाती है। इन फसलों का विस्तृत वर्णन हमारी दूसरी पुस्तक "भारत का आर्थिक भूगोल" में किया गया है। मोटी तौर पर हम कह सकते हैं कि खेती से उत्पन्न पदार्थों की दृष्टि से भारत ससार भर मे तीसरा गिना जाता है। ससार भर की सन की मॉग का अधिकाश भारत ही पूरी करता है, लेकिन गेहूँ, कपास, चावल आदि की पैदावार में भी यह अच्छा स्थान रखता है। यहाँ के निवासियों की आवश्यकताओं को ध्यान मे रखकर सोचने से यहॉ की उपज कम मालूम पड़ती है। यही नहीं तुलना करने से पता चलता है कि प्रति एकड़ हम जितना गेहूँ, जौ, कपास, गन्ने आदि की उत्पत्ति करते हैं उतनी ही जमीन में उससे कई-कई गुना उपज अमेरिका और रूस वाले पैदा करते हैं। हमारे यहॉ फी एकड़ जितना गेहूँ पैदा होता है उसका चौगुना अमेरिका में और इससे भी अधिक रूस मे पैदा किया जाता है, क्योकि वहाँ पर तो मील-मील दो-दो मील के खेतों की खेती की जाती है। इसी प्रकार हमारे यहाँ से आठ से दस गुना और बढिया गन्ना जावा और हवाई द्वीप में उगाया जाता है। हमारे यहाँ की रुई की खेती से भी अधिक माल अमेरिका वाले पैदा कर लेते हैं। चाहे जो उपज ले लीजिये हर एक मे हम और देशों से पिछडे हुये पाये जाते हैं।

पैदावार की कमी के कारण

स्वभावतः प्रश्न उठता है कि आखिर किस कारण से भारत मे और देशों की अपेक्षा उपज इतनी कम होती है। यह हम जानते हैं कि खेतों मे उत्तम खाद देनी चाहिये; अच्छे बीज बोने चाहिये, उत्तम औजारों से खेत को जोतना-बोना चाहिये तथा खेत की सिंचाई का पूरा प्रबन्ध रखना चाहिये। हमारे किसानों को पहले तो पर्याप्त खाद मिलती नही। यह आम रिवाज सा हो गया है कि गोबर की उपली पाथ दी जाती है। ये कडे ईंधन की जगह जलाने के काम मे लाये जाते हैं। यदि इस उपली पाथने की जगह खाद बनाई जाये तो बहुत अधिक फायदा

हो। इसके अलावा खाद डालने के पहले किसान खाद को खेतों में पहले से ढेरी लगा कर धूप में छोड़ देते हैं जिससे खाद का बहुत सा तत्व नष्ट हो जाता है। खाद के अलावा किसान जिन बीजों को बोते हैं वे स्वस्थ और अच्छी हालत मे नहीं होते। वैज्ञानिकों ने यह समझ लिया है कि दीर्घकाल की दृष्टि से प्राकृतिक खाद जैसे गोबर की खाद, हरी खाद, सनई की खाद, मलमूत्र की खाद अधिक उपयोगी है और कृत्रिम खाद अवाछनीय होती है। फलस्वरूप उपज कम होती है।

किसान के पास बैल और औजारों की भी कमी है—बैल मरियल तथा रोगी होते हैं, उनसे खूब कसकर काम नहीं लिया जा सकता। इसी प्रकार कहीं भारी हलों से काम लिया जाता है तो कहीं हल्के हल से। इसके अलावा हल में खेत खोदने के लिये जो लोहे का फल लगा रहता है वह कहीं अधिक नुकीला होता है और कहीं साधारण। सबसे बड़ी बुराई तो यह है कि हमारे हल ज्यादा गहराई तक नही खोद सकते और न मिट्टी को ही अच्छी तरह पलट सकते हैं, इसलिये जो पौधे उगते हैं उन्हें ऊपर की ही सतह से अपनी खूराक खींचनी पड़ती है। नीचे की जमीन ऐसी ही पड़ी रहती है। इससे भी पैदावार अच्छी नहीं होती है। यदि बढिया और उन्नत ढग के हलों से काम लिया जाय तो खेत अधिक गहरे खोदे जा सकते हैं। ऐसा करने से नीचे की बढिया मिट्टी ऊपर आ जायगी और पैदावार अच्छी हो सकती है।

खेती करने के काम में सिंचाई का स्थान भी काफी ऊँचा है। लेकिन हमारे देश के कितने भागों में तो सिंचाई के प्रर्याप्त साधन ही नहीं हैं। हमारे उत्तर प्रदेश में नहरों का इन्तजाम है। नहरों से आबपाशी करने के लिए किसानों को खेत के हिसाब से दाम चुकाने पडते हैं। यहाँ पर पानी का बड़ा नुकसान होता है। पहले किसान खेतों में पानी पहुँचाने के लिए जो नालियाँ बनाते हैं वे इतनी बुरी हालत में होती हैं कि पानी फूट-फूट कर बाहर निकल जाता है। खेतों में क्यारियाँ नहीं बनाई जाती तथा सिंचाई ठीक तरह से नहीं होती। चूँकि नहर से आबपाशी करने की कीमत का पानी के परिमाण से कोई सम्बन्ध नहीं रहता इसलिए जरूरत से ज्यादा पानी खेतों में दिया जाता है जिससे खेतों की फसल को बड़ा धक्का पहुँचता है।

जिस प्रकार कम सिंचाई से उपज को धक्का पहुँचता है वैसे ही अधिक सिंचाई से भी उपज खराब हो जाती है। यदि उचित परिमाण में थोड़ी कम सिचाई की जाय तो फसल बहुत अच्छी होवे। और यह जरूरी है कि किसान इस बात का ज्ञान प्राप्त करे कि किस फसल के लिए कितने पानी की जरूरत है।

जिस तरह से मनुष्य बिना आराम किये लगातार काम नहीं कर सकता उसी प्रकार जमीनों से भी लगातार वैसी फसल नहीं पैदा की जा सकती। प्रायः जब एक फसल पैदा हो चुकती है तो जमीन में कुछ तत्वों की कमी पड़ जाती है। इस कमी को पूरा करने के लिए समय की आवश्यकता होती है अर्थात् फौरन ही यह कमी ठीक नहीं की जा सकती। इसलिए कितने ही एक फसल के बाद उस खेत में कुछ नहीं बोते अर्थात् उसे परती छोड़ देते हैं। ऐसा करने से कुछ महीनों में जमीन उन पदार्थों को, जो उससे निकल जाते हैं, वायुमंडल द्वारा फिर से खींच कर जमा कर लेती है। यह कार्य तो ठीक है लेकिन इससे जमीन बेकार पड़ी रहती है। दूसरे भूमि को केवल परती छोड़ देने से ही खोये हुए सब तत्व वापस नहीं आ जाते। अगर खाद दी जाय तो इन तत्वों की उचित पूर्ति हो सकती है। खाद देने का उचित तरीका तो यह होगा की परती छोडी हुई भूमि मे बराबर दूरी पर फुट-डेढ फुट गहरे गड्ढे खोद कर उनमें कूडा-कर्कट-गोबर भर-भर कर उन्हे ढक देवे। इससे साल भर में खाद बनकर जमीन में मिल जायगी। लेकिन अब तो विज्ञान के धुरन्धर विद्वानों ने यह ढूँढ निकाला है कि किस फसल के बाद कौन-कौन से तत्व नष्ट होते हैं। इसका सम्बन्ध फसलों के हेर-फेर से जोडा जा सकता है। प्रायः किसान फसलों को हेर-फेर से बोते हैं लेकिन वे उपरोक्त बताए सिद्धान्त को अच्छी तरह से नहीं समझते। किसी फसल के बाद जमीन के सब तत्त्व तो निकल ही नहीं जाते और न हर एक फसल से वही तत्व नष्ट होते हैं। इसलिए अगर किसी फसल के बाद ऐसी फसल बोई जाय जिसमें उन्हीं तत्वों की जरूरत पड़े जो कि अभी जमीन मौजूद हैं तो बहुत अच्छा हो; चूँकि खोये हुए तत्व से अब हमारा कोई नहीं रहता इसलिये जमीन उनको अच्छी तरह से वायुमडल के द्वारा सकती है। इससे तीसरी बार हम फिर से पहली फसल को बो सकेंगे।

उदाहरण के लिये मकई के बाद गेहूँ, ज्वार के बाद जौ, मसूर, मटर, या अलसी, कपास के बाद मकई बोई जा सकती है। गेहूँ के साथ-साथ दालें या तेलहन की वस्तुएँ बोई जा सकती हैं।

उपज में कमी होने का एक कारण यह भी है कि किसानों में शिक्षा का अभाव है। इसके अलावा वे निर्धन हैं। अतएव अच्छी बातों के ऊपर खर्च नहीं कर सकते। पैसा हो तो भी क्या करे। बिना उपयुक्त शिक्षा पाये वह अच्छी तरह व्यय नहीं कर सकता। यदि किसान पढा लिखा हो तो उसे यह भली भाँति समझाया जा सकता है कि कैसी खाद होनी चाहिये, कैसे फसलों के हेर-फेर से परती भूमि छोड़ने की आवश्यकता हटाई जा सकती है या अधिक पानी डालने से कौन से नुकसान होते हैं।

खेतों का छोटे-छोटे और दूर-दूर होना
(Fragmentation of Land Holdings)

इन बुराइयों के अलावा एक और कमी है। भारत में बहुत से खेतों का क्षेत्रफल एक-एक दो-दो एकड भी नहीं है। कितने किसानों के खेत इससे भी छोटे होते हैं। किसी-किसी का क्षेत्रफल तो आधा ही एकड होता है अथवा इससे भी कम। इसके अलावा अनेक किसानों के पास बहुत से खेत होते हैं। लेकिन वह दूर-दूर होते हैं। इससे किसानों को बहुत हानि होती है। छोटे खेतों में अच्छे-अच्छे हलों और औजारों से काम नहीं लिया जा सकता है। हलों को खेत में घुमाने में ही बहुत सी भूमि बेकार चली जाती है। इन सब बातों से किसानों में लड़ाई-झगड़ा खूब होता है और आए दिन अदालत के दर्शन किये जाते हैं। ऊपर इस बात का जिक्र आया है कि खेतों का दूर-दूर होना बुरा है। खेतों के एक जगह न होने के कारण एक खेत से दूसरे खेत में पानी ले जाने में बहुत सा समय व्यर्थ जाता है।

सब जगह पानी पहुँच जाय। खेतों के दूर रहने से एक ही कुआँ काम नहीं देता और दूर-दूर से पानी लाने मे बडी कठिनाई पडती है। फिर यह सब को मालूम है कि जब फसल तैयार होने लगती है तो उसकी रखवाली की बडी जरूरत पडती है। यदि रखवाली न की जाय तो चिडियाँ, तोते, गाय, बकरी वगैरह पशु और पक्षी फसल को साफ कर दें। लेकिन अगर किसान का कोई खेत गाँव के इस कोने पर है और कोई उस कोने पर तो रखवाली ठीक तौर पर नहीं की जा सकती। खेती के एक जगह होने से एक ही आदमी ठीक खेत की देख-रेख कर सकता है और बहुत से रखवालों की आवश्यकता नहीं पडती तथा पैदावार के मारे जाने का डर भी कम हो जाता है।

इसके अलावा खेत पास हों तो एक ही आदमी खेती के बहुत काम सँभाल लेवे। हरवाहे आदि काम करते रहते हैं, अकेला आदमी सब देख-भाल कर लेता है। दूर-दूर खेत होने से नौकर ठीक काम नहीं करते और अकेला आदमी सब जगह समय से ठीक देख नहीं पाता है। इससे खर्च भी अधिक हो जाता है और पैदावार को भी हानि होती है। फिर दूर-दूर की दौड-धूप मे शरीर को कष्ट होता है। एक जगह खेत होने से शरीर को भी आराम मिलता है। आदमी ही नहीं बैलों को भी आराम मिलता है तथा कटाई, ढोवाई इत्यादि मे भी आसानी रहती है। और आपस मे दूसरे किसानों से होने वाली लड़ाइयाँ भी कम हो जाती हैं।

ऊपर कही बुराइयों के कारण यह जरूरी है कि ये हानियाँ दूर की जायँ। इसका सीधा सा उपाय यह है कि हरेक गाँव मे या कई गाँवों में मिलाकर सब खेतों का मूल्य अदाजा जाय और एक किसान के खेतो का जितना मूल्य हो उतने-उतने मूल्य के खेत एक स्थान मे एक चक में कर दिये जायँ और भविष्य के लिये उनको छोटे-छोटे टुकडों मे बाँटा जाना बद कर दिया जाय। जहाँ एक ही परिवार के दो-तीन आदमियों के पास कई छोटे-छोटे खेत हों वहाँ पर बेहतर होगा कि यदि उनमे समझौता करा कर वे खेत एक ही आदमी ो दिलवा दिये जायँ। दूसरे आदमियों को उनके हिस्से का रुपया मिल) । कई जगह ऐसा प्रयत्न सफलतापूर्वक किया जा चुका है और जगह भी ऐसा ही उपाय किया जा सकता है। सहकारी समितियों द्वारा

खेतों की चकबंदी कैसे की जा सकती है यह किसी अगले अध्याय में बतलाया जायगा।

गाँवो में बहुत से किसान ऐसे हैं जिनके पास सब खेतों का क्षेत्रफल इतना कम है कि यदि वे चकबंदी द्वारा एक चक मे भी कर दिये जावें तो भी खेती से हानि होना निश्चित है। जिन किसानों के पास तीन-चार एकड़ से कम क्षेत्रफल के खेत हैं उनको खेती से इतनी आमदनी नहीं हो सकती कि वे उससे अपने कुटुम्ब का जीवन-निर्वाह कर सकें। ऐसे किसानो की संख्या प्रत्येक गाँव मे काफी अधिक रहती है। इनकी दशा तो तब सुधर सकती है जब गाँव के सब किसान मिलकर एक सहकारी समिति बना ले और सामूहिक रूप से खेती करे। इस प्रकार की सहकारी समिति में संगठन कैसे किया जा सकता है, यह किसी अगले अध्याय में बतलाया जायगा।

खेती मे क्या करना पडता है ?

आप भारत के खेतों की खास फसलें, उनके कम होने के कारण और इन कारणों को दूर करने के उपाय तो जान गए। अब हम संक्षेप में यह भी बता देना चाहते हैं कि आखिर खेती करने के लिए करना क्या-क्या पडता है अथवा भारत के किसान किस प्रकार खेती करते हैं। यह हम शुरू में ही बता चुके हैं कि भारत में अधिकतर दो फसले होती हैं। एक खरीफ की फसल कहलाती है और दूसरी रबी की। पहली बरसात के शुरू से चलकर दिवाली तक जाती है और दूसरी दिवाली से होली तक में तैयार होती है। अस्तु, वर्षा आरम्भ होने से पहले किसान खेत मे जगह-जगह खाद की ढेरियां लगा देता है फिर जब पानी दो-तीन दिन बरस कर रुक जाता है

चार बार जोता जाता है। अन्य फसल बोने के पहले एक-दो बार जोतकर खेतों को छोड़ देते हैं। रबी की फसल में बीज बोने से पहले खेतों को दो तीन बार जोतना और उन पर पाटा चलाना पड़ता है। रबी में गेहूँ, जौ, चना, मटर, सरसों, अलसी इत्यादि चीजें बोई जाती हैं। बीज बोने के दो तरीके हैं। कुछ फसलों के बीज हाथ से खेत में छितरा कर फेंके जाते हैं जैसे बाजरा, उर्द, मूँग, चना, मटर आदि के बीज। मक्का, ज्वार, कपास आदि के बीज कूँड़ों के जरिये या नाली के जरिये बोये जाते हैं। कूँड़ की बोवाई में हल के द्वारा जो कूँड़ खुदता जाता है, उसमें एक आदमी दाना छोड़ता जाता है। नली की बोवाई में हल के पीछे एक लम्बा पनाली-दार बाँस बँधा रहता है। एक आदमी हल चलाता जाता है और दूसरा पोले बाँस में दाने छोड़ता चलता है। जिन खेतों की मिट्टी भुरभुरी होती है उसमें कूँड़ की बोवाई की जाती है। जिस जमीन में नीचे नमी और खुश्की होती है उसमें नाली की बोवाई होती है।

बोवाई के बाद सिंचाई की बारी आती है। अगर पौधों को पानी न मिले तो वे सूख जायँ और उपज मारी जाय। यों तो खरीफ की फसल मे सिंचाई की जरूरत नहीं पड़ती क्योंकि बोवाई के बाद कई महीने तक बरसात होती है। लेकिन जिस बार वर्षा नहीं होती उस बार खरीफ की फसल में और रबी की फसल में तो हमेशा ही सिंचाई करनी होती है। जहाँ नदियाँ हैं वहाँ पर तो सिंचाई के लिये नहरें खोद दी गई हैं। लेकिन सब जगह तो नदियाँ होती नहीं। वहाँ पर अधिकतर कुओं से सिंचाई की जाती है। मोट द्वारा कुओं से पानी निकलते तो सब ने देखा होगा। इसमें चमडे का बड़ा डोला होता है जो कुएँ में रस्सी बाँध कर डाला जाता है। इस मोट को कुएँ से खींचने का काम बैलों से लिया जाता है। एक आदमी बैलों को हाँकता हुआ दूर तक ले जाता है जिससे मोट ऊपर खिंच आता है। एक दूसरा आदमी कुएँ पर रहता है जो मोट के ऊपर आ जाने पर उसमें से पानी उड़ेल लेता है। पानी नालियों के द्वारा खेत में पहुँच जाता है। जहाँ किसी तालाब से किसी ऊँचे [illegible] पानी पहुँचाना होता है, वहाँ दो आदमी एक दौरी में पानी भर कर [illegible] हैं, कहीं-कहीं रहट से सिंचाई होती है। इसमें एक चरखी खम्भों [illegible] की जगत पर लगाई जाती है। चरखी पर बँधी हुई एक रस्सी

में बहुत से डोल बँधे रहते हैं। एक डोल भर कर ऊपर आता है तो दूसरा कुएँ में जाता है। इसमें एक ही आदमी बैल हाँकने को रहता है।

सिंचाई के अलावा किसान को खुर्पी से पौधों के आसपास उगने वाली घास को खोदकर फेंकना पड़ता है। इसको निराई कहते हैं। यदि ऐसा न किया जाय तो फसल के पौधों का खाना घास वगैरह बटा ले क्योंकि वह भी पौधों की तरह जमीन से खाना लेती हैं। बरसात में तो बड़ी जल्दी घास-फूस जम जाती है। इसलिये किसान दस-पन्द्रह दिन में निराई करता है। रबी की फसल में निराई की कम जरूरत पडती है।

जब फसल के खेत पक कर तैयार हो जाते हैं तो किसान हँसिया से काट कर गेहूँ, चना आदि को खलिहान में ले आता है। खलिहान उस लिपी-पुती जगह को कहते हैं जहाँ फसल साफ की जाती है। फसल के ऊपर बैल चला कर पहले पौधों को माँड़ा जाता है, जिससे भूसा और अनाज के दाने अलग हो जायँ। माड़ने के पश्चात् हवा चलने पर उड़ौनी की जाती है। एक ऊँची तिपाई पर से दौरी में भर कर माँड़े हुये अनाज को नीचे गिराते हैं जिससे हल्का होने के कारण उड़ कर भुस दाने से अलग जा गिरती है। इसके बाद किसान अनाज और भुस को अपने घर को ले जाता है।

ग्रामीण उद्योग-धन्धे

खेती के सम्बन्ध में हमने और सब बातों पर विचार कर लिया, परन्तु यह नहीं ख्याल किया कि खेती करने में किसान बारहों महीने काम करता रहता है अथवा उसे कभी खाली भी बैठना पड़ता है। भारत में किसानों को आमतौर पर चार महीने से लेकर छै तक बेकार रहना पड़ता है। दूसरे महीने में तो उसका किसी तरह काम चल जाता है परन्तु बेकारी के समय के लिए वे कुछ बचाकर नहीं रख सकते। अतः उन्हें किसी ऐसे उद्योग-धंधे की आवश्यकता रहती है जो या तो खेती करने में सहायता पहुँचावें अथवा जो खेती पर निर्भर हों। उद्योग-धंधे न तो ऐसे होने चाहिये कि उन्हें छोड़ देने पर उनमें लगी हुई पूँजी अकड़ी पड़ी रहे और न ऐसे होवें जिनमें किसी प्रकार की विशेष शिक्षा की जरूरत पड़े। उद्योग-धंधे ऐसे होने चाहिये जो मौके-मौके पर चालू किये जा सकें, जैसे चर्खा कातना, लकड़ी व मिट्टी के खिलौने बनाना, तार के पिंजड़े बनाना साबुन बनाना, हाथ का कागज बनाना,

चावल कूटना, गुड़ बनाना, दाल दलना इत्यादि। इस दृष्टि से किसानों के लिये एक मुख्य उद्योग पशु-पालन का है। गाय-भैंस पालने से न केवल दूध-घी-दही का व्यापार होता है, वल्कि साथ ही साथ गाय-भैंस के बच्चे खेती के काम में आते हैं और गाय का गोबर और मूत्र खाद के काम आता है। बकरी भी पाली जा सकती है। बकरी का दूध पी लिया जाय और बकरे-बकरी वेचे जायँ। काश्मीर, पजाब, राजस्थान तथा अन्य ठडी जगहों मे भेड़ पालने तथा ऊन-उत्पादन का काम लिया जा सकता है। मुर्गी पालने और बच्चे तथा अडे वेचने काम भी अच्छा है।

खेती के साथ में कम खर्च के साथ एक छोटा सा बगीचा लगाया जा सकता है जिसमे तरकारी, भाजी या फल-फूल पैदा किये जा सकते हैं। यदि किसान फलों को न वेच सके तो वह बाग को ठेके पर उठा सकता है। यदि गुलाब के फूल लगाये जायँ तो गुलाबजल और गुलकन्द बनाना कठिन नहीं होना चाहिये।

ग्रामीण धन्धे इस प्रकार के होने चाहिये कि जिनमें अधिक पूँजी की जरूरत न पड़े क्योंकि किसान के पास खेती के ही लिये पूँजी का टोटा रहता है, और न इस प्रकार के होने चाहिये कि जिनमे बहुत पेचीदा यत्र और औजार काम मे आते हों जिनको चलाने में किसान को कठिनाई हो या उनकी गाँव मे मरम्मत न हो सके। धधे इस प्रकार के होने चाहिये कि उनको जब भी चाहे छोड़ा जा सके और जब चाहे उन्हे फिर चलाया जा सके और उससे हानि न हो। कारण यह है कि किसान का धधा तो खेती है। जब खेती को उसकी सेवाओं की आवश्यकता हो तो फिर उसको धंधा थोड़े समय के लिए छोड़ना होगा। धधा जहाँ तक हो ऐसा हो कि उसके माल की आस-पास ही गाँवों में खपत हो सके।

शहद की मक्खी को पालकर शहद उत्पन्न किया जा सकता है। शहतूत के वृक्ष लगाकर रेशम के कीडे पाले जा सकते हैं। अडी की पैदावार वाले प्रदेश में अडी के कीडे पाले जा सकते हैं। इससे प्राप्त रेशम भी वेचा जा सकता है और उससे धागे भी बुने जा सकते हैं। खेती के अयोग्य जमीन पर लगा देने से लकडी मिल सकती है। इसके अलावा किसान रस्सी बटने, ..र बनाने, चटाई बुनने, पखा बुनने आदि का काम बखूबी कर सकते

हैं। अगर गाँवों मे बिजली पहुँच जाय और उपर्युक्त छोटी मात्रा के उद्योग-धंधे खोल दिये जायँ तो किसान अपने बेकारी के समय में इन धधो मे भी काम कर सकता है। अगर उन्हे कुछ शिक्षा तथा सहायता व सलाह मिले तो वे स्वय भी मिलकर ऐसे धंधे कर सकते हैं। उनके अतिरिक्त नीचे लिखे धंधे भी ग्रामीण उद्योग-धंधे के रूप मे चलाये जा सकते हैं। तेल घानी, कताई गुड़ और शक्कर बनाना, चमड़ा साफ करना इत्यादि।

ऊपर हमने केवल संक्षेप मे बताया है कि किसान अपनी बेकारी के दिनों मे कौन से काम कर सकता है। अगले अध्याय मे इन धधों तथा जूता बनाने का काम, लकड़ी के काम, लोहे के काम, मिट्टी के बर्तन बनाने के धंधे आदि के बारे मे और खुल कर बतायेंगे।

अभ्यास के प्रश्न

१—शहर मे रहने वाले अपने एक मित्र को पत्र लिखो और उसमें अपने गाँव की खरीफ की फसलों का वर्णन करो।

२—तुम्हारे गाँव मे इस वर्ष रबी की कौन सी फसलें कितने रकबे मे बोई गई हैं? अपना उत्तर देने मे पटवारी के कागजों से सहायता ले सकते हो।

३—तुम्हारे गाँव मे इस वर्ष गेहूँ की सबसे अच्छी फसल किस किसान के खेत मे हुई? उस किसान से यह जानने का प्रयत्न करो कि एक एकड़ मे कितना गेहूँ इस वर्ष उत्पन्न हुआ।

४—तुम्हारे गाँव मे इस वर्ष गेहूँ की सबसे खराब फसल किस किसान के खेत मे हुई? उसकी फसल खराब होने के क्या कारण थे?

५—तुम्हारे गाँव मे जिन हलों का उपयोग किया जाता है उसका सचित्र वर्णन करो। हल कितनी गहराई तक जमीन खोदते हैं?

६—गहरी जोताई के लाभ समझाइये और बतलाइये कि आपके गाँव मे कौन से नए हल का उपयोग विशेष रूप से लाभदायक होगा।

७—अपने गाँव की सिंचाई के तरीकों का वर्णन कीजिये। उनमें किन सुधारों की आवश्यकता है?

८—गोबर की खाद का महत्व समझाइये। गोबर की उपली बनाकर जला देने से जो हानियाँ हो रही हैं, उनको बतलाइये।

९—आपके गाँव में फसलों को हेर-फेर किस प्रकार की जाती है? इस प्रथा में क्या कोई सुधार की आवश्यकता है?

१०—खेतों के दूर-दूर पर छोटे-छोटे टुकडों में बँटे हुए होने से जो हानियाँ होती हैं उनका दिग्दर्शन कराइये।

११—अपने गाँव के सब से बड़े खेत का रकबा और सबसे छोटे खेत का रकबा लिखिये। साधारणतः कितने एकड रकबे के खेत आपके गाँ में अधिक हैं?

१२—अपने गाँव मे ऐसे किसानों का पता लगाइये जिनके पास ४ एकड से कम रकबे के खेत हों। उनकी एक वर्ष की आमदनी का पता लगाइये और यह जानने का प्रयत्न कीजिये कि वे अपना जीवन-निर्वाह बराबर कर पाते हैं या नहीं।

१३—आपके गाँव के किसान उत्तम बीज प्राप्त करने के लिये किस प्रकार और कितना प्रयत्न करते हैं? यदि सब किसान उत्तम बीज बोने लगें तो आपके गाँव की फसलों की उपज में कितनी वृद्धि हो सकती है?

१४—अपने गाँव की किसी फसल की मँडाई का वर्णन कीजिये।

१५—आपके गाँव मे कृषि की दशा क्यों खराब है? उसे सुधारने के लिये आप क्या उपाय करेंगे?

१६—आपके गाँव के किसान प्रति वर्ष साधारणतया कितने दिन बेकार रहते हैं? इन दिनों मे वे क्या काम करते हैं?

१७—अपने गाँव के घरेलू उद्योग-धधों का वर्णन कीजिए। गाँव वालों लए उनका क्या महत्व है?

पाँचवाँ अध्याय

घरेलू और स्थानीय उद्योग-धन्धे (Cottage Industries)

घरेलू उद्योग-धन्धों की आवश्यकता

खेती पर तो हम पूरी तरह विचार कर चुके। किन्तु केवल खेती से उत्पन्न वस्तुओं से हमारा काम न कभी चला और न चलेगा। पहले हमारे देश के उद्योग-धन्धो का माल योरोप तक मे विकता था। परन्तु ईस्ट इंडिया-कम्पनी की उल्टी नीति तथा इंगलैड मे बड़े-बडे कारखाने खुल जाने के कारण हमारे कारीगरों को धक्का पहुँचा। अतएव वे गाँव और खेती की ओर झुक पड़े। अधिक खेती के द्वारा इतने अधिक लोगों का पालन न हो सका और उनका रहन सहन गिर गया। तभी से बराबर अन्य उद्योग-धन्धों और खासकर ग्रामीण, घरेलू उद्योग-धन्धों की आवश्यकता बनी रहती है।

घरेलू उद्योग या बड़ी मात्रा के उद्योग

वैसे तो हमको अनेक तरह का अन्य माल तैयार करना पड़ा है अर्थात् दस्तकारी और उद्योग-धन्धों का कार्य अख्तियार करना पड़ता है। भारत मे कुछ बड़े-बड़े कारखाने खुले हैं। कुछ लोगों का कहना है कि अगर इन कारखानों की संख्या बढाई जाय तो लोगों को काम भी मिले और देश में मिलों के तैयार माल भी मिलें। परन्तु पिछले सौ साल में जितने बडे उद्योग-धन्धे खुले हैं उनमे बीस लाख से अधिक मजदूर काम नही करते। इन उद्योग-धन्धों को बढाने के रास्ते मे अनेकों कठिनाइयाँ हैं और अगर वे सब हल भी हो जायँ तो हमारा मतलब पूरा नहीं होगा। बड़े-बड़े कारखानों में बहुत अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है और यदि किसी तरह पूँजी इकट्ठा भी कर ली जावे तो मशीनों की आवश्यकता होगी। हमे यथेष्ट मशीन भी नहीं मिल रही हैं और न शीघ्र ही कोई आशा ही है। फिर बड़े कारखानों को चलाने के लिये विशेषज्ञ, वैज्ञानिक तथा इंजीनियर इत्यादि की बहुत आवश्यकता है जिनकी आज देश मे कमी है। इसके अतिरिक्त पिछले महायुद्ध ने हमें यह भी बतला दिया कि एक ही स्थान पर बहुत बड़े-बड़े कारखाने केन्द्रित कर देना देश को एक भयंकर खतरे में डालना है

क्योंकि आज हवाई युद्ध में बमों के द्वारा औद्योगिक केन्द्रों को नष्ट करना बहुत आसान है। अतः, आवश्यकता इस बात की है कि जो धन्धे छोटे रूप में चलाये जा सकते हैं उनको गृह-उद्योग-धन्धों के रूप में ही चलाया जावे। केवल यही कारण नहीं है जिनसे हमे गृह उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन देना जरूरी है। सबसे बड़ा कारण तो यह है कि यदि हम मानले कि बड़े-बडे कारखाने चलाए जा सकते हैं और बडे धन्धे सफल हो सकते हैं तो भी वे बहुत थोडे ही आदमियों को काम दे सकेंगे। भारत में लगभग ७५ प्रतिशत जनसख्या खेती करती है। भूमि की कमी है। किसानों के पास इतनी कम भूमि है कि उस पर लाभदायक खेती हो नहीं सकती और न वे उतने से अपना पालन-पोषण ही कर सकते हे। अब यदि हम बडे-बड़े कारखाने ही स्थापित करेंगे तो बहुत थोडे लोगों को काम मिल सकेगा। ऐसी दशा में गृह-उद्योग-धन्धों को स्थापित करना ही हमारे हित में होगा।

घरेलू उद्योग-धन्धों के भेद

कुछ लोग घरेलू उद्योग-धन्धों के दो भाग करते हैं:—कृषि सहायक घरेलू उद्योग-धन्धे तथा स्वतंत्र घरेलू उद्योग-धन्धे। पहले वर्ग मे ऐसे धन्धे रक्खे जाते हैं जिन्हे किसान अपने कृषि के साथ या फालतू समय मे कर सकता है जैसे, पशुपालन, रस्सी बटना, चटाई बुनना, मुर्गी पालना, मधु मक्खी पालना, रेशम के कीडे पालना, सूत कातना आदि। दूसरे वर्ग मे वे उद्योग-धन्धे रक्खे जाते हैं जो अधिकतर स्वतत्र रूप से किए जाते हैं। उदाहरणार्थ, जुलाहा केवल बुनाई से पेट पालन करता है और चमडे के काम से चमार। इससे यह न समझना चाहिये कि ये काम स्वतत्र रूप से नहीं किये जा सकते हैं। अतः हम इस भेद को भुला कर नीचे मुख्य घरेलू उद्योग-धन्धों का वर्णन करेंगे।

हमारे स्थानीय उद्योग-धन्धे

भारत मे प्रचलित घरेलू उद्योग-धन्धे अनेकों हैं। लाख जो एक प्रकार के वृक्ष की गोंद है तथा जो 'वारनिश' करने और मोहर लगाने के मे आती है, अब बड़े पैमाने मे तैयार होने लगी है। पहले यह घरों मे साफ की जाती तथा बनाई जाती थी। शहद और मोम की तरफ लोगों का धिक ध्यान नहीं गया है तब भी कुछ जगली और पहाडी जातियाँ इस काम

को करती हैं। साबुन फैक्टरी में भी बनता है और घरों में भी बनाया जाता है। बाजार में आपको घरेलू बने हुए बहुत से साबुन मिल सकते हैं। हाथी-दाँत की कारीगरी में तो भारत के शिल्पी मशहूर हैं। हाथी-दाँत का जितना बढिया और उत्तम काम होता है वह प्रायः अफ्रीका के हाथी-दाँत पर होता है। दिल्ली, मुर्शिदाबाद, मैसूर, ट्रावनकोर, जयपुर वगैरह हाथी-दाँत की कारीगरी के लिये मशहूर हैं। रेशमी कपड़े का काम अब बहुत कम हो गया है। जापानी और बनावटी रेशम के कारण भारत का यह धधा बिल्कुल मारा गया। तब भी भागलपुर, मुर्शिदाबाद आदि स्थानों मे अब भी रेशमी कपड़ा हाथ से तैयार किया जाता है। उत्तरी भारत और खास कर काश्मीर मे अच्छा और बढ़िया ऊनी कपड़ा बनता है। हालाँकि ऊन के कारखाने खुल गये हैं तब भी मोटे कम्बल, दरियाँ, पट्टी और पश्मीना बनता है। काश्मीर के शाल बहुत मशहूर हैं। कारचोबी और कसीदे का काम उत्तर मे बड़ी उन्नत दशा मे है। तम्बाकू, काली मिर्च और इलायची साफ करना, सिरका डालना, सत निकालना, डबल रोटी और बिस्कुट बनाना वगैरह-वगैरह काम घरेलू उद्योग-धधों मे गिने जाते हैं। अब हम उत्तर-प्रदेश के कुछ उद्योग-धंधों का वर्णन करते है।

बरतन बनाना

इस प्रदेश मे बरतन बनाने का काम बहुत होता है। पीतल, ताँबा, कसकुट और लोहा के बडे अच्छे-अच्छे बरतन बनाये जाते हैं। बरतन बनाने का काम करने वालों को ठठेरा कहते हैं। मुरादाबाद के कलई के बरतन बड़े मशहूर हैं। अब तो बरतन बनाने का काम बहुत बडे पैमाने पर किया जाने लगा है। धनी आदमी सैकड़ों बरतन बनाने वालो को नौकर रख लेते हैं और खूब तादाद मे बरतन तैयार कराते हैं। यह तो हुआ धातु के बरतनों का हाल। अब मिट्टी के बरतनो के बारे में सुनिये। कुम्हार और कुम्हार के चाक से तो सभी परिचित होंगे। तुमने कुम्हार को अपने पत्थर के चाक घुमा कर उस पर रक्खी मिट्टी से सकोरा, करई, हँड़िया, मटकी, घड़ा बनाते तो देखा ही होगा। वह किस सफाई के साथ अपनी उँगलियों को नचा कर अच्छी-अच्छी चीजें बना लेता है। हर एक गाँव

उन्हे अपनी माँ की तरह खाना देते हैं और न अच्छी जगह में उन्हें रखते ही हैं। इसके अलावा गाय भैंसों की सफाई नहीं रक्खी जाती, फलस्वरूप ढोरों मे अनेक रोग फैल जाते हैं और बहुतों की अकाल मौत हो जाती है। इन्हीं कारणों से ढोरों की नसलें कमजोर होती जा रही हैं। पहले तो किसान गाय खरीदने मे गलती करते हैं। गाय दुधार होनी चाहिये। इसके लिये यह जरूरी नहीं है कि गाय मोटी हो। गाय की खाल पतली तथा रोयें नरम और चिकने होने चाहिये। थन सीधे हों, न बहुत छोटे हों न बहुत बडे। काली, लाल और भूरे रग की गायें अक्सर अच्छी होती हैं।*

दूध का काम

गाय पालने से बहुत फायदे होते हैं। गाय का बछड़ा बड़ा होकर खेत जोतने के काम आता है। गाय का गोबर उपली, खाद और घर लीपने में काम आता है। गाय के दूध के बगैर तो हमारा काम ही नहीं चल सकता। कोई दूध पीता है। कोई उसका दही, मक्खन या मलाई-रबड़ी बनाकर खाता है। दूध का खोया बनाया जाता है। हम आगे किसी अध्याय मे बतावेंगे कि दूध क्यों ताकतवर होता है। ताकतवर होने के कारण ही तो छोटे बच्चों को गाय का दूध पिलाया जाता है, लेकिन दूध से बीमारियाँ भी बहुत सी फैलती हैं। दूध की सफाई में जरा सी लापरवाही करने से वह खराब हो जाता है। जरा भी सफाई की कमी होने से बैक्टीरिया नाम का एक कीड़ा दूध में पैदा हो जाता है, इससे दूध फौरन बीमारी का घर बन जाता है। हमारे ग्वाले दूध दुहने में बडी लापरवाही दिखाते हैं। न तो वे कभी थन को धोते हैं न अपने हाथों को दुहने के पहिले साफ करते हैं और न साफ-सुथरे कपडे ही पहनते हैं। इनके अलावा बछडे के दूध पी चुकने के बाद भी थन का धोना आवश्यक है। दुहने वाले को न तो खाँसने-छींकने की आदत होनी चाहिये और न कोई छूत का ही रोग हो। दुहने की जगह पर गर्द गुबार न पडना चाहिये। दूध का बरतन साफ मजा हुआ होवे और जब दूध बेचने के लिये ले जाया जावे तो बरतन हमेशा साफ कर लेना चाहिये। यह तो हुई दुहने के सम्बन्ध की बातें। अब दूध बेचने का तरीका सुनिये। हमारे देहाती भाई अगर सेर भर दूध होता है तो पाव डेढ़ पाव पानी मिला देते हैं। यही

---

* देखिये अध्याय २०—पशुपालन।

नहीं विज्ञान के विद्वानों ने एक ऐसी मशीन निकाली है जिसमें डाल कर घुमाने से कच्चे दूध से मक्खन अलग निकल जाता है। बचे हुए दूध को मक्खनिया दूध कहते हैं। आजकल देहाती इस प्रकार पहिले से ही मक्खन निकाल कर तब दूध को बेचने लाते हैं। ऐसा दूध किसी काम का नहीं होता। हमारे हलवाई इसी दूध को खरीद कर बेचते हैं। इसी का दही जमाते हैं। चूँकि मक्खनिया दूध पतला और सार-रहित सा मालूम पड़ता है इसलिये इसको गाढा बनाने के लिये थोडा सा अरारोट या तीखुर डाल देते हैं। अरारोट पडे दूध के दही के ऊपर मोटी मलाई जम जाती है। यह काम शहर में काफी किया जाता है। अगर हम चाहते हैं कि अधिक किसान दूध बेच कर कुछ पैसा कमा सकें तो उन्हे दूर-स्थित शहरों और नगरों में बिना बिगडा दूध ले जाने की सुविधा जरूरी है।

मक्खन और घी

दूध से मक्खन और घी भी बनाया जाता है। ऊपर हमने मक्खनियाँ दूध का हाल बताते समय कच्चे दूध से मक्खन निकालने की एक तरकीब बताई है। कच्चे दूध से मक्खन निकालने की जिस मशीन का जिक्र ऊपर आया है वह अभी हमारे गाँव तक नहीं पहुँची है। शहर में ही उसका उपयोग किया जाता है। तुमने पिछली बार जो मक्खन मोल लिया होगा वह इसी तरह बनाया गया था। दूध को आग पर पका कर मथने से भी मक्खन निकल आता है; लेकिन शहर वाले पकाने के झगडे में नहीं पड़ते। गाँवों में जो घी तैयार किया जाता है उसके लिये पहले दूध को उबालते अथवा पकाते हैं। पके हुये दूध में थोड़ा सा पहले का रक्खा हुआ दही डाल कर रख देने से सात आठ घंटे में दूध जम कर दही बन जाता है। इस को मथनी से खूब मथते हैं। मथने से मक्खन ऊपर तैरने लगता है और निकाल लिया जाता है। मक्खन निकालने के बाद जो दूध सा पदार्थ बचा रहता है उसे मट्ठा कहते हैं। मथ कर निकाले मक्खन को नैनू भी कहते हैं। नैनू कच्चे दूध से निकाले मक्खन से कहीं अधिक अच्छा और स्वादिष्ट होता है।

तैयार हो जाता है। मक्खन एक-दो दिन से अधिक नहीं ठहरता। दूध का भाग रहने से उसमें बदबू आने लगती है और वह खराब हो जाता है। इसलिए मक्खन ताजा खाया जाता है। घी बनाने में खराब होने वाला भाग पहले ही जल जाता है। इसलिए घी बहुत दिनों तक रहता है। घी और मक्खन दोनों शरीर को ताकत पहुँचाते हैं। लेकिन ये बहुत अधिक हजम नहीं किये जा सकते। मक्खन को लग घी से अधिक लाभदायक मानते हैं। आजकल बिकनेवाले घी मे नारियल या दूसरी चीजों का तेल भी मिला देते हैं। इसके अलावा आजकल तरह-तरह के बनावटी घी चल निकले हैं। जैसे घास का घी, कोकोजम इत्यादि। बहुत से लोग मक्खन को अच्छी तरह नहीं तपाते हैं बल्कि आधा पक्का आधा कच्चा ही बेचते हैं। इसीलिए तुमने कभी किसी को घी के बारे मे कहते सुना होगा कि घी में मट्ठा है। आजकल शहर में अच्छा घी मिलता ही नहीं। हाँ गाँव में अच्छा घी मिल जाता है। इसलिए आजकल घी मोल लेते समय उसे अच्छी तरह देख कर लेना चाहिए।

रस्सी बनाना

तुमने देखा होगा कि गाय दुहते समय ग्वाला अक्सर गाय के पिछले पैर रस्सी से बाँध देता है। पतली डोर को रस्सी कहते हैं और मोटी को रस्सा। किसानों का तो बिना रस्सी रस्से के काम ही नहीं चल सकता। घर मे, खेत मे; गाड़ी की जाली बनाने मे, बोझा बाँधने मे उसे रस्सी की जरूरत पड़ती है। मूँज के, घास के, नारियल के जटाओं के, सन के, सरपत के तथा और-और चीजों के भी रस्से बनाये जाते हैं। मूँज की महीन बटी रस्सी को बाध कहते हैं और यह खटिया बुनने के काम आती है। घास और मूँज की रस्सी बनाने के पहले उसे पानी में भिगोते हैं। अच्छी तरह भीग जाने पर इन्हे खूब कूटते हैं। जब उनके डोरे-डोरे अलग हो जाते हैं तब उनमें से चार-चार छै-छै रेशे हाथों में लेकर ऐंठते और आपस में मिलाते चलते हैं। एक लम्बी रस्सी तैयार हो जाने पर उसे दोहरा-तेहरा करके और मोटा व मजबूत बना लेते हैं। सन की रस्सी बनाने के लिये पहले सन के पौधो को सड़ा कर सुखाया जाता है, तब सन अलग कर लेते हैं और उसे बट कर रस्सी तैयार करते हैं। हमारे यहाँ के किसान सन को गंदे पानी में सड़ाते हैं जिससे वह मैला

हो जाता है। इसके अलावा हमारे यहाँ के सन में कूड़ा भी होता है। फिर वे यों ही सन के लच्छे बना डालते हैं जिससे रेशों के उलझ जाने पर उन्हे सुलझाने मे बड़ी मेहनत पड़ती है। मूँज की रस्सी मजबूत होती है और पानी पड़ने पर बिगड़ती नहीं। लेकिन सन की रस्सी पानी में रहने से ठीक नहीं रहती। नावो को बाँधने के लिए जो बड़े-बडे रस्से बनाये जाते हैं वे मूँज के ही होते हैं।

लकड़ी का काम

रस्सी के अलावा दूसरी चीज है लकड़ी, जिसके बिना किसानों का काम नहीं चल सकता। गाँव में बढ़ई का होना जरूरी है। हल, जुआ, पालकी, खिड़की, दरवाजा बढई द्वारा ही तैयार होते हैं। डवट, खडाऊँ और खुरपा, कुल्हाड़ी व बसूला का बेट भी वही बनाता है। लकड़ी के जो कुछ भी काम बन सकते हैं वे बढई की ही दस्तकारी के नमूने हैं। लेकिन बढई एक ही दो चीजो के बनाने में अपना हुनर दिखाते हैं। जो सब बातों में अपनी टाँग अड़ाते हैं वे किसी बात में निपुण नहीं हो पाते। गाँव के बढई को हल तथा बैलगाड़ियाँ तो जरूर ही बनानी पड़ती हैं। कोई बढई हल बनाने में होशियार होता है; कोई गाड़ी बनाने में। इसके अलावा उत्तरी भारत में लकडी पर चिताई का काम देखने में आता है। कारीगर लकडी पर ऐसे उम्दा-उम्दा बेल बूटे बनाते हैं तथा ऐसी नक्काशी करते हैं कि देखते बनता है। इसमे शासम, साल व आबनूस की लकडी अधिकतर काम में लाते हैं। नागपुर तथा अन्य जगहों में चिताई का काम बहुत अच्छा होता है। बनारस की तरफ लकड़ी के खिलौने बनाकर उस पर हल्के रग से चित्र-कारी की जाती है और फिर एक खास किस्म की वारनिश कर दी जाती है। ये खिलौने काफी अच्छे होते हैं।

लोहार का काम

के बडे-बडे कारखाने खुल जाने से लोहार का बहुत काम घट गया है। तब भी लोहार देहात मे अपना स्थान रखता है।

तेल पेरने का काम

लोहार की तरह तेली का हाल है। गॉव मे तेल जलाने के काम मे आता है। तिल्ली का तेल जलाया भी जाता है और खाया भी। सरसों, अलसी, महुआ आदि और भी कितनी चीजों का तेल निकलता है। गॉव में एक तेली अवश्य होता है। तेल पेरना और बेचना ही उसका काम होता है। तिल्ली कोल्हू में पेरी जाती है। पत्थर की एक बडी सी ओखली मीन में गडी होती है। ओखली के पास ही एक लकड़ी का खम्भा रहता है। उसमें लकड़ी का बडा सा कोल्हू बॉध देते हैं, जिसमें वह सधा रहे। ओखली में तिल्ली डालकर बैल कोल्हू के साथ ओखली के चारों ओर घुमाते हैं। ऐसा करने से तिल्ली कोल्हू के नीचे पिसती है और उसमें से तेल निकलता है। पत्थर मे छेद होता है। तेल इस छेद से जमीन मे रक्खे हुये एक बर्तन में गिरता जाता है। तेल निकल जाने पर तिल्ली की खली हो जाती है। खली जानवरों को खिलाई जाती है, जिससे वे दूध अधिक दें। अब तो कही-कहीं आयल एंजिन मशीनों द्वारा तेल निकाला जाता है। इसके चालू करने मे खर्च तो ज्यादा जरूर होता है लेकिन देशी कोल्हू मे जितना तेल दिन भर मे निकलता है उतना तेल एंजिन के जरिये आधा घटे में निकल आता है।

जूते बनाना

जिस तरह गाँवों मे जुलाहा, बढ़ई, लुहार आदि रहते हैं, वैसे ही चमार भी रहता है। अगर इनमे से कोई भी गाँव छोड़ दे तो सब लोगों को तकलीफ होगी। चमार हमारे लिए नए-नए जूते बनाता है और फटे-पुराने जूतों की मरम्मत करता है। गॉव का चमार खेती भी करता है और खेती से फुरसत मिलने पर जूता बनाने का काम कर लेता है। यों तो गॉव का चमार घोड़ों पर की काठी और बैल हॉकने के लिए चमडे के तस्मे वगैरह बनाता है। शहरों में चमडे के बकस और मशक वगैरह बनाये जाते हैं। लेकिन गाँव का र अधिकतर जूते ही बनाता है। तुमने देहाती जूता तो देखा ही होगा। रों मे अब पश्चिमी ढंग के फैशनदार जूते के चल जाने से देहाती जूतों । कोई नही पूछता। लेकिन अंग्रेजों के आने के पहले सब कोई देहाती जूता

पहनते थे। हमारा देहाती जूता बड़ा मजबूत तथा अच्छा होता है। इससे पहले तो पैर मे गर्मी नही पहुँचती है। फिर भी यह जल्दी पहना और उतारा जा सकता है। ये जूते ऐसे बनाये जाते हैं कि इन्हे पहनने और उतारने में हाथ न लगाना पड़े। जूता, गाय, बैल आदि जानवरो की खाल का बनाया जाता है। जानवर के मर जाने पर चमार उसकी खाल को निकाल लेते हैं। खाल को पहले धूप मे अच्छी तरह सुखाते हैं जिससे वह खूब कड़ी हो जाती है। इसके बाद खाल के रोएँ साफ कर दिये जाते हैं। फिर खाल को कमाते हैं। जूता बनाते समय पैर का नाप लेकर चमार उसी तरह हमारे पैर का जूता तैयार कर देता है जिस तरह दर्जी नाप लेकर हमारा कोट या कमीज सी देता है। अब तो जूता बनाने के बड़े-बड़े कारखाने खुल गए हैं, जिनमे बड़े उम्दा-उम्दा सस्ते जूते बनाए जाते हैं। भारतीय कारखानों में बने जूतों मे कानपुर, आगरा या बाटा कम्पनी (कलकत्ता) के जूते मशहूर हैं। अब हम कुछ ऐसे उद्योग-धन्धों का वर्णन करेंगे जो गाँवों मे खोले जा सकते हैं।

फल-फूल और तरकारी पैदा करना

हमने पिछले अध्याय मे फल, फूल और तरकारी-भाजी के बाग लगाने के काम की चर्चा की थी। यदि किसान उनज की खेती के साथ एक छोटा सा बाग लगा ले तो उसे फल और तरकारी खाने को मिलेगी ही, उन्हे बेच कर वे कुछ पैसे भी पा सकेंगे। फूलों से किसान का घर तो महक ही उठेगा। उससे खुशबूदार जल, इत्र तथा गुलाब से गुलकंद बनाया जा सकता है। कुछ फूल के पेड़ बंजर भूमि मे भी फूल सकते हैं और तरकारी की वाटिका मे किसान के घर का गंदा पानी काम आ सकता है। परन्तु यदि वाटिका किसान के घर से मिली नही है तो गन्दे पानी को वाटिका तक ढोना पड़ेगा। फूलों से पूर्ण लाभ उठाने के लिये किसान को उचित शिक्षा, ट्रेनिंग तथा सहायता देने की आवश्यकता पड़ेगी। परन्तु किसान गॉव मे फल व तरकारी किसके हाथ बेचेगा? अगर वह किसी शहर के पास है तब वह उसे शहर ले जाकर अथवा शहर के विक्रेताओ के हाथ उन्हे बेच देगा। अगर ऐसा नही है तब बिना यातायात के प्रबन्ध के वह पैसे नही कमा सकता।

शहद का धन्धा

ऊपर फूलों का जिक्र आया था। फूलों के बीच अगर शहद की मक्खी

पाल कर छत्ता लगवाया जाय, तो शहद पैदा किया जा सकता है। लेकिन छत्ते के लिए फूल की वाटिका आवश्यक है। अब तो लकड़ी के ऐसे बक्स मिलते हैं कि उनमें शहद की मक्खियाँ पालकर शहद निकालने के लिये न तो मक्खियों को उडाना पडता है और न छत्ते को तोडना। इस धन्धे में झंझट भी कम होता है। पूँजी भी कम लगती है और जगह भी कम घिरती है। शहद अधिक पौष्टिक भोजन भी है। परन्तु इस धन्धे की सफलता के लिये भी किसान को शिक्षा तथा बिक्री में सहायता आवश्यक है। दक्षिण भारत में डाक्टर स्पेंसर हैच तथा दूसरे ईसाई मजहब वालों की मेहनत के कारण गाँवों में इस धन्धे का काफी प्रचार हुआ है।

अन्य उद्योग-धन्धे

उपर बताए गए कुछ घरेलू उद्योग-धन्धों के अलावा अभी बहुत से और धन्धे हैं। मध्यप्रदेश में वर्धा नगर मे एक "अखिल भारतीय ग्राम उद्योग सघ" है। उसका उद्देश्य गाँवों की हालत सुधारना है। उसकी देख-रेख में नीचे लिखे ग्राम उद्योग चल रहे हैं :—

धान से चावल निकालना, आटा पीसना, गुड बनाना, तेल निकालना शहद की मक्खियाँ पालना, मछली पालना, दूध का काम, कम्बल बनाना, रेशम का माल बनाना, सन की कताई और बुनाई, कागज बनाना, चटाई बनाना, कघियाँ बनाना, पत्थर की कारीगरी, साबुन बनाना, चमड़ा तैयार करके उससे तरह तरह की वस्तुएँ बनाना इत्यादि।

घरेलू उद्योग-धन्धे की कठिनाइयाँ।

घरेलू उद्योग-धन्धों की मुख्य कठिनाइयाँ निम्नलिखित हैं :—

(१) काम करने वालों को अच्छे कच्चे पदार्थ, जैसे सूत, लोहे की चद्दर तथा ताँबा-पीतल उपयुक्त भाव में नहीं मिलते।

(२) उसके पास पूँजी की कमी है। वे जिस महाजन से कर्ज लेते हैं उसके चगुल में फँस जाते हैं। फिर या तो उन्हें अपना माल सस्ते दामों पर महाजन के हाथ बेचना पडता है या अधिकाश कमाई महाजन को सूद के [illegible] देनी पडती है।

[illegible] पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव के कारण खरीदार की पसद बदल गई [illegible]दार की पसद पहले जैसे बनती है और न कारीगरों को नए

डिजाइन आदि बताने का उपयुक्त और पर्याप्त प्रबन्ध है। शिल्प शिक्षा का विशेष प्रबन्ध भी अपर्याप्त है।

(४) घरेलू उद्योग-धन्धों के माल को उचित कीमत पर अच्छे बाजार और विदेशों में जहाँ उनकी माँग अधिक है, बेचने की विशेष सुविधा भी नहीं है।

घरेलू उद्योग-धन्धे और सरकार

हमने इस अध्याय में कुछ खास उद्योग-धन्धों के बारे में तो खुल कर बताया है और कुछ के बारे में संक्षेप में हाल कह दिया है। जिन धन्धों का अच्छी तरह बताया है उनका गाँव से अधिक सम्बन्ध है।

इसका यह मतलब नहीं है कि गाँव में गाँव से अधिक सम्बन्ध रखने वाले धन्धों की ही उन्नति की जाय। अगर सरकार पहले से योजना बनाकर गाँवों में कृषि के साथ उद्योग-धन्धों की व्यवस्था और उन्नति करे तो घरेलू उद्योग-धन्धों द्वारा साबुन, कागज, कंघी, बटन, सुरक्षित छिले फल, हाथ के बिने कपड़े आदि अनेकों पदार्थ तैयार किये जा सकते हैं। वह गाँवों के लिये उपयुक्त धन्धे चुन सकती है। उनको चालू करने की व्यवस्था कर सकती है। किसानों को उनमें शामिल होने के लिए प्रोत्साहन, शिक्षा, और आर्थिक सहायता दे सकती है। धन्धों के लिए यातायात के साधनों की उन्नति कर सकती है और माल की बिक्री सुलभ कर सकती है। अगर गाँवों में बिजली भी पहुँच जाय तो कार्य-क्षमता और कार्य-क्षेत्र अधिक बढ़ जाय। सरकार ही यह कार्य सम्पन्न कर सकती है। प्रादेशिक तथा दिल्ली की केन्द्रीय सरकारें ऐसी कोशिश कर रही हैं। घरेलू उद्योगों की उन्नति करना उनकी घोषित नीति है। भारत सरकार ने घरेलू धन्धों को प्रोत्साहन देने के लिए एक बोर्ड बनाया है।

हम खेती और घरेलू उद्योग-धन्धों के बारे में काफी जान गए। इनके जरिए बहुत सी वस्तुएं उत्पन्न होती हैं। अब प्रश्न उठता है कि जो वस्तुएँ उत्पन्न की गई हैं उनको काम में किस प्रकार लिया जाय। अर्थात्, वस्तुओं का किस तरह से उपभोग किया जाय। उपभोग के सम्बन्ध की सारी बातों पर हम अब अर्थशास्त्र के उपभोग विभाग के अन्दर विचार

अभ्यास के प्रश्न

१—अपने गाँव के किसी किसान से पूछकर लिखिए कि प्रति मास उसे खेती सम्बन्धी कौन-कौन से काम करने पड़ते हैं। किन महीनों में उसे सबसे अधिक काम रहता है और किन महीनो मे उसे सबसे कम ?

२—आपके गाँव के किसान साधारणत वर्ष भर में कितने महीने बेकार रहते हैं ? इस बेकारी के समय मे आप इनको कौन सा काम करने की सलाह देंगे।

३—आपके गाँव मे आजकल प्रतिमास कितना सूत काता जाता है ? यदि गाँव के सब बेकार स्त्री-पुरुष प्रति दिन चार घंटा सूत कातने लगें तो एक मास में कितना सूत तैयार हो सकता है ?

४—आपके गाँव मे या आसपास के गाँवों में जुलाहों की कितनी सख्या है ? ये जुलाहे हाथ के कते सूत का कहाँ तक उपयोग करते हैं ?

५—जुलाहों की आर्थिक दशा का वर्णन कीजिए और उनकी दशा सुधारने का उपाय बतलाइये।

६—आर्थिक दृष्टि से खद्दर प्रचार की आवश्यकता समझाइए।

७—अपने गाँव के कुम्हार की आर्थिक दशा का वर्णन कीजिए। वह अपनी आमदनी किस प्रकार बढ़ा सकता है ?

८—उत्तर प्रदेश मे पीतल के बरतन किन स्थानों में अच्छे और सस्ते मिलते हैं ? मुरादाबाद किस प्रकार के बर्तनों के लिए प्रसिद्ध है और उस उद्योग की वर्तमान-दशा कैसी है ?

९—आपके जिले मे गुड किस प्रकार बनाया जाता है। इस प्रदेश में गुड़ कहाँ अच्छा और सस्ता बनता है ?

१०—शहर में दूध का क्या भाव है ? गाँवों में दूध किस दर पर मिलता है ? दोनों दरों में अन्तर के क्या कारण हैं ?

११—शुद्ध दूध की पहिचान लिखिये। शहर मे शुद्ध दूध सस्ते भाव से लेने के लिए योजना तैयार कीजिये।

१२—अपने गाँव के मुख्य घरेलू धन्धों का वर्णन कीजिए और बतलाइए उसके लिए कच्चा माल किस तरह प्राप्त होता है और उसकी बिक्री किस प्रकार होती है।

१३—आपके गॉव मे चमारों की क्या दशा है ? उनकी दशा किस प्रकार सुधारी जा सकती है ?

१४—अपने गाँव के मुख्य घरेलू धन्धो का वर्णन कीजिये। उनमे कौन-कौन सी बुराइयॉ हैं ? उन्हे आप कैसे दूर करिएगा ?

१५—यदि आपको ५००) दे दिया जाय तो आप उसे अपने गॉवो के घरेलू उद्योग-धन्धों को सुधारने के लिए किस प्रकार खर्च करेगे।

१६—सरकार योजना बनाकर किस प्रकार घरेलू उद्योग-धन्धों की उन्नति कर सकती है ? उदाहरण देकर समझाइये।

१७—ग्रामीण उद्योग-धन्धों की आवश्यकता क्यों है ? समझाकर लिखिए कि ग्रामीण धन्धे किस प्रकार के हों।

छठा अध्याय

आवश्यकताएँ (Wants)

आवश्यकता का महत्व
(Importance of Wants)

किसी वस्तु की उत्पत्ति उसके उपभोग किये जाने के लिये की जाती है। किसान अनाज क्यों पैदा करता है ? उसके आटे की रोटी बनाकर खाने के वास्ते। आदमी कपड़े क्यों बनवाता है ? उन्हे बदन पर पहिनने के लिए। गॉव वाले जाडे मे अलाव क्यो जलाते हैं ? आग ताप कर ठढ मिटाने के लिए। अर्थात् उपयोग करने के कारण ही उत्पत्ति का कार्य किया जाता है। आदमी क्यों खाना खाता है ? काम करने के लिए। और काम क्यों करता है ? उससे पैदा हुए धन से खाना खरीदने के लिए। मनुष्य को तरह-तरह की आवश्यकताऍ रहती हैं। यह भॉति-भॉंति के फल, फूल, कपड़े-लत्ते प्राप्त करना चाहता है। इसलिए ससार मे तरह-तरह के काम-धन्धे दिखलाई पडते हैं। किसानी, बढईगिरी, लोहारी, चमारी, दर्जी का काम, घी बनाने का धन्धा आदि जितने काम-काज है सब की पूर्ति मनुष्य की आवश्यकताओं के हाथ मे रहती है। अगर आज हमारी आवश्यकताऍ

कुछ भी न रहे तो शायद बहुत से काम बन्द हो जायें। बहुत से पेशे वालों का अपना-अपना काम छोडना पड जाय। अस्तु, कहने का मतलब यह है कि उत्पत्ति और उपभोग में बहुत गहरा सम्बन्ध है, और हम किसी वस्तु का उपभोग इसलिए करते हैं कि हमें उस वस्तु के उपभोग की आवश्यकता मालूम पडती है और हम उस आवश्यकता को पूरा करना चाहते हैं। अतएव उपभोग की मूल आवश्यकताएँ हैं; और हमें इनके विषय में कुछ जरूरी बातें जान लेनी चाहिये।

आवश्यकता और इच्छा (Wants and Desire)

आवश्यकता मनुष्य की उस इच्छा को कहते हैं जिसको पूरा करने के लिए वह मेहनत करता है। आवश्यकता और इच्छा में फर्क है। आपकी इच्छा कलक्टर, जज और बादशाह बनने के लिए हो सकती है। आप सोच सकते हैं कि मैं जमींदार बनूँ और जो इस समय जमींदार हैं वे किसान बनें, और तब अच्छी तरह जमींदार की खबर लेंवे। इच्छा करना और मन के लड्डू खाना बहुत कुछ एक ही बात है। लेकिन जब आप किसी इच्छा को कार्यरूप में कर दिखाने की कोशिश करते हैं तब इच्छा आवश्यकता में पलट जाती है। आप कोट पहनने की इच्छा रखते हैं। जब आप कपडा मोल लाकर दर्जी से अपना कोट बनवा कर पहनते हैं तो कहा जायगा कि आपको कोट की आवश्यकता थी। इसी तरह बाजार में कई एक वस्तुओं को देख कर उनको खरीदने और उपभोग करने की इच्छा होती है लेकिन अगर हम उन वस्तुओं को प्राप्त करने का प्रयत्न या उद्योग न करें तो वह केवल कोरी इच्छा ही रह जाती है। किसी आवश्यकता को पूरा करने के लिए उद्योग करना निहायत जरूरी है।

आवश्यकता और उद्योग (Want and Effort)

प्राचीन काल से ही मनुष्यों को अनेक वस्तुओं की आवश्यकता रही है। जिस समय लोग वन में जंगली जानवरों के समान रहते थे उस समय भी [illegible] को अपने प्राण की रक्षा के लिए पीने को पानी और पेट भरने [illegible] अन्न की आवश्यकता थी। जैसे-जैसे आदमियों की सभ्यता बढ़ती [illegible] गों की आवश्यकताएँ भी बढ़ती गईं। जब आग का आविष्कार हुआ मनुष्यों को नाना प्रकार के भोजनों की आवश्यकता हुई। उन्हें यह

मालूम पड़ने लगा कि उबाले चावल खाएँ, दाल पकानी चाहिए या मास को भून कर खाना चाहिये। इसी तरह एक के बाद दूसरी आवश्यकता प्रकट होती गई। जब भोजन की आवश्यकता पूरी हो गई तो वस्त्रों की आवश्यकता हुई। जब पहनने को कपडे मिलने लगे तो उनको पेड के नीचे या पेड के ऊपर डालों पर सोना अच्छा नहो मालूम हुआ और रहने के लिए मकान की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। इन सब की तृप्ति के बाद खास-खास तरह के भोजन जैसे रसगुल्ला, कचोडी, पकौड, हलुआ आदि की जरूरत हुई। पहनने के लिए अब उत्तम-उत्तम वस्त्र, नेकटाई, कालरदार कमीज, कुरता, पैजामा वगैरह की आवश्यकता पड़ी। इसी तरह आदमियों ने अपने को पेड की पत्तियों और फूलों से सजाना छोड दिया और सोने-चाँदी के गहने, कड़े, हँसली, जंजीर आदि बनाकर पहनने लगे। इसके बाद रथ या बैलगाड़ी की सवारी, बल्लम, भाला, तलवार आदि हथियारों, संगीन इत्यादि की आवश्यकताये भी प्रकट हुई। कहने का मतलब यह कि जैसे-जैसे सभ्यता बढती गई और पुरानी आवश्यकताओं की तृप्ति होती गई; त्यों-त्यों नई आवश्यकताये उनके स्थान पर आती गई यहाँ तक कि अब सख्या गिनती से परे हो गई।

आवश्यकता और उद्योग का गहरा सम्बन्ध है। जैसे-जैसे आदमी की आवश्यकतायें बढ़ती जाती हैं, वह उनकी तृप्ति के लिए उद्योग करता रहता है।

मनुष्य एक आवश्यकता की पूर्ति के लिए उद्योग करता है। वह पूरी होते ही उसे दूसरी आवश्यकता आ घेरती है। इस प्रकार आवश्यकताओं, उद्योग तथा पूर्ति का क्रम बँधा रहता है :—

आवश्यकता—उद्योग—पूर्ति—नई आवश्यकता—उद्योग

मनुष्य बहुत से उद्योग इसलिए भी करता है कि फलस्वरूप नई आवश्यकतायें पैदा हो जाएँगी। यथा मिल मालिक नई डिजाइन निकालता है ताकि ग्राहक इसको पसन्द करने लगे। कुछ वर्षों पहले आइसक्रीम बड़े लोगों की पसन्द थी अब उत्पादकों ने उसे गाँवों तक बेचने का बीड़ा उठाया है। इस प्रकार की आवश्यकता की पूर्ति अधिक लाभ हेतु काम करने वाले करते हैं।

परन्तु बहुत से मनुष्य अपने मनोरंजन या हाबी स्वरूप विज्ञान, साहित्य

इत्यादि के सम्बन्ध में अध्ययन व खोज करते हैं और नयी-नयी बातें ढूँढ निकालते हैं। इन नए आविष्कारों की सहायता से नई-नई वस्तुएँ बनाई जाती हैं और मनुष्य को इन वस्तुओं की भी आवश्यकता मालूम होती है।

आवश्यकता के लक्षण

आवश्यकताएँ अपरिमित है। इनका कोई अन्त नहीं है। आम-तौर पर आदमी का भाँति-भाँति के भोजन, तरह-तरह के कपड़ों, नई-नई किताबों और दूसरी वस्तुओं की इच्छा बनी रहती है। कहा जाता है कि जिनके पास धन है वे अपनी सारी आवश्यकताओं को पूरा कर सकते हैं। परन्तु जरा सोचा जाय तो मालूम पडता है कि कोई भी धनवान् मनुष्य यह नहीं कह सकता कि उसको सब आवश्यकताये पूरी हो गई हैं, क्योंकि ज्योंही एक आवश्यकता की तृप्ति होती है त्योंही दूसरी उसके स्थान पर आ खडी होती है। आवश्यकता की वृद्धि होने से ही सभ्यता की भी उन्नति होती है। मनुष्य की आवश्यकताये अपरिमित तो हैं ही लेकिन यदि यथेष्ट साधन हों तो मनुष्य की प्रत्येक आवश्यकता किसी एक समय मे पूरी की जा सकती है, उदाहरण के लिये एक भूखे आदमी को लीजिये। उसको भोजन की आवश्यकता है लेकिन उसके भोजन की भी एक सीमा है। चार पाँच रोटियों से उसका पेट भर जाता है और उसको उसके बाद फिर रोटियों की जरूरत नहीं रहती। इसी प्रकार किसी एक आवश्यकता को पूरी करने का सब सामान रहने से किसी खास समय में उसकी तृप्ति की जा सकती है। कहा जा सकता है कि कई इच्छाएँ ऐसी हैं जिनकी पूर्ति हो ही नहीं सकती। जैसे धन की इच्छा, अधिकार की इच्छा, बड़प्पन की इच्छा इत्यादि। यह सहसा कहा भी नहीं जा सकता कि कितने धन सामग्री या गहने से कोई आदमी या औरत सन्तुष्ट होगी। लेकिन इनमें से हर एक इच्छा कई इच्छाओं से मिल कर बनती है। ये एक एक इच्छा नहीं हैं। उदाहरण के लिए धन की इच्छा को ले लीजिये। देखने मे तो यह एक इच्छा है पर इसके पीछे उस धन से मिलने वाली अनेक वस्तुओं की इच्छा छिपी है।

मनुष्य सब आवश्यकताओं को एक साथ पूरा कर सकता है और अपनी सब आवश्यकताओं को पूरी करने के लिए एक सी जल्दी

रहती है। कोई आवश्यकता सबसे अधिक जरूरी है तो कोई कम। साथ ही वही आवश्यकता सबके लिये एक सी जरूरी नहीं होती। रामू के लिए जो आवश्यकता सबसे अधिक जरूरी है, श्याम के लिए वह जरूरी न हो। मान लो रामू पढ़ता है और श्याम नहीं पढ़ता। रामू को तो किताब की जरूरत है लेकिन श्याम को इसकी कोई जरूरत नहीं पड़ेगी। लेकिन कोई आवश्यकता ऐसी भी हो सकती है जो कि तुम्हारे लिए अभी जरूरी हो, पर मेरे लिए नहीं। हाँ, कुछ देर के बाद वह मेरे लिए भी जरूरी बन सकती है। मान लो, मैं खा चुका हूँ और तुमने अभी खाना नहीं खाया है, इसलिए तुमको अभी खाना खाने के लिए भोजन चाहिए। कुछ घंटों के बाद जब मुझे फिर से भूख लगेगी तब मुझे भी भोजन की जरूरत पड़ेगी। इससे यह भी स्पष्ट है कि कुछ आवश्यकतायें जैसे भूख, प्यास, दस बजे स्कूल जाना आदि: बार-बार आती हैं।

हैं। यों तो हम आवश्यकता के लक्षणों के मुताबिक कह सकते हैं कि कुछ जरूरतों को शीघ्र पूरा करना पडता है, कुछ को देर मे। जैसे पहनने के लिए कपडा चाहे न मिले लेकिन भूख लगने पर खाना अवश्य मिलना चाहिए। कुछ आवश्यकताएँ ऐसी होती हैं कि उनको पूरा करने के लिए बहुत से साधन होते हैं, जैसे प्यास के लिए हम पानी, शरबत, मट्ठा या सोडा लेमन पी सकते हैं। ठीक, लेकिन इस तरह के तो शायद सैकड़ों विभाग बनाए जायँ तब भी काम न चलेगा। सबसे अच्छा तरीका वह है जिसमे आवश्यकताओं को तीन हिस्सों मे बाँटते हैं; आवश्यक आराम हेतु और विलासिता हेतु। पहले मे तो वे आवश्यकतायें आती हैं जिनको हम **आवश्यक** (Necessaries) समझते हैं। अधा-अपाहिज कैसा भी मनुष्य क्यों न हो वह अपने शरीर को नाश होने से बचाने की हमेशा कोशिश करता है। पेट भरने के लिए सब को भोजन और पीने का पानी चाहिए। पहनने के लिए कपडे की आवश्यकता पड़ती है। यहाँ पर एक बात नोट करने लायक है। राम साधारण भोजन करता है, फटा-पुराना कपडा पहनता है और टूटी-फूटी झोपडी में रहता है। इसके विपरीत श्याम अच्छा अनाज, दूध, फल इत्यादि खाता है। वह साफ-सुथरे कपडा पहिनता है और हवादार मकान मे रहता है। एक तरह से राम और श्याम दोनों ही जीवन रक्षा के लिए जरूरी वस्तुओं का उपभाग करते हैं, परन्तु कुछ वर्षों मे राम कमजोर और रोगी बन जायगा और श्याम मजबूत व तगडा। कहने का मतलब यह है कि **आवश्यक वस्तुओं मे से कुछ तो केवल मनुष्य को जिन्दा बनाये रखती है और कुछ आदमी की जीवन-रक्षा के अलावा तन्दुरुस्ती भी प्रदान करती है।** अत. आवश्यक वस्तुओं के दो वर्ग हो गये—जीवन-रक्षा की वस्तुएं (Necessaries for existence) और निपुणतादायक वस्तुएँ (Necessaries for efficiecy)। इनके अतिरिक्त एक तीसरा वर्ग होता है। कृत्रिम आवश्यकता की वस्तुओं का। इनके अन्तर्गत उन चीजों को शुमार करते हैं जो मनुष्य की आदतवश जरूरी हो जाती हैं, जैसे किसान तम्बाकू पीते हैं और अब शहर में लोग चाय पीते हैं। इनके बिना वे जिन्दा रह सकते हैं परन्तु पीते-पीते आदत ऐसी हो गई है कि उनके बिना काम नहीं चलता। अतः उन्हे कृत्रिम आवश्यकता की वस्तुओं में गिनते हैं।

आराम की वस्तुएँ (Comforts)

जिन चीजों की मनुष्य को आराम करने के लिए जरूरत मालूम पड़ती है उन्हें आराम की वस्तुयें कहते हैं। आराम इस प्रकार की कृत्रिम आवश्यकता को कहते है। आराम की वस्तुओं (Comforts) से शरीर को सुख मिलता है और काम करने की ताकत भी बढ़ती है। लेकिन इन पर जितना खर्च किया जाता है उस हिसाब से कार्य-कुशलता नहीं बढ़ती। जैसे किसी गरीब आदमी के लिए धोती, कुर्त्ता और चप्पल उसकी कार्य-कुशलता बढ़ाते है लेकिन अगर वह तिगुना व्यय करके बढ़िया महीन धोती, रेशमी कपड़े की कमीज व उम्दा जूता पहने तो उसकी कार्य-कुशलता तिगुनी न हो जाएगी। ये तथा गरीब किसान के लिए साइकिल, घड़ी, पक्का मकान इत्यादि आराम की सामग्रियों में शामिल किये जाते हैं।

अन्त में उन आवश्यकताओं की बारी आती है जिनको पूरा करने के लिए मनुष्य विलासिता की वस्तुओं (Luxuries) का उपभोग करता है। इन चीजों पर जो रकम खर्च की जाती है उससे बहुत कम कार्य-कुशलता मिलती है। कभी-कभी तो इन वस्तुओं के उपभोग से कार्य-कुशलता बढ़ने की जगह घटने लगती है। उदाहरणस्वरूप खूब बढ़िया आलीशान मकान, बहुत कीमती भड़कीली पोशाक व विलायती ह्विस्की और अंगूरी शराब इत्यादि गिनाई जा सकती हैं। विलासिता की वस्तुओं का सेवन करने से आदमी को आलस्य घेर लेता है और काम करने को जी नहीं चाहता। शराब इत्यादि के सेवन से तो आदमी बिलकुल कमजोर, नाताकत और रोगी बन जाता है।

बिजली के लैम्प इत्यादि आराम की वस्तुयें समझी जावेंगी। सायवेरिया में मोटे ऊनी कपड़े आवश्यक हैं, परन्तु भारत में आराम देने वाले हैं।

आवश्यकता की पूर्ति (Satisfaction of Wants)

अब प्रश्न उठता है कि आवश्यकता पूरी किस प्रकार की जाती है। यह तो सब को मालूम है कि हर आदमी पहले अपने खाने-पीने की वस्तुयें खरीदता है। अर्थशास्त्र के नियमों के अनुसार भी यही नतीजा निकलता है कि मनुष्य अधिकतर जीवन-रक्षक वस्तुओं का उपभोग करे और आराम व विलासिता की चीजों का उपभोग करने मे रुपया-पैसा की फिजूलखर्ची न करे। परन्तु इस बात पर हम बाद मे विचार करेंगे। यहाँ पर पहले यह जानना आवश्यक है कि **बहुत सी आवश्यकताओं को तो आदमी सीधे-सीधे पूरा कर लेता है।** मान लिया आपको पानी पीना है, आप नदी या तालाब पर जाकर पानी पी लेते हैं। अगर आपको जाड़े के दिन में नहाने के लिये पानी गरम करना है तो आप बटलोई में पानी भर कर आग पर चढ़ा देते हैं। जब कोई आवश्यकता सीधे-सीधे पूरी की जाती है तो किसी सम्पत्ति का उपभोग सीधे-सीधे किया जाता है। जैसे यहाँ पर बटलोई से काम लिया गया था। परन्तु **अधिकतर आवश्यकता पूर्ति के लिये रुपये पैसे कमाए जाते हैं और तब उन रुपयों से आवश्यक वस्तुएँ मोल ली जाती हैं।** बढ़ई हल, कुर्सी, मेज, आदि चीजे बना कर बेचता है; लोहार फाल, खुर्पा, फावड़ा वगैरह लोहे के सामान बनाता है। वस्तुओं को बेचने से जो पैसा बढ़ई या लोहार को मिलते हैं उनसे वे अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये जरूरी वस्तुये खरीदते हैं। कहने का मतलब यह है कि आवश्यकताओं के पूरा करने के प्रश्न की जगह हमे यह सोचना चाहिये कि कोई मनुष्य अपनी आमदनी के रुपये-पैसों को किस प्रकार खर्च करता है तथा खर्च करने का कौन सा तरीका सबसे उत्तम होगा।

आय-व्यय (Income and Expenditure)

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है जीवन-रक्षक पदार्थ तो सब लोगों को सेवन करना चाहिये। इन पर किया गया खर्च हमेशा न्याययुक्त कहा जाता है। आराम की वस्तुओं पर किया गया खर्च भी बुरा नहीं है क्योंकि इनसे भी

कार्य-कुशलता बढ़ती है। लेकिन ऐश-आराम और विलासिता की वस्तुओं पर तथा मादक वस्तुओं पर किया गया खर्च अक्सर फिजूलखर्ची में समझा जाता है। लेकिन सबसे बड़ी कठिनाई तो यह है कि आमतौर पर यह नहीं कहा जा सकता कि कौन-सी वस्तु जीवन-रक्षक है, कौन-सी आराम की और कौन सी चीज विलासिता की है। क्योंकि मनुष्य की प्रकृति, आदत, स्थिति, फैशन व समय के मुताबिक एक वस्तु आवश्यक भी हो सकती है और आराम व विलासता की सामग्री भी बन सकती है। अगर कोई किसान एक घड़ा खरीदे तो उसका यह खर्च फिजूलखर्ची में गिना जायगा। लेकिन यदि एक विद्यार्थी घडी खरीदता है तो शायद उसकी खरीद न्यायपूर्ण मानी जा सकती है। हमारा गरीब सीतल अगर अपने और बच्चों को भूखा रखकर या कर्ज लेकर घड़ी खरीदता है तो वह जरूर विलासिता की चीज खरीदता है। लेकिन अगर कोई अमीर मनुष्य ऐसा करे तो वह फिजूलखर्ची नहीं कहलायेगी। क्योंकि उसके पास इतना रुपया रहता है कि वह अपनी जरूरी आवश्यकताओं को अच्छी तरह पूरी कर सकता है।

कहा जाता है कि जीवन-रक्षा सम्बन्धी आवश्यकताएँ गिनी गिनाई हैं, और यदि उन्हीं को पूरा करने पर अधिक जोर डाला जायगा तो मनुष्य को अधिक उद्योग नहीं करना पडेगा, और मनुष्य जाति असभ्य बन जायगी। अधिक सभ्य बनाने के लिए यह आवश्यक है कि हम नई बातों का आविष्कार करें और नई नई वस्तुएँ बनावे, जैसे रेडियो, टेलीफोन, हवाई जहाज। ठीक है, लेकिन हमारे गरीब भारत के लिए समय देखकर ही काम करना चाहिये। हमारे किसानों की क्या हालत है? क्या उन्हें जीवन-रक्षा के पदार्थ प्राप्त हैं? अन्दाज लगाया गया है कि जेल के अन्दर कैदियों को जो भोजन मिलता है वह भी बाहर के अधिकाश मनुष्यों को नसीब नहीं होता। ऐसी हालत में विलासिता की वस्तुओं पर किया गया खर्च बिलकुल फिजूल है। इसके अलावा हम बता चुके हैं कि हमारे मजदूर और छोटे शिल्पकार अपनी आमदनी का अधिकांश भाग तम्बाकू, शराब, अफीम आदि मादक वस्तुओं के सेवन में उड़ा देते हैं। ऐसी हालत में हमारे बच्चों को कहाँ से घी-दूध मिल सकता है जिससे वे भविष्य में तन्दुरुस्त और कार्य-कुशल बनें। तो फिर धन को किस प्रकार से खर्च करना चाहिये? उत्तर है इस

तरह से जिससे न केवल हमको अधिक से अधिक सुख मिले बल्कि जिससे देश मे रहने वाले ज्यादा से ज्यादा जनसमूह को जीवन-रक्षक वस्तुऍ मिलें। जब तक यह हालत न हो जाय तब तक आराम व विलासिता की वस्तुओं को खरीदना फिजूलखर्ची मे गिना जाना चाहिये। इसके बाद जब इन चीजों की भी बारी आवे तब ऐसी वस्तुओं का उपभोग न करना चाहिये जिनसे थोड़ी देर के आनन्द के सिवा और कुछ न मिले, जैसे नाच, खेल, तमाशा, आतिशबाजी। इनमें तो जो सामग्री उनके बनाने में लगाई जाती है वह मिनटों मे जलकर खाक हो जाती है। अर्थात् देश का उतना धन नष्ट हो जाता है।

व्यय के सिद्धात

तो फिर धन का किस प्रकार व्यय करना चाहिए? उत्तर है, इस तरह कि न केवल हमको अधिक से अधिक सुख मिले बल्कि जिससे देश मे रहने वाले ज्यादा से ज्यादा जन-समूह का जीवन-रक्षक वस्तुऍ मिले। जब तक ऐसा न हो, आराम और विलासिता की वस्तुओं को खरीदना फिजूलखर्ची है। परन्तु किसी समय भी ऐसी वस्तुओं का उपभोग वाछनीय नही है जिनसे क्षणिक आनन्द मिले और देश का धन बर्बाद हो, जैसे आतिशबाजी।

उपयुक्त व्यय के लिए यह आवश्यक है कि अपनी आवश्यकताओं का पूरा ज्ञान हो तथा उनको तुलनात्मक दृष्टि से पहचानने की भी शक्ति हो। आवश्यकता पूर्ति के कई साधन (वस्तुऍ) होते हैं—कोई टिकाऊ, कोई देखने मे भडकीला, कोई दर असल उपयोगी। व्यय करने वाले को वस्तुओं को पहचानने की भी शक्ति होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त उसे यह मालूम हो कि कौन वस्तु कहाँ अच्छी और सस्ते दाम मे मिलती है।

बचत (Saving)

एक बात और है। क्या मनुष्य को अपनी आमदनी का एक भाग भविष्य के लिए निकाल कर अलग नही रख देना चाहिए? कौन जानता है कि जो मनुष्य आज सम्पन्नशाली है वह भविष्य मे भी वैसा ही बना रहेगा? कई बार अचानक ऐसे कारण आकर उपस्थित हो जाते हैं कि लखपती भी रोटियों को मोहताज हो जाते हैं। इसके अलावा जब आदमी बुड्ढा हो जाता है या चारपाई पकड लेता है तब अपनी जिन्दगी को

पुराने ही तरीके से बिताने के लिये उसे पहले से रुपये बचाने पड़ते हैं। इसके अलावा बहुत से सज्जन अपने पुत्रों को पढ़ाकर कमाने योग्य बनाना चाहते हैं और पढ़ाई के लिए उन्हे पैसा सचय करना पडता है। बहुत से मनुष्य अपनी मृत्यु के बाद लड़कों को कुछ धन-दौलत छोड जाना चाहते हैं। कुछ आदमी बाद में तीर्थ-यात्रा करना चाहते हैं। कितने तो दान-पुण्य के लिये धन इकट्ठा करना चाहते हैं। इन सब बातो के लिये धन इकट्ठा करना अर्थात् बचाना पड़ता है। बचाई हुई रकम बचत कहलाती है।

बचत कितनी करनी चाहिये और कैसे ? इस सम्बन्ध मे ध्यान देने योग्य यह बात है कि भविष्य के महत्व के बारे में आदमी-आदमी की राय में फर्क रहता है। कोई भविष्य को मानते ही नही। उनका उद्देश्य खा-चाट सब बराबर कर देना रहता है, क्योंकि कौन जानता है कि कब यमदेव का बुलावा आ पहुँचे। ऐसे लोग अपनी आय का अधिकाश भाग थोडी देर तक मजा देने वाली चीजों पर खर्च करते हैं। लेकिन जो दूरदर्शी होते हैं वे ऐसे खर्च को ताक पर रखकर रुपये को भविष्य के लिये बचा लेते हैं। इसके अतिरिक्त हम पहले ही बता चुके हैं कि बिना बचत किए पूँजी नहीं बनती। अगर स्वयं या बच्चों को कोई व्यापार या रोजगार कराना है तो बचत करना अनिवार्य है।

परन्तु बचाना कैसे चाहिये ? क्या यह सब से अच्छा होगा कि रुपये को या उन रुपयों से सोना-चाँदी मोल लेकर उनको धरती में गाड देवें ? हमारे भारत में गहनों के रूप में बहुत सा धन बेकार पडा हुआ है। और चूँकि यहाँ पर हर एक आदमी की इतनी भी आमदनी नहीं है कि वह जीवन-रक्षक पदार्थ भी प्राप्त कर सके, इस बात की बड़ी जरूरत है कि बचत की रकम ऐसे काम में लगाई जाय, जिससे देश की पूँजी बढ़े। लेकिन यह तो बहुत दूर की बात है। आप यों ही देखिये। बचत के रुपयों को गहने के रूप में रखने से आपको उस रकम पर कोई सूद तक नहीं मिलता। इस तरह से रकम रखने और गाड कर रुपया पैसा रखने में कोई अधिक फर्क नहीं मालूम पड़ता और यह साफ है कि यह तरीका ठीक नहीं। परन्तु अगर गहना बनवाने के नाम पर ही लोग बचत करने को तैयार हों तो यह तरीका अपनाना वाञ्छनीय होगा। परन्तु यह बचत पूँजी का रूप तभी लेगी

जब सरकार सोना-चाँदी सप्लाई करे। अस्तु सब से अच्छा तरीका तो यह होगा कि जैसे-जैसे बचत होती जाय वह डाक-घर या किसी अच्छे बैंक के सेविंग बैंक के हिसाब में जमा कर दी जाय। इससे कुछ सूद मिलने के अलावा रुपया सुरक्षित रहता है। दूसरा तरीका जमीन खरीदना या मकान बनवाना है। इससे भी रकम सुरक्षित रहती है और आमदनी अच्छी होती है। कुछ मनुष्य अपने बुढापे के लिये अथवा अपने सहारे रहने वाले आदमियों को मदद करने के लिये जीवन बीमा करवा लेते हैं। इसके लिये कई-कई साल तक हर साल एक निश्चित रकम बीमा कम्पनी को देनी पडती है। अवधि खतम हो जाने पर बीमा की रकम बीमा कराने वाले बुड्ढे को या उसकी मृत्यु पर उसके आश्रितों को मिल जाती है।

कहा जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति को जिसे अन्न और कपडे-लत्ते का दुःख नहीं है अपनी आय में से कम से कम दसवाँ हिस्सा हर साल बचाने का दृढ प्रयत्न करना चाहिये। यदि वह ऐसा करने मे सफल होगा तो इस बचत की वजह से मुसीबत के बुरे दिनों मे कर्जदार होने से बच जायगा और हमेशा सुखी बना रहेगा।

अभ्यास के प्रश्न

१—उपभोग की परिभाषा लिखिये और उसका महत्व समझाइये।

२—आवश्यकताओं की विशेषताएँ लिखिये और उन पर नियत्रण की जरूरत समझाइये।

३—आवश्यक वस्तुओं के भेद उदाहरण सहित समझाइये। अपने निपुणतादायक आवश्यक पदार्थ और कृत्रिम आवश्यक पदार्थों की सूची दीजिये।

४—आराम की वस्तुएँ और विलासिता की वस्तुओं के भेद बतलाइये। किसी किसान की विलासिता की वस्तुओं की सूची तैयार कीजिये।

५—मादक वस्तुओं के उपभोग से क्या हानियाँ होती हैं।

६—गाँवों में तम्बाकू का उपभोग बहुत होता है। क्या आप इसे समझते हैं?

—कुछ स्थानों मे चाय का उपभोग बढ रहा है। क्या इसका प्रचार आवश्यक है?

८—सिद्ध कीजिये कि सादा जीवन और उच्च विचार ही आर्थिक दृष्टि से भी सर्वोत्तम ध्येय है।

९—बिना आमदनी के बढ़ाये संतोष की मात्रा कैसे बढाई जा सकती है?

१०—खर्च मे बचत की आवश्यकता समझाइये। साधारण परिस्थिति के व्यक्तियों को कम से कम प्रतिमास कितनी बचत करनी चाहिये?

११—आर्थिक दृष्टि से दानधर्म की सर्वोत्तम प्रणाली कौन सी है? भारत में इस प्रणाली के अनुसार दान कहाँ तक होता है?

१२—अपनी बचत के धन से सोने-चाँदी के गहना बनवा लेना कहाँ तक उचित है?

सातवाँ अध्याय

भारतीय रहन-सहन का दर्जा

रहन-सहन का दर्जा (Standard of Living)

पिछले अध्याय में हम देख चुके हैं कि मनुष्य की आवश्यकताएँ अपरिमित होती हैं। फिर भी आदमी अपनी आमदनी अपनी दशा और परिस्थिति के अनुसार कुछ वस्तुओं का उपभोग करने में लगाता है। इन चीजों के उपभोग का जो ढर्रा पड़ जाता है वह बहुत कम बदलता है, और यदि बदलता है तो बहुत धीरे-धीरे। जितनी आमदनी होगी उतना ही खर्च भी किया जा सकेगा। आमतौर पर एक-सी आमदनी वाले मनुष्य या परिवार करीब-करीब एक ही समान रहते हैं। अर्थात् उनके रहन-सहन का दर्जा एक-सा ही होता है, और जैसे-जैसे आमदनी मे कमी-बेशी होगी वैसे ही वैसे रहन-सहन के दर्जों में भिन्नता पाई जाती है। यों तो एक तरह से प्रत्येक मनुष्य अथवा प्रत्येक परिवार एक दूसरे से सभी बातों में कभी भी मिलता-जुलता नहीं है, इसलिये जितने परिवार हैं, उतने ही रहन-सहन के दर्जे हो सकते हैं। लेकिन साधारणतः रहन-सहन के दर्जे चार भागों मे बाँटे जाते हैं। पहले दर्जे में वे लोग शामिल रहते हैं जिन्हें जीवन-रक्षक पदार्थ

भी प्राप्त नहीं होते तथा जिन्हे कई-कई दिन तक उपवास करना पडता है। इस दर्जे के मनुष्य भीख मांगते हैं और कर्ज भी लेते हैं। इन्हे दरिद्र कहा जाय तो गलत न होगा। हमारे गरीब मजदूर व किसान इसी दर्जे में रक्खे जा सकते हैं। दूसरा दर्जा उन लोगों का है जिन्हे जीवन-रक्षा सम्बन्धी साधारण पदार्थ ही प्राप्त हो सकते हैं। दोनो वक्त रूखा-सूखा भोजन खाना, फटा-पुराना कपड़ा पहनना व टूटे-फूटे मकान में रहना ही इन लोगों का काम रहता है। तीसरे दर्जे वाले मनुष्यों को जीवन-रक्षक वस्तुओं के अलावा आराम की भी वस्तुएँ मिल जाती हैं। दफ्तर में काम करने वाले हमारे हेडक्लर्क साहब खूब अच्छा खाना खाते हैं, साफ-सुथरा कपडा पहनते हैं तथा खुले हुए हवादार मकान में रहते हैं। ये आराम की वस्तुओं का भी सेवन करते हैं। चौथे दर्जे में रईस और अमीर आदमी आते हैं, जिनके पास धन की कमी नहीं रहती। जो वे चाहे खरीद सकते हैं। उनका जीवन पूरी तरह से विलासिता से पूर्ण होता है, परन्तु यह कोई जरूरी नहीं कि जो लखपती है उसके रहन-सहन का दर्जा सबसे ऊँचा हो। अगर रईस मनुष्य का स्वास्थ्य खराब रहता है और उसे कोई चीज नहीं पचती, तो उसका रहन-सहन सुख देने लायक नही होगा। इसी तरह के आदमियों को ऐसा रोग पकड लेता है कि उनका असर उनके रहन-सहन पर बहुत पडता है। मेवालाल की आँखे खराब हों, हीरा बहरा हो, प्रेम की आँतों मे कीडे पड गये हों तो ये लोग उपभोग की चीजों से पूरा-पूरा सतोष और आनन्द नहीं उठा सकते। इसी तरह बहुत से तन्दुरुस्त और तगडे आदमी शराब, ताडी वगैरह पीकर या अनाप-शनाप खाकर या बुरी सोहबत में पड़ जाने के कारण अपने को बरबाद कर देते हैं। फलस्वरूप उनका रहन-सहन का दर्जा गिर जाता है।

भारतीय रहन-सहन का दर्जा

ऊपर बताई बातें हमारे भारत पर कुछ लागू होती हैं। यहाँ पर पहले तो आमदनी की कमी है। अंदाजा लगाया गया है कि भारत के राजा-[illegible]ज, सेठ-साहूकार, रईस वगैरह को मिलाकर भी, हर एक भारतीय [illegible] आमदनी का औसत चार-पाँच आने ही पडता है। इसके अलावा [illegible] की भी कमी मालूम पड़ता है। सरकार की ओर से यह कहा जाता

है कि भारतवासियों के रहन-सहन का दर्जा बढ़ता जा रहा है, क्योंकि पहले यहाँ आराम की जितनी सामग्री आती थी, उनसे कहीं अधिक वस्तुएँ आज-कल आती हैं। देहातों में पक्के मकान बनते जाते हैं। साइकिल का प्रचार बहुत अधिक हो गया है। चाय और सिगरेट की खपत अधिक हो गई है। इत्यादि। परन्तु इस तरह कहने वाले एक बात भूल जाते हैं कि यह मनुष्य की स्वाभाविक आदत है कि वह भोगविलास के पदार्थों का सेवन करना चाहता है और यदि कोई मनुष्य जीवन-रक्षक वस्तुओं को खाने के बजाय शौकीनी करने लग जाय तो क्या इसके यह मतलब होते हैं कि उसका रहन-सहन ऊँचा हो गया। यदि आप ख्याल करिये तो आपको अपने साथियों में ही कितने ऐसे मिल जायँगे जिनके घर में भूँजी भाँग न होगी पर स्कूल खूब ठाट-बाट से आते हैं। आप अपने घर के बूढ़े बाबा से पूछिये तो वे आपको बतलावेंगे कि भारत का पतन हो रहा है। इसका कारण पूछने पर वे शायद आपको यही जवाब देंगे कि जहाँ पहले पौष्टिक पदार्थों का सेवन करते थे और सदैव व्यायाम का ख्याल रखते थे, वहाँ आजकल ऐसी बातों पर अधिक खर्च किया जाता है जिससे शरीर को भी नुकसान पहुँचता है और मानसिक हानि भी होती है।

रहन-सहन का दर्जा ऊँचा करने का उपाय

अतएव यह बहुत जरूरी है कि भारतवासियों का रहन-सहन का दर्जा ऊँचा किया जाय, परन्तु हमारा मतलब यह नहीं है कि केवल भोग-विलास की वस्तुओं के उपभोग में वृद्धि हो, या आराम देने वाले पदार्थों का उपभोग बहुत अधिक बढ़ जाय। दस-बीस फ़ सदी मनुष्यों के रहन-सहन के दर्जे के ऊँचा होने से देश के रहन-सहन का दर्जा ऊँचा नहीं कहा जा सकता। आवश्यकता तो इस बात की है कि पहले तो हर एक आदमी को जीवन-रक्षक वस्तुएँ तथा वे पदार्थ मिल जायँ जिनसे वह कार्य-कुशल भी बना रहे। देश के सब आदमियों का जीवन सुखमय होना चाहिये। ऐसे मनुष्य बिल्कुल न बचें जो अपने जीवन-रक्षक पदार्थों के लिये ही लालायित हों। हमारे गिरे हुए दर्जे को ऊँचा करने के लिये यह आवश्यक है कि हमें अच्छा तथा स्वास्थ्यप्रद भोजन भर पेट मिले। भोजन अच्छा होने के लिये यह जरूरी है कि खाना साफ़ बर्तनों में पकाया जाय। भोजन के बाद कपड़े को

भारी आती है। हम जानते हैं कि गरमी, जाडा, बरसात इत्यादि का शरीर पर बहुत असर पडता है। अगर आप जाडे में रुई की मिर्जई न पहनेंगे अथवा कम्बल न ओढ़ेंगे तो आपको ठड लग जायगी। हर समय गंदे कपडे पहने रहने से तरह-तरह की बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं। इसी प्रकार रहने के मकान साफ जगह पर बने होने चाहिये। उसके कमरों में रोशनी, सफाई, पानी इत्यादि का इन्तजाम होना चाहिये। एक परिवार के रहने के लिए मकान में, जिसमें पाँच छः आदमी हों, कम से कम चार पाँच कमरे होने चाहिए। तन्दुरुस्ती के लिए कसरत, खेल-कूद, नींद भी बहुत आवश्यक है और थक जाने पर किसी प्रकार के मनोरञ्जन का इन्तजाम रहना चाहिये।

भारतवासियों के रहन-सहन के दर्जे को ऊँचा करने के लिये यह जरूरी है कि शिक्षा का पूरा प्रबन्ध किया जाय। शिक्षा प्राप्त मनुष्य अधिक कमा सकते हैं। इसके अलावा वे उपयोगी वस्तुओं का उपभोग इस प्रकार से करते हैं कि उनसे अधिक आराम मिलता है। इसके अलावा ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिये जिससे भारत मे संतान वृद्धि कम होवे। इस समय भारत की आबादी उन्तालिस करोड के लगभग है। यदि जनसख्या घट जाय तो हमको उद्योग के लिये अधिक सामग्रियाँ मिलने लग जायँ। बहुधा देखा गया है कि दूसरों को देख कर आदमी उसी की तरह रहने का प्रयत्न करता है। इससे रहन-सहन का दर्जा ऊँचा हो जाता है। यात्रा करने से हमको बाहर का अनुभव होता है और हम अच्छी वस्तुओं का उपभोग करने लगते हैं। इन सब बातों के अलावा इस बात की कोशिश होनी चाहिये जिससे हमारे किसानों का कर्ज किसी प्रकार कम हो। हमारे किसान भाई कर्ज में पैदा होते हैं, कर्ज मे पलते हैं और कर्ज को छोडकर ही मर जाते हैं। परन्तु ये सब काम उस समय तक नहीं हो सकते जब तक कि हमारी सरकार हमारी मदद को न आवे। सरकार की ओर से स्कूल, लाइब्रेरी, दवाखाने, पार्क इत्यादि का प्रबन्ध होना चाहिये। गरीबों को मुफ्त में ही प्रारम्भिक शिक्षा देने का इन्तजाम आवश्यक है। सरकार चाहे तो किसानों का कर्ज [illegible] । इसके अलावा सरकार उद्योग-धन्धों को मदद दे सकती है। [illegible]न्धा की उन्नति से बेकारी दूर हो सकती है और रहन-सहन का दर्जा [illegible] है।

पारिवारिक बजट (Family Budget)

अब तक जो कुछ कहा गया है उसकी जड़ मनुष्य के रहन-सहन के दर्जे मे है। उसको भली भाँति समझने के लिए हमको यह पता लगाना चाहिये कि कौन व्यक्ति कितनी आमदनी करता है तथा वह उस धन को किस प्रकार खर्च करता है। रहन-सहन का दर्जा निश्चय करने के लिए मनुष्यो के आय-व्यय का अध्ययन करना अनिवार्य है। अंग्रेजी मे आय-व्यय सम्बन्धी लेखे को बजट कहते हैं। इस शब्द का अब हिन्दी मे भी प्रयोग होने लग गया है। किसी मनुष्य या परिवार के बजट के अन्दर यह देखा जाता है कि उस परिवार मे कितने मनुष्य हैं, कितनी कमाई करते हैं, वे कैसे मकान मे रहते हैं, उनकी उम्र, योग्यता, शिक्षा आदि क्या है? परिवार की होने वाली आय क्या है? यह किस प्रकार खर्च की जाती है? अन्त में कुछ बचत भी होती है अथवा परिवार वालों को कर्ज लेना पड़ता है? रहन-सहन का दर्जा निश्चय करने के लिए व्यय सम्बन्धी आँकड़ों से बड़ी सहायता मिलती है।

पारिवारिक बजट का महत्व केवल यही नही है कि इससे रहन-सहन का दर्जा निश्चित होता है। इसका अन्य महत्व भी है। उनमे से दो-एक का उल्लेख किया जाता है। प्रथम पारिवारिक बजट को ठीक से इकट्ठा करने पर यह मालूम किया जा सकता है कि पारिवारिक व्यय अनावश्यक कामों में तो नहीं हो रहा है। उदाहरणार्थ आजकल के जमाने मे यह सम्भव है कि किसी परिवार मे अच्छा भोजन न किया जाता हो और बीमार पर अधिक खर्च होता हो। इन बातों का पता लग जाने से सरकार शिक्षा द्वारा जनता की आदत सुधारने का प्रयत्न कर सकती है। द्वितीय, यदि पारिवारिक बजट ऐसा हो कि उससे मालूम पड जाय कि पारिवारिक आय किन-किन वस्तुओं की खरीद में खर्च की गई तो सरकार तथा उत्पादक उन वस्तुओं की उत्पत्ति करने का प्रयत्न करेंगे। भारत की आर्थिक उन्नति हो रही है। भाँति-भाँति के उद्योग-धन्धे खोले जा रहे हैं। यह प्रश्न उठता है कि कौन से उद्योग-धन्धे खोले जायँ? किस वस्तु की उत्पत्ति कहाँ तक बढाई जाय? यदि पारिवारिक बजट के उपयुक्त आँकड़े प्राप्त हों तो इन प्रश्नों का उत्तर दिया जा सकता है।

विविध व्यय सम्बन्धी अंकों के अध्ययन करने से यह निश्चय हुआ है कि जिस दर से एक कुटुम्ब की आमदनी बढती है, भोजन का व्यय उसी दर से नहीं बढ़ता। लेकिन वस्त्र, मकान-भाडे का खर्च उसी दर से बढता है। शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरंजन की सामग्री के व्यय की वृद्धि का दर आमदनी की वृद्धि की दर से अधिक बढ जाता है। जर्मन निवासी डाक्टर एंजिल हजारों परिवार के बजट को देखकर इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि कम आमदनी वाले परिवार का अधिकांश भाग जीवन-निर्वाह में खर्च हो जाता है। लेकिन वस्त्र पर प्रत्येक परिवार में प्रतिशत खर्च लगभग बराबर होता है अर्थात् यदि पचास रुपये आमदनी वाले के वस्त्र में करीब आठ रुपये खर्च होते हैं तो सौ रुपये आमदनी वाले का सोलह, और हजार रुपया आमदनी वाले का करीब एक सौ आठ रुपया खर्च होता है। इसी तरह किराये में, रोशनी और ईंधन में भी प्रत्येक परिवार में प्रतिशत खर्च बराबर होता है। लेकिन यह बात जरूर है कि अधिक आमदनी वाले परिवार की शिक्षा, स्वास्थ्य रक्षा इत्यादि में प्रतिशत खर्च बढ जाता है।

किसान का खर्च

ऊपर कही बातों को और स्पष्ट करने के लिये दो-तीन परिवार के बजट का विवेचन करना आवश्यक मालूम पडता है। और चूंकि भारत कृषि-प्रधान देश है इसलिये पहले किसानों की ओर ही दृष्टि डालना उचित जान पडता है। यों तो आप को सुखी किसान भी शायद कहीं-कहीं मिल जायेंगे। हमको उनसे अधिक मतलब नहीं, क्योंकि उनकी संख्या बहुत कम है। अस्तु, भारतीय किसान के रहन-सहन का दर्जा बिल्कुल नीचा है। उसके कुटुम्ब की मासिक आमदनी पन्द्रह रुपये से कम ही रहती है। यह पता लगाया गया है कि उत्तर-प्रदेश में किसानों की वार्षिक आमदनी सत्तर से नब्बे रुपये के बीच रहती है। इसी से हम इनके रहन-सहन के दर्जे का अनुमान लगा सकते हैं। इन बेचारों को साल भर हमेशा दोनों वक्त रूखा-सूखा भोजन भी नहीं मिलता। पहनने का कपडा बहुत ही मामूली, फटा मैला रहता है। अक्सर ये लोग एक साधारण छप्पर में ही गुजर करते [illegible]धिकतर यह पाया गया है कि जो परिवार बहुत गरीब होता है उसमें संख्या बहुत अधिक होती है। इन गरीबों के बच्चे खाली एक कपडा

पहिनते या कभी-कभी नंगे ही घूमा करते हैं। इन बच्चों को दोनों वक्त दूध घी या अच्छा खाना तक नहीं मिलता है। उनकी पढ़ाई लिखाई की तो कोई परवाह नहीं करता। भारत में शायद ही कोई किसान ऐसा होगा जो कर्जदार न हो। किसी का तो यह मत है कि वह कर्ज लेकर पृथ्वी पर आता है, जिन्दगी भर महाजन के यहाँ रुपया भरता है और अन्त में कर्ज छोड़ कर ही मर जाता है। बिना कर्ज के तो इनका काम ही नहीं चलता। बीज, पशु, औजार या ब्याह-शादी का तो छोड़ दीजिये, बेचारा किसान अपने रोज के खर्च के लिये भी कर्ज लेता है। उसको सरकारी लगान भी देना पड़ता है। इसी में उसकी आमदनी का काफी बड़ा हिस्सा निकल जाता है। फिर कर्ज की रकम को कौन कहे, वह उसका ब्याज तक चुका नहीं पाता।

नीचे एक गरीब और एक मामूली किसान के गत महायुद्ध के पहिले के सालाना पारिवारिक खर्च का ब्योरा दिखाया गया है:—

	मामूली किसान का खर्च (रुपये में)	गरीब किसान का खर्च (रुपये में)
भोजन	६८	४६
कपड़ा	२०	१३
दूध	१३	—
रोशनी व [illegible]	५	५
दवा	१	२
[illegible]	४	—
नाना दानादि	१२	[illegible]

ने केवल लगभग आधी आमदनी भोजन पर खर्च की। दोनों परिवारों की आमदनी का लगभग १६% अर्थात् छठाँ भाग कपडे पर खर्च हुआ। दान धर्म, यात्रादि पर भी दोनों परिवारों ने अपनी आमदनी का लगभग वही भाग अर्थात् ६% खर्च किया। शिक्षा, दवा आदि की अपेक्षा दान, धर्म आदि पर अधिक खर्च हुआ। इससे भारतीय किसानों की धार्मिक प्रवृत्ति का ज्ञान होता है।

गाँव के मजदूर और उनका खर्च

अतएव यह तो सिद्ध हो गया कि भारतीय किसान वडे कष्ट और श्रम से अपना जीवन निर्वाह करता है। किसान का दूसरा भाई है गाँव का मजदूर। कुछ सज्जनों का कहना है कि इनकी हालत तो किसानों से भी खराब है। किसान इन लोगों पर जमींदारी हुकुम चलाते हैं अर्थात् जैसे जमींदार किसानों से वेगार लेते हैं तथा उन्हे कष्ट पहुँचाते हैं वैसे ही किसान लोग इन मजदूरों के साथ व्यवहार करते हैं। लेकिन ध्यान देने की बात तो यह है कि इससे और मजदूर के पारिवारिक व्यय से विशेष सम्बन्ध नहीं हैं। पर यह जरूर है कि इससे मजदूरों की आय कम हो जाती है। मजदूरों और किसानों के बीच केवल एक फर्क पाया जाता है और वह यह कि किसानों की आय प्रकृति के ऊपर निर्भर रहती है। लेकिन मजदूरों को मजदूरी कुछ न कुछ नियमित होनी है। परन्तु सोचने लायक बात तो यह है कि अक्सर मजदूरों का हिस्सा बाँध दिया जाता है। किसान के पास जो अनाज रहता है वह स्वय उसके परिवार के लिए पर्याप्त नहीं होता। इसी में से उसको मजदूर की मजदूरी देनी पड़ती है। अतएव मजदूर की मजदूरी के रूप में वह कम से कम अनाज देने का प्रयत्न करता है। ऐसी दशा में मजदूर तो सचमुच किसानों से भी गये बीते बन जाते हैं, तब भी हम उन्हें बिना अधिक गलती किए किसानों के रहन-सहन के दर्जे में रख सकते हैं।

गाँव के कारीगर का व्यय

भारतीय गाँवों में यदि किसी की हालत किसानों और मजदूरों से अच्छी ९ जा सकती है तो वह है गाँव के शिल्पी या कारीगर की हालत। उसे न प्रकृति पर निर्भर रहना पडता है और न मजदूरों की तरह उनकी जुटिया ।७ न। के हाथ दबी रहती है। यदि यह कहा जाय कि गाँव के कारीगर

की मासिक आमदनी पंद्रह रुपये के ऊपर पहुँच जाती है तो कोई गलत बात न होगी। बहुत से परिवारों के बजट को देखने के बाद पता चलता है कि ये लोग भी खाने की चीजों पर आधी से अधिक रकम खर्च कर देते हैं। रोशनी और ईंधन पर इनकी आमदनी का बीसवाँ हिस्सा खर्च होता है और कपड़े-लत्ते पर लगभग दस प्रतिशत। मकान का किराया, रोशनी और ईंधन का खर्च बराबर होता है। आमदनी का बचा हुआ पाँचवाँ भाग अन्य वस्तुओं पर खर्च कर दिया जाता है, हालाँकि घी, दूध तो इन्हें भी नहीं के बराबर ही मिलता है। सफाई और रोशनी का भी इन्तजाम खराब रहता है और किसानों की तरह इनमें भी शराब या ताडी पीने की बुरी आदत पाई जाती है। यह बात भी नहीं है कि ये कर्ज न लेते हों और सूद की दर तो हमेशा की तरह पचहत्तर अस्सी प्रतिशत सालाना से कम नहीं होती। शिक्षा और स्वास्थ्य के सम्बन्ध मे ये लोग भी बहुत कम खर्च करते हैं।

अभ्यास के प्रश्न

१—रहन-सहन के दर्जे का अन्दाजा किन-किन बातों से लगाया जाता है ?

२—अपने गाँव के साधारण किसान के रहन-सहन के दर्जे की तुलना उसी गाँव के मजदूर के रहन-सहन के दर्जे से कीजिए।

३—अमीर लोग किन वस्तुओं पर अपना रुपया अधिक खर्च करते हैं ?

४—अपने गाँव में कम से कम एक साधारण किसान, एक अमीर किसान और एक गरीब किसान के आय-व्यय का एक मास का हिसाब लगाइये और यह बतलाइये कि निम्नलिखित मदों पर कितना प्रतिशत खर्च प्रत्येक दर्जे के किसान ने किया :—

(अ) भोजन (ब) कपड़ा (स) मकान भाड़ा (द) शिक्षा (क) मुकदमे-बाजी (ख) मादक वस्तु (ग) दान धर्म (घ) अन्य खर्च।

५—किसी कुटुम्ब के मासिक आय-व्यय का हिसाब देखकर हम यह किस प्रकार बता सकते हैं कि व्यय अच्छे तरीके से किया जा रहा है या नहीं ?

६—रहन-सहन का दर्जा ऊँचा कर देने के क्या तरीके हैं ? उनका उपयोग भारत में कहाँ तक किया जा रहा है ?

७—पारिवारिक आय-व्यय रखने की आवश्यकता समझाइये।

८—अपने कुटुम्ब के मासिक व्यय की आलोचना करिये।

९—यात्रा का रहन-सहन के दर्जे पर क्या प्रभाव पड़ता है?

१०—रहन-सहन का दर्जा बढ़ाने मे शिक्षा का महत्व समझाइये।

११—रहन-सहन के दर्जे का अर्थ समझाइये। गाँव में रहन-सहन का दर्जा क्यों नीचा है? उसे किस प्रकार ऊँचा किया जा सकता है?

१२—ग्रामीण जनता की दीनता के कारण स्पष्ट कीजिये। उत्तर प्रदेश मे उनकी दशा को उन्नत बनाने के लिए कौन से प्रयत्न किये गये हैं? (१९४६)

१३—आप रहन-सहन के दर्जे से क्या समझते हैं? गाँवों में यह क्यों बहुत कम है? इसे किस तरह बढ़ाया जा सकता है? (१९४४)

आठवाँ अध्याय

भोजन कितना और कैसा हो?

भोजन की आवश्यकता

अब तुम जान गए होगे कि हमारे रहन-सहन मे भोजन बड़े महत्व का स्थान रखता है। अतएव बहुत जरूरी है कि हम यह जान लें कि हमको कैसा भोजन करना चाहिये। पहले यही बतलाइये कि आप भोजन क्यों करते हैं? हम जो वस्तुये खाते हैं उनसे क्या मतलब निकलता है? उत्तर मे कहा जा सकता है कि हमे दो बातों की आवश्यकता रहती है। एक तो गर्मी की और दूसरे चर्बी की। आप अभी दिनों-दिन लम्बे-चौड़े होते जा रहे हैं और आपका डीलडौल बढ़ाने के लिये आवश्यक है कि आप खाना खावें। भोजन करने से करीब पचीस साल की उम्र तक हमारे शरीर और दिमाग की वृद्धि होती है ताकि वे मजबूत बन सकें। दूसरे काम करने से शरीर और दिमाग में जो कमी होती है उसकी भी आहार से पूर्ति होती है। जो हम खाते हैं उनमें से कोई बदन को गर्म रखता है और किसी से गोश्त है। बदन को चंगा रखने के लिए यह जरूरी है कि हम दोनों तरह

की चीजें खाया करें। हमको जितनी गोश्त बनाने वाली चीजों की जरूरत पड़ती है उससे चार गुना ज्यादा गर्म रखने वाली चीजों की है। अगर हम एक तरह का खाना जरूरत से ज्यादा खालें और दूसरी तरह का जरूरत से कम, तो हमारा पेट भर जायगा लेकिन हमारी तन्दुरुस्ती को नुकसान पहुँचेगा।

चर्बी, प्रोटीन (Protein), चीनी और विटामिन (Vitamin)

ऊपर बताई हुई बातों से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि हमको खास-खास वस्तुएँ खानी चाहिए, परन्तु अब यह कैसे समझा जाय कि कौन-कौन सी चीजें अवश्य खानी चाहिए और कितनी। इसके पहले यह बताना जरूरी है कि प्रत्येक भोजन की वस्तु से हमको तीन पदार्थ मिलते हैं चर्बी, प्रोटीन और चीनी। दही, घी, मक्खन तथा नारियल के तेल आदि में चर्बी की मात्रा अधिक होती है। प्रोटीन एक पदार्थ का अंग्रेजी नाम है। मिर्च, बादाम, मूँगफली, दाल, सूजी, बिना कूटे वा पालिश किये हुये चावल और गोश्त में प्रोटीन काफी होती है। इसी तरह शक्कर, शहद, गन्ना, आटा, चावल, जौ व मुरब्बे वगैरह में चीनी बहुत होती है। चर्बी, प्रोटीन और चीनी के अलावा हमको विटामिन नाम के एक तत्व की आवश्यकता पड़ती है। विटामिन कई तरह के होते हैं :—जैसे विटामिन A, विटामिन B, विटामिन C, विटामिन D इत्यादि। हमको इनकी भी आवश्यकता पड़ती है। दूध और फलों में पानी की मात्रा अधिक होती है चर्बी, प्रोटीन व चीनी कम रहती है। लेकिन तब भी उनकी कदर इसीलिए की जाती है कि उनमें विटामिन होता है। गाय के दूध में ऊपर बताए चारो विटामिन होते हैं, लेकिन विटामिन A सबसे अधिक होता है। यह जरूरी नहीं कि हर एक चीज में ये चारें विटामिन हों जैसे—मिर्च, चाय, कहवा में विटामिन होता ही नहीं। गोभी, टमाटर आदि में पहले तीन विटामिन खूब होते हैं। फलों में विटामिन C की अधिकता रहती है।

भोजन के भेद

अस्तु, आजकल के प्रचलित भोजन तीन हिस्सों में बाँटे जा सकते हैं :—फल, अन्न और मांस। फल का आहार सबसे श्रेष्ठ समझा जाता है। फलों के ऊपर रहने वाले प्रकृति देवी के पशु-पक्षी कितने सुन्दर, मनमोहक, रंग-

बिरंगे और मधुर कंठ वाले होते हैं। योरुप के विद्वानों ने यह ढूँढ़ निकाला है कि फलों में एक तरह की बिजली होती है जिससे शरीर अच्छी तरह गठ जाता है। फलों के बाद अन्न का नम्बर आता है। रोटी, दाल, भात इन सब की गिनती अन्न में की जाती है। खाना जितना सादा होता है उतना ही अच्छा होता है। हमारे पूर्वजों का उद्देश्य रहता था "सादा जीवन व ऊँचे विचार"। जो मजा तथा फायदा गेहूँ की बालियों में होता है वह गेहूँ में नहीं होता। गेहूँ से उतर कर रोटी का गुण होता है; उससे उतर कर पूड़ी का और अन्त में पकवानों का। आटा जितना मोटा हो उतना ही अच्छा होता है। आजकल चक्की में पिसने वाले आटे की बहुत सी चीनी गरमी के कारण जल जाती है। चावल के पकाने में उसका पानी अर्थात् माँड नहीं फेंकना चाहिये। पके हुए चावल में कुछ नहीं होता, सब गुण तो माँड़ में उतर आते हैं। हम लोगों में कूटे हुये चावल खाने की आदत है। कुटने से चावल का बहुत सा अंश अलग हो जाता है। इसी तरह से दाल को उसके छिलके के साथ खाना चाहिये। मूँग की छिलकेदार दाल में जो गुण होता है वह धुली मूँग की दाल में बिलकुल नहीं रहता। तरकारियाँ खून व पेट को साफ करती हैं, इसलिये हमारे भोजन में तरकारियों का होना जरूरी है। उनसे पेट का हाजमा कभी बिगड़ने नहीं पाता। इसके अलावा इनमें विटामिन A, B, C, खूब होते हैं। डाक्टर लोग अन्नाहार में दूध को आवश्यक बताते हैं और थोड़ा सा घी भी। माँस खाने वाले के शरीर में अक्सर एक तरह का विष पैदा हो जाता है तथा माँसाहारी का मन उतना वश में नहीं रहता। योरुप तथा पश्चिम के अन्य देशों में माँसाहारियों का नम्बर घटता जाता है और फलाहार और अन्नाहार करने वाले मनुष्य संख्या में बढते जा रहे हैं।

उपयुक्त भोजन की मात्रा

हमारे पुरखे पहले जो खाना खाते थे अथवा उन्होंने रोटी, दाल, भात, तरकारी, घी, दूध का जो सादा खाना ठीक किया था उसमें हमें सब चीजें मिल जाती हैं। रोटी और भात में चीनी की भरमार है, दाल और दूध से मिलता है और अन्य पाचक पदार्थ मिल जाते हैं। आप कहेंगे कि पुराने जमाने की बातें हैं। आपका साथी राम पूछ सकता है कि

क्या रोटी ज्यादा खाई जाय और दूसरी वस्तुएँ कम। श्याम कह सकता है कि मैं दूध तो खूब पीऊँगा परन्तु और चीजे केवल नाम करने को खा लूँगा। इसलिए यह जानना जरूरी है कि कौन सी वस्तु कितनी खानी चाहिये। रोटी या दूध से हमको जितनी गरमी चाहिये उतनी गोश्त बनाने वाली चीजों से नहीं मिल सकती और शक्कर, चावल, घी, मक्खन तो हमको सिर्फ गरम रख सकते हैं। जो लोग गोश्त खाते हैं उनको तो गर्मी पैदा करने वाली और गोश्त बनाने वाली चीजे उसी से मिल जाती हैं। किन्तु बहुत से लोग ऐसे हैं जो गोश्त नही खाते। हिन्दुओं मे तो गोश्त खाने का रिवाज कम है। उनको इसके बदले क्या खाना चाहिये ? मूँग, मटर, अरहर और इसी तरह की जितनी दाले हैं उन सब में गरमी पैदा करने वाली और गोश्त बनाने वाली दोनों तरह की चीजे होती हैं। सेर भर माँस मे गोश्त बनाने वाली जितनी चीजे होती है उससे कहीं ज्यादा सेर भर दाल मे होती हैं।

किसी ने सच कहा है कि हमारे आहार में मास, मछली और अडे रहने की बिलकुल जरूरत नहीं है। हमें पर्याप्त मात्रा में प्रतिदिन दूध, दही, मट्ठा मिलना चाहिए। इसके अलावा हमारे भोजन में रोज कुछ न कुछ कच्चे (बिना आँच पर पकाये हुए) पदार्थों का रहना बहुत जरूरी है। इसके लिए हरा मटर, हरा चना, टमाटर, मूली, गाजर, ताजे फल, बेर, ककड़ी, खरबूजा, खट्टे व मीठे नीबू का रोज सेवन करना चाहिये। इससे स्वास्थ्य बनने के अलावा हमारी आयु भी बढ़ जाती है। हमारे भोजन में गुड़ और शक्कर का रहना बिलकुल आवश्यक नही है। इन्हे यदि थोड़ा सा खाया जाय तो कोई हानि नहीं होती पर ज्यादा खाने से ये नुकसान पहुँचाते हैं। बाजार की मिठाइयाँ तो भूल कर भी नहीं खाना चाहिये। अस्तु, हिसाब लगाकर निश्चित किया गया है कि स्वस्थ रहने के लिए एक युवा पुरुष को २४ घंटों में निम्नलिखित भोजन करना चाहिए :—

घर का पिसा आटा ६ छटाँक, दाल १ छटाँक, चावल २ छटाँक, घी आधी छटाँक, तरकारी ६ छटाँक, फल ४ छटाँक, दूध आधा सेर और थोड़ा सा नमक, जो कि खाना पचाने के लिए बहुत जरूरी है।

भोजन उसी समय करना चाहिये जब खूब भूख लगी हो। यह न होना चाहिए कि बकरी की तरह हर समय मुँह चलता रहे। यह उसी समय हो

सकता है जब कि समय से खाना खाया जाय। खाने के अलावा पानी पीना भी बहुत जरूरी है। लेकिन ध्यान रखना चाहिये कि पानी हमेशा खाना खाने के आधा घंटा बाद पिया जाय। यदि पानी पीने की इच्छा बहुत तेज हो तो खाने के साथ दो चार घूँट पानी पी ले। चौबीस घटे में दो सेर के लगभग पानी जरूर पीना चाहिए। गर्मी के दिनों मे पानी की मात्रा बढ़ा देनी चाहिए।

अभ्यास के प्रश्न

१—एक युवा मनुष्य के लिए प्रतिदिन कितना भोजन स्वस्थ रहने के लिये आवश्यक है?

२—आपके भोजन में कौन सी बातों का किस परिमाण मे होना आवश्यक है?

३—किसानों और मजदूरों के भोजन में किन बातों की कमी रहती है और यह बिना खर्च बढ़ाये कैसे दूर की जा सकती है?

४—शहर में रहने वालों और गाँवों में रहने वालों के भोजन में क्या अन्तर रहता है?

५—जैसे-जैसे आमदनी बढ़ने लगती है भोजन में किस प्रकार का अन्तर होने लगता है?

६—प्रोटीन, चर्बी और विटामिन किन पदार्थों में अधिक होते हैं?

७—भोजन में दूध, फल और हरी तरकारी का महत्व समझाइये।

८—सात्विक भोजन के लिए किन वस्तुओं का उपभोग कितने परिमाण में करना चाहिए?

९—तामसिक भोजन के पदार्थों की सूची दीजिये।

१०—मानसिक परिश्रम करनेवाले व्यक्तियों को अपने भोजन में किन वस्तुओं का अधिक परिमाण में उपभोग करना चाहिये?

११—भारत में भोजन की वर्तमान कमी के कारण क्या हैं? इसे दूर करने के क्या उपाय हैं? (१९४८)

१२—सतुलित भोजन किसे कहते हैं? इसके मुख्य अंश क्या हैं? (१९४७)

नवाँ अध्याय

विनिमय (Exchange)

वस्तुओं की अदला-बदली (Barter)

लकड़ी का काम करने वाले बढ़ई को बिना मोल लिये खाने को अनाज नहीं मिल सकता। वह कुर्सी, मेज, खिड़की, हल, गाड़ी, आदि बनाकर बेचता है। बेचने से जो दाम आता है उससे मंडी में जाकर वह अनाज खरीदता है। परन्तु क्या यह जरूरी है कि बढई माल को रुपये-पैसे के बदले बेचे? हमारे गाँव में अधिकतर यह होता है कि किसान अनाज देकर अपने मतलब की वस्तु दूसरे से ले लेते हैं। अगर रामू को एक जोड़ा धोती लेना होता है तो वह पन्द्रह-बीस सेर अनाज देकर बजाज से उस धोती को ले लेता है। लोहार को जब अनाज की जरूरत पड़ती है तो वह किसी किसान को जिसे फावड़े आदि की जरूरत होती है, औजार देकर अनाज ले लेता है। पुराने समय में रुपया पैसा तो चलता नहीं था उस समय इसी तरह की अदला-बदली होती थी। हमारे गाँवों की तरह ही अफ्रीका, आस्ट्रेलिया आदि देशों के असभ्य जंगली अब भी हाथी दाँत, गोंद, मोम, शुतुर्मुर्ग के पर वगैरह देकर उनके बदले में हथियार, औजार और खाने-पीने की चीजें लेते हैं।

बदले के लिए कम से कम दो चीज की आवश्यकता होती है। जब हम यह कहते हैं कि किसी का बदला हो सकता है, तो हमारा मतलब यह रहता है कि उस चीज का बदला किसी और चीज से हो सकता है। लेकिन एक बात है। मान लो किसी बढ़ई ने एक हल तैयार किया और वह उसके बदले अनाज लेना चाहता है। पर अनाज पैदा करने वाले किसान को उस समय हल की दरकार नहीं है। या अगर उसे हल की जरूरत है तो हो सकता है कि उसके पास बदले मे देने के लिए काफी अनाज न हो। यह भी हो सकता है कि किसान हल को जगह अनाज को ज्यादा काम की वस्तु समझता हो और इसलिये हल की जगह अनाज न देना चाहता हो। ऐसी हालत में बेचारे बढ़ई को किसी ऐसे किसान को ढूँढना पड़ेगा जिसे हल की जरूरत हो, जिसके पास अनाज भी काफी मात्रा में हो और जो हल को अनाज से

अधिक उपयोगी समझता हो। अदला-बदली हो जाने से दोनों को लाभ होता है। किसान को अनाज की अपेक्षा अधिक काम की चीज मिल जाती है, इसी तरह बढ़ई को भी हल के बदले अनाज मिल जाने से लाभ होता है। अगर बढ़ई को ऐसा कोई किसान नहीं मिलेगा तो वह भूखों मरने लगेगा। और फिर खाली अनाज से बढ़ई का काम नहीं चलता। उसे नमक, मिर्च, तेल, खटाई आदि भी चाहिए। मान लो उसे हल के बदले अनाज मिल भी गया तो उसे ऐसे आदमियों की तलाश करनी पड़ेगी जो नमक, मिर्च, मसाला आदि देकर अनाज ले लें। इसी तरह दूसरे पेशे वालों को भी तङ्ग होना पड़ेगा क्योंकि सब को चीजे बदलने की जरूरत होती है। लेकिन अगर इसी तरह सब लोग अपनी चीजे लेने वालों का पता लगाने लगें तो बहुत बखेड़ा पैदा हो जाय। इन सब कठिनाइयों को दूर करने के लिए रुपये-पैसे चलाए गए और आजकल हमें जब किसी वस्तु की आवश्यकता पड़ती है तो हम बाजार जाकर उसे मोल ले लेते हैं। अर्थात् जिस मनुष्य के पास वह वस्तु रहती है उसे कुछ पैसे या रुपये देकर बदले में उस वस्तु को ले लेते हैं। किसी वस्तु की बिक्री से खरीदने और बेचने वालों को लाभ ही होता है, नुकसान नहीं। खरीदार रुपये की जगह उस वस्तु को ज्यादा काम की समझता है और बेचने वाले को रुपये की जरूरत रहती है।

माल की खरीद और बिक्री (Sale and Purchase)

हम जिस मनुष्य के पास से चीज मोल लेते हैं, वह सौदागर या व्यापारी कहलाता है, लेकिन सौदागर और व्यापारी मे एक फर्क रहता है। व्यापारी थोक माल खरीदता है और जरूरत के मुताबिक बेचता है। सौदागर व्यापारियों से माल खरीदकर खाने या उपभोग करने वालों के हाथ बेचता है। व्यापारी एक फसल को एक जगह इकट्ठा करता है, फिर उसको साफ कराकर फुटकर बेचने वालों के हाथ बेच देता है। व्यापारी कम से कम दोनों के अनाज को मोल लेकर अधिक दाम पर बेचता है। किसान फसल तैयार होते ही बेच देते हैं। उस समय अनाज का भाव सस्ता रहता है। किसानों को य-- विचार नहीं होता कि अगर अनाज रक्खा रहेगा तो आगे चलकर काफी लाभ होगा। लेकिन दरअसल बात तो यह है कि हमारे की हालत ऐसी बुरी है और वे इतने कर्जदार रहते हैं कि वे अनाज

को घर में रख नहीं सकते। व्यापारी सस्ते अनाज को मोल ले लेकर बड़े भर लेता है और जब भाव खूब तेज होता है तब उसे बेंचता है।

फसल तैयार होने के समय तो किसान प्रायः सब अनाज बेंच देते हैं पर थोड़े दिन बाद उनकी रसद चुक जाती है। तब वे बनिये की शरण जाते हैं। बनिया उस समय अनाज किसानों को बाँटता है। और उनसे वादा करा लेता है कि फसल पर वे उसका सवाया देंगे। इसी तरह बोनी के समय वह किसानों को तेज भाव पर अनाज देता है। आप हिसाब लगा सकते है कि बनिये को क्या लाभ होता है। मान लो फसल पर वह एक रुपये का चार सेर गेहूँ खरीदता है और बाद मे आवश्यकता पड़ने पर वह तीन सेर का अनाज वेचता है और वादा करा लेता है कि दूसरी फसल पर व्याज सहित इन रुपयों का अनाज लेगा। फसल पर छै-सात महीने मे व्याज सहित रुपये का फिर चार सेर के भाव से गेहूँ ले लेता है। इस तरह एक ही साल मे दो गुना फायदा उठाता है। फसल की बिक्री में लाभ-हानि, देर-सवेर, तेजी-मन्दी का ध्यान रखने से यही लाभ होता है।

इस खरीद और बिक्री से बनिये व्यापारी को ही फायदा होता है। बेचारा किसान को तो नुकसान ही रहता है। अगर उपज कम होती है तो किसानों को अधिक दाम तो मिलते नहीं। हाँ, बनिया राम जरूरी माल को अधिक ऊँचे भाव पर बेचकर खरीदारों से ज्यादा फायदा उठा लेते हैं। किसानो को लाभ पहुँचाने के लिये, उन्हें इन बनियों के हथकंडे से बचाने तथा उनकी हालत को अच्छी बनाने के लिये गाँवों में माल बेचने तथा किसानो के लिये उनके जरूरत की वस्तु खरीदने वाली कमेटियाँ (समितियाँ) बन गई हैं। इन कमेटियों को क्रय-विक्रय सहकारी समितियाँ कहते हैं। उन समितियों का काम यह होता है कि वे अपने सदस्यों की उपज अच्छे से अच्छे दामों पर बेचने की कोशिश करती हैं। इसके अलावा समिति किसानों के लिये अच्छे-अच्छे एक तरह के बीज इकट्ठा करती हैं, अच्छी खाद का इन्तजाम करती हैं इत्यादि। आगे के किसी अध्याय में तुम्हे इन समितियों के बारे में खुलकर हाल बतलाया जायगा।

बाजार (Market)

अब प्रश्न उठता है कि माल कहाँ बेचा और खरीदा जाता है? तुम

जवाब दोगे "बाजार में"। लेकिन बाजार से क्या समझा जाता है ? आमतौर पर जहाँ पर तरकारी-भाजी मोल लेते हैं अथवा जहाँ अपनी जरूरत की वस्तु या वस्तुएँ खरीदते हैं उस जगह को बाजार या मन्डी कहते हैं। गाँव में जानते हैं कि दूसरे तीसरे दिन या हर हफ्ते बाजार लगता है। जगह-जगह म्यूनिस्पैल्टी पक्की इमारत या घेरा बनवा देती है जिसमें तरह तरह के सामान बेचने के लिये दूकानें लगाई जाती हैं। पर साधारण तौर पर हम बाजार या मन्डी से जिस स्थान को समझते हैं यह अर्थशास्त्र के अदर बाजार नहीं कहलाता। अर्थशास्त्र में किसी पदार्थ के बाजार से उस सारे क्षेत्र से हमारा मतलब होता है जिसमें बेचने और खरीदने वाले आपस मे इस तरह से सम्बन्ध रखते हैं कि उस बाजार में वस्तु का अनकरीब एक सा दाम रहता है। यदि गेहूँ का व्यापार दुनियाँ के भिन्न-भिन्न देशों में आसानी से और कम खर्च से होता है तो तमाम दुनिया गेहूँ का बाजार कही जायगी। यह जरूरी नहीं है कि बेचने और खरीदने वाले एक ही स्थान मे इकट्ठे हों वे दूर दूर रह सकते हैं।

उदाहरण के लिये उस बाजार को ले लीजिये जिसमे कम्पनियों के हिस्से बिकते हैं। आप जानते हैं कि अक्सर बड़ी कम्पनियों और बैंकों में केवल एक ही व्यक्ति का रुपया तो लगा नहीं रहता। बल्कि कम्पनी मे पाँच-पाँच, दस-दस या सौ-सौ रुपयों के हिस्से होते हैं। शुरू मे हर हिस्से के खरीदार को हिस्से के दाम देने पड़ते हैं। जब कम्पनी चल निकलती है और कम्पनी को खूब मुनाफा होने लगता है तो हर हिस्से पर प्राप्त होने वाले मुनाफे की रकम बढ जाती है। इससे हिस्सों का दाम बढ जाता है अर्थात् यदि कोई अपने एक सौ के हिस्से को बेचे तो लोग उसे सौ से अधिक दाम पर खरीद लेंगे। चूँकि आदमी घर बैठे इन हिस्सों की खरीद-फरोख्त कर सकता है अतएव हिस्से का बाजार बहुत विस्तृत होता है।

हमने ऊपर कहा है कि बाजार में वस्तु की कीमत अनकरीब एक सी रहती है। आप पूछ सकते हैं क्यों ? उत्तर है लाग-डाट के कारण। एक छोटा ~ ६९५ अपने अनाज की मडी का ले लीजिये। उसमें बहुत से चावल, ~हूँ बेचने वाले बैठते हैं मान लो गेहूँ का भाव चार सेर फी रुपये अब अगर मेवालाल एक रुपये में तीन ही सेर गेहूँ देना चाहेगा

तो खरीदने वाले उसे छोड़कर औरों से गेहूँ मोल लेंगे। इसी तरह अगर रामचन्द्र सवा चार-सेर का गेहूँ बेचने लगे तो खरीदने वाले और दूसरे बनिए जल्दी उसका सारा गेहूँ मोल ले लेंगे और भाव फिर चार सेर का हो जायगा। इस तरह गेहूँ का भाव चार सेर का ही बना रहेगा। जिन पदार्थों का बाजार फैला हुआ होता है उनके साथ भी यही होता है। अगर बाजार के किसी कोने में भाव महँगा है तो दूसरी जगह वाले माल बेचने के लिए वहाँ पहुँच जायेंगे। और जहाँ पर माल सस्ता होता है वहाँ का माल दूसरी जगह वाले जल्दी से खरीद लेते हैं और वहाँ भी फिर भाव बढ़ जाता है।

बाजार का क्षेत्र (Extent of the market)

किसी वस्तु की क़ीमत जितने क्षेत्र में समान हो उतना ही अच्छा होता है। डाक, तार, टेलीफोन इत्यादि की सहायता से वस्तुओं के मूल्य मे घट-बढ़ का समाचार आसानी से किसी स्थान मे तुरन्त भेजा जा सकता है, और रेल, नहर, सड़कें, मोटर आदि से माल एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी से पहुँचाया जाता है। इससे समय और धन दोनों में किफायत होती है और बाजार का क्षेत्र बढता है। यों तो बाजार बढाने के लिए पाँच बातों का होना जरूरी है। पहले तो वस्तु ऐसी होनी चाहिये जो आसानी से एक जगह से दूसरी जगह ले जाई जा सके। मकान आदि की तरह बड़ी व स्थिर न होनी चाहिये। छोटी होने के अलावा वस्तु जल्दी न बिगड़ती हो अर्थात् टिकाऊ हो। फल और मछली की कीमत एक सी नहीं रह सकती। लेकिन सोना, चाँदी वगैरह की कीमत बाजार में एक सी रहती है। दूसरी बात यह है कि पदार्थ को ले जाने में समय कम लगे। साथ ही खर्च भी कम पड़ना चाहिये अर्थात् मूल्य की तुलना मे वह अधिक भारी न हो जैसे पत्थर, लकड़ी इत्यादि। फल वगैरह ऐसी चीजें हैं कि जब तक उन्हे सावधानी से न रक्खा जाय तब तक ये दूर नहीं भेजे जा सकते। पत्थर की नक्काशी की चीजों के टूट-फूट जाने का बड़ा डर रहता है और उन्हे दूर भेजने के लिए बड़ी होशियारी से उनका पार्सल बनाना पड़ता है। इसका व्यय तथा मार्ग में उनके टूट जाने का डर, उनकी कीमत और खर्च बढ़ा देता है। तीसरी बात यह है कि वस्तु की माँग काफी और चारों ओर होनी चाहिये।

पदार्थ ऐसे होने चाहिये कि लोगों को उनके बारे मे सारा हाल अच्छी तरह बताया जा सके तथा दूर-दूर रहने वाले खरीदार अच्छी तरह यह जान सकें कि वे किस तरह का माल मँगा रहे हैं। खेती करने से जो अनाज आदि चीजें पैदा की जाती हैं वे कई प्रकार की होती हैं। गेहूँ भी कई प्रकार का होता है। इनका दूर-दूर रहने वाले आदमियों को ठीक-ठीक परिचय देना बडा कठिन होता है। इससे कीमत के विचार से गेहूँ, चना आदि चीजें सोना चाँदी की बनिस्बत बहुत ज्यादा जगह घेरती हैं। इसी कारण गेहूँ, चना आदि का बाजार बहुत विस्तृत नहीं होता। इस तरह जमीन का बाजार बहुत कम विस्तृत होता है क्योंकि वह बिल्कुल स्थिर होती है। मकानों और अपने-अपने मन के पसन्द की चीजों की भी यही हालत है।

वस्तु की कीमत किस प्रकार निश्चित होती है

किसी वस्तु के बाजार के सम्बन्ध मे बताते समय हमने कहा है कि बाजार मे कीमत एक सी रहती है। सवाल उठता है कि बाजार मे कौन सी कीमत निश्चित की जाती है? विनिमय के सम्बन्ध मे हमने कहा था कि किसी वस्तु की बिक्री उसी समय हो सकती है जब कि वह आसानी से प्राप्त हो तथा खरीददार को उसकी आवश्यकता हो। जब किसी वस्तु के उपरोक्त दोनों गुण होते हैं तब उसकी माँग तथा पूर्ति के अनुसार कीमत निश्चित होती है। माँग से हमारा मतलब वस्तु की उस मात्रा या वजन से है जिसे कुल खरीदार मोल लेने को तैयार रहते हैं; और पूर्ति वस्तु की उस मात्रा के बराबर है जिसे व्यापारी बेचने को तैयार रहता है। यदि माँग अधिक है तो खरीदार आपस में चढा-चढ़ी करते हैं और बेचने वाले को अधिक दाम मिलता है। यदि पूर्ति ज्यादा है व खरीद कम, तो कम दाम पर ही चीजें बिकेंगी। परन्तु यदि किसी वस्तु के सब व्यापारी आपस मे किसी तरह का समझौता करके यह निश्चित कर लें कि हम अमुक कीमत से कम पर माल नहीं बेचेंगे तो खरीदार को शायद उतनी ही कीमत देनी पड़े। खरीदार क्यों उस निश्चित कीमत को देगा? क्योंकि उसे उस चीज की आवश्यकता और जैसे-जैसे समय बीतेगा वैसे ही वह उस वस्तु की जरूरत को और महसूस करता जायगा। यह तो सब कोई जानता है कि गरज होती है। अगर अपनी गरज (स्वार्थ या आवश्यकता) है तो हम

उतने ही दाम देकर उस चीज को खरीदेंगे। मान लो घर में आटा नहीं है और बाजार में पिसा हुआ आटा नहीं मिल सकता तब तुमको मन्डी जाकर अनाज मोल लेना पड़ेगा। उस समय यदि मन्डी वाले चार सेर की जगह तीन सेर फी रुपये की दर से ही गेहूँ आदि देने का निश्चय कर लें तो तुम क्या करोगे। बिना अनाज लिए तुम्हारा पेट का काम चल नहीं सकता। अगर तुम इतना दाम न देना चाहोगे, तो जैसे-जैसे समय बीतेगा वैसे-वैसे तुम्हें अनाज की जरूरत ज्यादा महसूस होती जायगी और तुम अधिक दाम देने को तैयार होते जाओगे, यहाँ तक कि अन्त में तुम व्यापारी को मुँह-माँगा दाम देकर उस पदार्थ को खरीद लोगे।

यदि सोचकर देखा जाय तो मालूम होगा कि ऊपर दिये हुए उदाहरण में पूर्ति तो कम थी और खरीददार की माँग बहुत अधिक। माँग और पूर्ति का किसी वस्तु की कीमत पर क्या असर पड़ता है इसका एक और उदाहरण लीजिये। मान लीजिये आपको अनार लेना है। फल की मन्डी में जाने पर आपने कई फलवालों के पास अनार देखा, मगर भाव पूछने पर सब ने एक रुपया सेर बताया। अगर आपको अनार लेना बहुत ही जरूरी है तो आप फल वालों के इर्द-गिर्द इस प्रकार चक्कर लगायेंगे, जैसे दूध के चारों ओर बिल्ली। फलवाले इससे आपकी आवश्यकता की थाह पा लेंगे और फिर तो आप उनसे कभी भी रुपये सेर से कम पर अनार न ले सकेंगे। मान लीजिये आपके ले चुकने पर एक सज्जन और आ पहुँचे। उन्हें अनार का भाव मालूम पड़ा तो वे बोले कि तेरह आने सेर दोगे? अनार वाला बोला कि देखिये बाबू साहब खड़े हैं, पूछ लीजिए। उन महोदय को अनार की आवश्यकता है इसलिये उन्होंने चौदह आने सेर पर अनार माँगा। भाव कुछ बढ़ते देखकर अनार वाले टेढ़े पड़ने लगे। उन पर खरीददार जाने लगा। इस पर अनारवाला सोचता है कि शायद इनसे ज्यादा दाम नहीं देना चाहते। साथ ही वह इस बात पर भी ध्यान देता है कि रुपये में उसे चार आने का फायदा होता है।

आपने, दूसरे सज्जन की माँग इतनी अधिक नहीं थी कि वे रुपये सेर का दाम देने को तैयार हो जाते। उन्होंने देखा कि इन अनार वालों का गुट्ट अधिक दाम माँग रहा है तो वे जाने लगे। अनार के रहते माँग कम हो गई और इसीलिये गुट्ट मे से एक को कम दाम पर अनार बेचना पडा। यदि दूसरे सज्जन के सामने और लोग भी आने लगते तो अनार का भाव पन्द्रह आने पर ही बना रहता है।

यदि माँग बिल्कुल ही कम हो तो कीमत और भी गिर जाती है। अनार जल्दी बिगड़ने वाला फल है। मान लो रात हो गई और बाजार में सन्नाटा छाने लगा अर्थात् ग्राहकों का आना कम हो गया। उसी समय एक मनचला जवान आ पहुँचा। भाव पूछ कर बोला कि चौदह आने सेर दो तो दो सेर दे दो। अनार वाला मन मे सोचता है कि क्या पता दो सेर अनार बेचने के लिये मुझे कल कब तक ठहरना पडे। फिर रात को कुछ अनार बिगडने लगेंगे। इसके अलावा तुरन्त नफे के चार आने मिल जायेंगे, यह सोचकर वह चौदह आने सेर पर ही अनार बेच देता है।

किसी चीज के भाव के निश्चित होने पर उस चीज की मात्रा या वजन का असर जरूर पडता है। तीसरे सौदे मे अनार वाले ने इसका ख्याल किया था। यही क्या, आप कहीं भी थोक मे अधिक माल लीजिये तो आपको कम कीमत देनी पडेगी। बाजार मे आप आम खरीदने जाइये, अगर पैसे में एक आम मिलता है तो शायद दस में एक दर्जन और अठारह आने में सौ आम मिल जायँगे। इसके अलावा अनार वाले ने भविष्य का भी ख्याल किया था।

यदि अनाज वालों को यह पता चल जाय कि वर्षा की कमी के कारण अबकी बार खेती खराब हो रही है तो वे अभी से भाव तेज कर देंगे। वे जानते हैं कि यदि आज कोई तेज भाव पर अनाज नही खरीदेंगे तो कल आवश्यकता बढ़ जाने पर लोग अवश्य ही अनाज खरीदेंगे व्यापार में भविष्य कितना खेल खेलता है इसका अंदाजा लगाना कठिन है। कितने सेठ [illegible] ने इसी की बदौलत कोठियाँ खड़ी कर लीं और इसी कारण से अपनी [illegible] पैदा कर रहे हैं। समय के साथ भी कीमत घटती-बढ़ती है। यदि गेहूँ चार सेर का बिकता है तो हो सकता है कल सवा चार सेर का

बिकने लगे। क्यों ? मान लीजिए कल सुबह गाँव से गेहूँ की बीस गाड़ियाँ आ गईं। इससे गेहूँ की पूर्ति के विचार से माँग के कम पड़ जाने से भाव गिर गया और गेहूँ सवा चार सेर का बिकने लगा। ख्याल कीजिये कि किसी वर्ष खेत मे खूब अनाज पैदा हुआ। परन्तु इसी समय योरुप मे लड़ाई छिड़ जाने से वहाँ अनाज की माँग बहुत बढ़ गई। किसानों और व्यापारियों ने अच्छे दाम पर अनाज बाहर भेजना प्रारम्भ कर दिया। इस समय देश मे अच्छी फसल होने पर भी अनाज की कीमत बढ़ जायगी।

यदि हम अनार वाला उदाहरण फिर से ले लें तो क्या अनार बेचने वाला बारह आने सेर का दाम ले लेगा ? कदापि नही। बारह आने तो उसका लागत खर्च है। मुनाफा व मेहनत के दाम कहाँ गये ? बारह आने छोड़ वह तेरह आने पर भी अनार बेचने को तैयार नही होगा। लेकिन वस्तु की हालत खराब हो जाने पर कीमत अवश्य गिर जाती है। मान लो, कोई जलेबी वाला है। रात हो जाने पर जलेबी सूख कर बासी हो जाती है। वह जानता है कि दूसरे दिन ताजी जलेबियाँ बनेंगी उस समय बासी जलेबियों को कोई नही पूछेगा। इसलिये रात को भाव और कम कर देगा या अंत मे जलेबियों को स्वय खा लेगा।

किसी वस्तु की उत्पत्ति मे जो खर्च बैठता है उस वस्तु की कीमत उस खर्च के आस-पास ही रहती है। यदि आशा, निराशा, रुपये की तंगी इत्यादि का विचार न किया जाय तो उस वस्तु की कीमत हमेशा चीज को उत्पन्न करने के व्यय से थोड़ी सी अधिक ही रहती है। इस अधिकता मे बेचने वाले का मुनाफा शामिल रहता है। एक किसान को उपज करने मे खेतों को जोतना, बोना व सींचना पड़ता है। इसके अलावा अनाज की कटाई, मँड़ाई करके बाजार मे लाने में खर्च होता है। यह सब खर्च तथा उसकी मजदूरी-मुनाफा और खेत का लगान, उत्पादन व्यय मे शामिल रहता है। तुमको मालूम है कि कई मिलें एक ही तरह का माल तैयार करती हैं। परन्तु सब का लागत-खर्च भिन्न होता है, किसी का कम किसी का ज्यादा। ऐसी हालत मे क्या तुम बता सकते हो कि बाजार मे उस वस्तु का मूल्य सबसे कम लागत के हिसाब से निश्चित होगा या सबसे अधिक लागत के अनुसार। इन दशाओं मे हमेशा किसी चीज की कीमत सबसे अधिक लागत

का ध्यान रखकर निश्चित होती है। हाँ, यदि लागडाट हो तो सबसे कम लागत वाली मिल कम कीमत पर माल बेचेगी। परन्तु यदि ऐसा हुआ तो दूसरी मिलें बन्द हो जाएँगी।

कुछ वस्तुएँ ऐसी होती हैं कि उनकी मात्रा कभी बढाई नहीं जा सकती जैसे पुराने चित्र, सिक्के इत्यादि। इनकी कीमत माँग और पूर्ति के हिसाब से ही तै की जाती है। उत्पादन व्यय का उस पर कोई असर नहीं पडता।

खेती से उत्पादन पदार्थों की कीमत

ऊपर कीमत निश्चित होने के सम्बन्ध में जो बातें बतलाई गई हैं वे हमारे गाँव मे बिकने वाली वस्तु के ऊपर नहीं लागू होतीं। इसका एक विशेष कारण है। हमारे किसान कर्जदार रहते हैं। गाँव के महाजन किसानों को खाने के लिए अनाज उधार देते हैं। परन्तु ये खाते में अनाज का वजन लिखकर बाजार-भाव से सेर आधा-सेर कम अनाज का दाम लगाकर खाते में लिख लेते हैं। फसल पर ये लोग रुपये के बदले मे अनाज लेते हैं। परन्तु किस भाव? इस बार अनाज बाजार से सेर आधा-सेर अधिक भाव पर लिया जाता है। उदाहरण के लिए यदि चार सेर का भाव है तो उधार देने के समय अनाज का भाव पौने चार सेर का लगाया जाता है और फसल पर लेते समय पाँच सेर का भाव लगाया जाता है। बेचारे किसानों को इससे काफी घाटा सहना पडता है।

इसके अलावा बहुत सी उपज को किसान व्यापारी के हाथ बेचता है। व्यापारी फसल के समय तो सस्ते दामों मे अनाज खरीदता है, फिर कुछ दिनों बाद उसी अनाज को किसानों के हाथ महँगे दामों मे बेचता है। आप कह सकते हैं कि किसान अपने लिए अनाज बचाकर क्यों नहीं रख लेता। ठीक है, परन्तु हमारे किसान की ऐसी हालत है कि वह फसल को अपने पास रख तो सकता ही नहीं। किसान जितना अनाज पैदा करता है उसका एक बडा भाग तो नाई, धोबी, लोहार वगैरह के पास चला जाता है। कर्ज पटाने व लगान देने के लिए रुपये की जरूरत पडती है। इसलिए बाकी भाग भी फौरन बेचना पड़ता है। किसान जब मडी में अनाज बेचने जाता है तो उसके और व्यापारी के बीच में दलाल आ पड़ता है। फिर उसे अनाज वाले को, तौलने वाले को, रसोइया को, भिश्ती और मेहतर को

कुछ न कुछ देना पड़ता है। इसके अलावा मंडी के कुएँ के लिये गंगाजली के नाम पर व धर्मखाते के नाम अनाज वसूल किया जाता है। फिर जिस बाट से तौल कर व्यापारी अनाज लेता है वे गड़बड़ होते हैं। इन सब बातों से किसान जिस भाव से अनाज बेचता है वह और सस्ता हो जाता है। बल्कि यह कहा जाय कि हमारे किसान की हालत ऐसी गिरी हुई है कि माल बेचते समय किसान लूटा जाता है। किसानो की बिगड़ी हुई हालत के अलावा अनाज को बेचने के लिए उसे अच्छे तरीके नहीं प्राप्त हैं। हमारे किसानों की पहुँच अच्छे बाजारों तक नहीं होती। खेती से उत्पन्न पदार्थों को बाजार मे बेचने के प्रश्न के ऊपर हम अगले किसी अध्याय में अच्छी तरह विचार करेंगे।

अभ्यास के प्रश्न

१—अदला-बदली की सुविधाएँ उदाहरणों सहित समझाइए।

२—किसो वस्तु को बिक्री में बेचने वाले और खरीदने वाले दोनों को लाभ होता है। उदाहरणों सहित समझाइये।

३—अदला-बदली क्या है ? क्या यह आपके गाँव में पाई जाती है ? क्रय-विक्रय ने इसका स्थान क्यों ले लिया है ?

४—फसल बेचते समय भारतीय किसानों को किस प्रकार हानि उठानी पड़ती है ?

५—अपने गाँव के किसी किसान के साथ मंडी जाकर यह पता लगाइये कि अपना अनाज बेचते समय तौलने वाले को, नौकरों को तथा धर्म के नाम पर कितना अनाज देना पड़ा।

६—यदि किसी वर्ष वर्षा कम हो जाय तो उसका असर अनाज की कीमतों और अन्य वस्तुओं की कीमतों पर कैसा पड़ेगा ?

७—यदि किसी वर्ष वर्षा बहुत अच्छी हो और फसल अच्छी आवे परन्तु विदेश से अनाज की माँग बढ जाय तो अनाज की कीमत पर तथा अन्य वस्तुओं की कीमत पर क्या प्रभाव पडेगा ?

८—स्वदेशी आन्दोलन का गाँधी टोपी की कीमत पर क्या प्रभाव पड़ा ? इसका प्रभाव विदेशी टोपियों की कीमत पर क्या हुआ ?

९—वस्तु की कीमत का उसके लागत खर्च से क्या सम्बन्ध रहता है ?

१०—लागत खर्च मे जो खर्च शामिल किये जाते हैं उनकी सूची किसी एक वस्तु का उदाहरण लेकर तैयार कीजिए।

११—सूती कपड़ा भारत मे सैकडों मिलों मे तैयार किया जाता है और प्रत्येक का औसत लागत खर्च भिन्न-भिन्न है। ऐसी दशा मे सूती कपडे का मूल्य किस मिल के लागत खर्च के बराबर होगा ?

१२—लागत खर्च से कम कीमत पर वस्तु किन दशाओं मे वेची जाती है?

१३—आप 'वाजार के क्षेत्र' से क्या समझते हैं ? किसी वस्तु के बाजार का क्षेत्र किन बातों पर निर्भर रहता है ? विस्तृत बाजार वाली कम से कम दस वस्तुओं की सूची तैयार कीजिये ?

१४—निम्नलिखित वस्तुओं का बाजार किन दशाओं में विस्तृत हो सकता है ?

कलमी आम, लकड़ी, कम्पनी का हिस्सा (शेयर), पुस्तक, नयी मशीन।

१५—किसी वस्तु की कारखाने की कीमत और फुटकर बिक्री की कीमत के पारस्परिक सम्बन्ध उदाहरणों सहित समझाइये।

१६—सफल दूकानदार मे किन गुणों की आवश्यकता है ?

दसवाँ अध्याय

ग्रामीण फसल की बिक्री

प्राक्कथन

पिछले अध्याय मे हमने फसल की बिक्री के बारे मे थोड़ा सा हाल बताया था। हम यह बता चुके हैं कि किसानों को ज्यादातर अपना माल उन महाजनों के हाथ बेचना पड़ता है जिससे वे रुपया उधार लिए रहते हैं। यह कहने की जरूरत नहीं मालूम पड़ती कि वे माल लेते समय बाजार से बहुत सस्ता दाम लगाते हैं। परन्तु कुछ किसान ऐसे भी हैं जो स्वय मंडी मे र अनाज बेचते हैं। आप पूछ सकते हैं कि किसान किस मडी मे अपना ज वेचता है और किस प्रकार वेचता है।

इसके पहले कि हम मंडी और बिक्री के ढंग के बारे में कुछ बताएँ, यह कहना गलत न होगा कि किसान और खरीददार के बीच मे व्यापारी का होना जरूरी है। सब खरीददार फसल तैयार होते ही साल भर के लिए अनाज या अन्य उपज यों खरीद नही सकते। उन्हे जब जरूरत होती है तथा जब जेब मे पैसे होते हैं तब अनाज खरीद लेते हैं। परन्तु हमारे किसान के लिए यह सख्त जरूरी है कि फसल तैयार होने के बाद जितनी जल्दी हो सके वह बिक जाय। वह साल छः महीने तक अनाज को लिए बैठा नही रह सकता। पहले तो उसके पास इतनी जगह ही नहीं होती कि वह उपज को रक्खे। आप जानते ही हैं कि फसल काट कर वह खलिहान मे रखता है। दूसरी बात यह है कि किसान को लगान, सूद, मजदूरी आदि देनी पड़ती है। सरकार लगान अधिकतर रुपये मे माँगती है। कुछ मजदूरी भी पैसों मे देनी पड़ती है। अतएव यह जरूरी हो जाता है कि किसान फसल रख नहीं सकते, इसलिए इन दोनों के बीच व्यापारी का होना जरूरी है। इन व्यापारियों से बड़ा काम निकलता है। यह एक फसल को एक स्थान मे इकट्ठा करते हैं। फिर इन्हे साफ कराकर तथा उनकी किस्मो को अलग अलग करके बाजारों मे भेज देते हैं। वहाँ छोटे दूकानदार अनाज को खरीद कर फुटकर खरीददारों के हाथ बेच देते हैं।

बिक्री की बातें

अस्तु, उपज को मुनाफे के साथ बेचने के लिए यह अत्यन्त जरूरी है कि बेचने वाले को बाजार भाव व बाजार की दशा का पूरा ज्ञान हो। कौन चीज कहाँ सस्ती बिकती है, कहाँ ले जाने से महँगी बिकेगी, किस रास्ते तथा किस तरह ले जाने से भाड़ा कम पड़ेगा, इन सब बातों का पूरा ज्ञान होना जरूरी है। उसे यह भी मालूम होना चाहिए कि उपज को किस समय अथवा कितने दिनों के अन्दर बेच देना चाहिए। परन्तु हमारे किसान तो अशिक्षित और निर्धन हैं। वे भाव-ताव के बारे मे कुछ नहीं जानते। प्रायः उन्हे बाहर की मंडियों का भाव मालूम नहीं रहता, और न उन्हे बाहर जाकर बेचने का सुभीता ही रहता है। इसलिए उन्हे गाँव में या पास की किसी मंडी में जो दाम मिलता है उसी में सतोष करना पड़ता है।

मंडी में फसल की बिक्री

प्रथम तो किसान को यही नहीं मालूम पडता कि उसका माल उचित भाव से बिक रहा है या नहीं, और उसे ठीक-ठीक दाम मिल रहे हैं या नहीं। फिर म्युनिस्पिल टैक्स (चुंगी) के अलावा किसान को मडी में गाड़ी ठहराने का शुल्क, दलाल की दलाली देनी पडती है। फिर अनाज उतारने वाले पल्लेदार को, माल तौलने वाले को, भूसा निकालने वाले को तथा गौशाला, मन्दिर, प्याऊ आदि न जाने उससे किस-किस के लिए दान लिया जाता है। तम्बाकू खरीदने वाला तौलाई की गिनती के लिए मन पीछे तम्बाकू का एक पूड़ा लेता है, गंगा जी के नाम पर दूसरा पूडा लिया जाता है। तौलने वाला अपने काम के लिए एक पूडा लेता है। फिर तौलाई और दलाली अलग लगती है। इस तरह से बेचने वाले की खासी रकम निकल जाती है। इसके अलावा अनाज जिस बाट से तौला जाता है वह अक्सर बनावटी होता है। व्यापारी सरकारी पन्सेरी की जगह पत्थर के बाट काम में लाते हैं। बेचारे किसान इस बावत भी कुछ नहीं कह सकते। यही नहीं, कभी तौलने वाला डडी मारता है, तराजू में पसंगा रखता है इत्यादि।

गाँव में बनी वस्तुओं की बिक्री

इसी प्रकार की हालत हमारे गाँवों के शिल्पी और कारीगरों की भी है। गाँव में अधिकतर जुलाहे, बढ़ई, रस्सी-बटने वाले, तेली, मोची आदि कारीगर और दस्तकार रहते हैं। इनको भी बाजार भाव का ज्ञान नहीं होता। जुलाहा बुनकर कपड़ा तैयार करता है। बढई बिना माँग के हल को बना लेता है। रामू किसान फुरसत के वक्त सन को बटकर रस्सी तैयार करता है। बालादीन टोकरी बना डालता है। शङ्कर तेली अलसी और सरसों का तेल तैयार करता है। इनको बेचने के लिए वे पहले गाँव में ही खरीददार ढूँढ़ते हैं। अपने तैयार माल को गाँव के महाजन या साहूकार के पास ले जाते हैं। उससे पूछते हैं कि क्या उसे कपड़े, रस्सी आदि की जरूरत है। परन्तु एक बात है। इन महाजनों और साहूकारों के हाथ माल बेचने से उन बेचारों को पूरा दाम कभी नहीं मिलता। गाँव के ये कारीगर अपने माल को के हाट में ही बेचते हैं। यदि गाँव के पास कहीं मेला होता है तो बेचने ...ज से माल को वहाँ ले जाते हैं।

ग्रामीण सड़क

माल को बेचने की प्रथा में जो बुराइयाँ हैं उनको दूर करने के लिए देश की सरकार कोशिश करती रहती है। माल को अच्छी मंडी में पहुँचाने के लिए पहले तो इस बात की आवश्यकता है कि गाँवों का मंडियों से सम्बन्ध हो। अर्थात् मंडियों को मिलाने के लिए अच्छी उम्दा सडकें हों। आप यदि गाँवों की ओर जाने का कष्ट करें तो आपको मालूम होगा कि प्रथम तो गाँव में जाने के लिए रास्ता ही नहीं होता, यदि होता भी है तो कच्चा, धूल और गड्ढों से भरा हुआ, जिसमें से बैलगाड़ी को निकाल ले जाना कठिन जान पडता है। फिर बैलगाड़ी, ऊँट तथा घोड़े गदहे होते ही कितने किसानों के पास हैं। गाँव में मुश्किल से दो तीन बैलगाड़ियाँ निकल सकती हैं। ऐसी हालत में यह बड़ा जरूरी है कि गाँव में पक्की सड़कें बनाई जावें। बीसवीं शताब्दी के नये जमाने मे बैलगाड़ी का काम नहीं। यदि मोटर लारी का इन्तजाम हो सके तो बड़ा ही अच्छा हो जिससे किसान अपने माल को अच्छी मंडी में कम खर्चा से पहुँचा सकें। द्वितीय महायुद्ध खतम हो जाने के कारण फौज की मोटर लारियों से पदार्थों की ढुलाई का काम लिया जा सकता है।

यह सन्तोष की बात है कि भारत सरकार और प्रादेशिक सरकार यातायात की उन्नति के लिए प्रयत्नशील हैं और इस हेतु योजनाएँ बना ली हैं। इन योजनाओं में लारी रेल को लागडाट बिल्कुल घट जायेगी।

सहकारी संस्थायें और बिक्री
(Cooperative Marketing Soeieties)

लेकिन किसानों की तो अवस्था ऐसी है कि माल को मडी में पहुँचाने का इन्तजाम हो जाने से भी उनकी हालत अधिक नहीं सुधर सकती। हर एक किसान के पास शायद इतनी अधिक फसल नहीं होती कि वह उसे मोटर पर लाद कर मंडी ले जाय। इससे भी अधिक मार्के की बात तो यह है कि किसान यह नहीं जानता कि फसल को किस मडी में ले जायें। फिर भाव-ताव और मंडी मे लिए जाने वाली तरह-तरह की उगाही का सवाल तो बाकी रह जाता है। यह देखा गया है कि सहकारी संस्थाएँ किसानों को इस दुःख से उबार सकती हैं। सहकारी संस्था वह संस्था है जो सरकार

के सहकारी विभाग की ओर से खोली जाती है। इसमें गाँव वाले सदस्य बनाए जाते हैं। संस्था का मैनेजर, जिसकी नियुक्ति सरकार की ओर से होती है, किसानों की उपज को खरीद कर उसे महँगी से महँगी मंडी मे बेचता है। इस प्रकार से संस्था को जो लाभ होता है उससे मैनेजर वगैरह की तनख्वाह काटने के बाद जो बचता है वह तो मेम्बरों को ही बाँट दिया जाता है। यही नही, बाजार सम्बन्धी अन्य बातों की जानकारी प्राप्त करने के बाद सहकारी समिति माल को अंतिम खरीददार के हाथ भी बेच सकती है। ऐसा करने से बीच के कई दलालों की दलाली तथा नाना प्रकार के शुल्क आदि से सहज ही छुटकारा मिल जाता है और किसानों को भी अधिक से अधिक दाम मिल जाता है।

विदेशों में तो इन संस्थाओं को काफी सफलता मिली है। इंगलैंड, अमरीका आदि देशों में हजारों ऐसी समितियाँ काम कर रही हैं। हमारे देश में भी ऐसी समितियाँ खोलने का प्रयत्न किया जा रहा है। जब प्रदेशों का इतजाम कांग्रेस के हाथ में आया तब ये समितियाँ खूब जोर-शोर से खोली गईं। प्रादेशिक सरकारों ने अब इन समितियों की अधिक सख्या में व्यवस्था और उन्नति करने की योजना बनाई है। इन समितियों को माल रखने की और सुविधा देने के लिए सरकारी व्यय से छोटी बड़ी सीमेंट की खत्तियाँ (जमीन के अन्दर गोदाम) बनाई जायेगी। परन्तु भारत में एक और विशेष बात यह है। हमारे किसान बहुत ऋणी हैं। यह बात किसी से छिपी नहीं है। पहले तो इस कर्ज के मारे किसानों को अपना माल महाजन के हाथों में ही बेचना पडता है दूसरे कर्ज अधिक होने से महाजन किसी प्रकार किसान से अपना रुपया निकालना चाहता है। महाजन भी समिति के मेम्बर बन तो सकते ही हैं। बस वे उस समिति से किसान को रुपया कर्ज दिला देते हैं। यह रुपया वे किसानों से खुद दिए हुए कर्ज की अदाएगी मे वसूल कर लेते हैं। और फिर महाजन साहब समिति की मेम्बरी छोड़ देते हैं। बाद मे किसान के रुपया चुका न सकने के कारण समिति का काम रुक जाता है और फिर सब ८ हो जाता है। परन्तु समिति के इन गुण-दोषों के बारे मे बताने की यह नहीं है। आगे चलकर साख के सम्बन्ध मे बताते समय इन संस्थाओं २ में और खुल कर बतायेगे।

हमारे सामने सबसे बडा प्रश्न तो यह है कि हमको अपने अपढ और मूर्ख किसान समूह को पढा-लिखाकर एक ऐसे व्यापारी मडल मे बदल देना है कि वे आजकल के व्यापारी मंडल का सफलतापूर्वक सामना कर सकें। इस बात की अत्यन्त आवश्यकता है कि किसानों की पुश्तैनी आलस्य और असमर्थता को उनसे भगा दिया जाय। व्यापारियों के दिमाग में यह बात अच्छी तरह घुसा देने की जरूरत है कि वे उचित लाभ लेते हुए किसानों से मिलकर काम करे। अब तो व्यापारियों को कन्ट्रोल में लाने के लिये तथा बड़ी मडियों में सुप्रबन्ध के लिये कमेटियाँ बनाई जाएँगी। ये कमेटियाँ उन सब बेईमानी और दिक्कतों को दूर करने तथा किसान को ठहरने की सुविधा देंगी।

ग्रामीण बाजार

प्रतिदिन के काम के लिये गाँव में कुछ दूकाने तो रहती ही हैं जैसे तेली की दूकान, मोची की दूकान, बढई की दूकान, भुँजवा की दूकान इत्यादि। परन्तु बात यह है कि गाँव का बढई, चमार, तेली वगैरह हर समय लकडी, चमड़े और तेल का ही काम नही करते। अधिकतर इनके पास खेत होते हैं और ये अपना अधिक समय खेती करने में लगाते हैं। बिहारी चमार के पास चमडे की कटाई, सिलाई आदि करने के औजार रहते हैं, परन्तु वह उनको तभी निकालता है जब गाँव का कोई मनुष्य उसे अपना जूता मरम्मत करने को दे जाता है। या जब कुएँ से पानी निकालने वाले चमड़े का डोल फट जाता है और उसका मालिक उस डोल को ठीक कराने के लिए बिहारी के पास लाता है। बिहारी बाजार के महादेव चमार की तरह दूकान खोलकर दिन भर नहीं बैठा रहता। इसी प्रकार बाजार में दूकान कर शीतल बढई लकड़ी का कोई न कोई काम करता ही रहता है, उसका मुख्य पेशा लकड़ी का काम करना है। जब उसके पास मरम्मत के लिए कोई काम नही रहता तब वह अपने मन से कुर्सी, मेज, खाट आदि चीजे बनाया करता है। जब कहीं पर चमार, बढई, तेली, कुम्हार आदि दूकान खोल कर काम करते हैं, तब हम कहते हैं कि उस जगह पर बाजार है। अधिकतर गाँवों में बाजार नहीं होता। गाँव मे कुछ ऐसे आदमी होते हैं जो खेती करने के अलावा बढ़ई, चमार, कुम्हार आदि का काम

भी जानते हैं। अतएव जब रामू को चारपाई की जरूरत पड़ती है तो गोपाल बढ़ई फुरसत के समय में लकडी को काट-छील कर रामू के लिये एक चारपाई बना देता है। इसी तरह जूता फट जाने पर हामिद चमार अपने कामों से फुरसत पाकर जब बैठता है तो औजार निकाल कर जूते को सी देता है। यह जरूरी नहीं कि प्रत्येक गाँव में एक बाजार हो। शहरों में तो बाजारों का होना अनिवार्य है क्योंकि वहाँ तो हर समय कोई न कोई व्यक्ति माल खरीदने अथवा कोई वस्तु बनवाने के लिये तैयार रहता है। बढई, चमार, लोहार वगैरह को सुबह से शाम तक करने के लिये काफी काम रहता है। लेकिन गाँवों में इतना काम कहाँ से आये? अतएव कुछ बडे-बडे गाँवों में ही बजार रहते हैं बाकी में नहीं। और जैसा कि हम ऊपर देख चुके है बाजारों की जरूरत भी वहाँ नहीं रहती है।

हाट

यदि गाँवों में बाजार हो तब भी गाँव वालों को हर एक आवश्यक चीज वहाँ नहीं मिल सकती। मान लीजिये कोई वस्तु गाँव में नहीं बनती और रामू किसान को उसकी बड़ी जरूरत है। एक दूसरे गाँव में वह वस्तु बनाई जाती है। परन्तु उस वस्तु के बनाने वाले को क्या गरज पडी है कि वह रोज रामू के गाँव में उस वस्तु को बेचने आया करे। इसलिये हफ्ते में कही एक बार कहीं दो बार बाजार लगता है। इसे हाट कहते हैं। ग्राम समूह के बीच के किसी एक गाँव को हाट के लिये चुन लिया जाता है। हाट के दिन उस गाँव के चारों ओर स्थित गाँवों से लोग अपने अपने वस्तुओं को लेकर आते हैं। कोई तरकारी-भाजी बेचने लाता है, कोई टोकरी, कोई रस्सी, कोई कपडा। इसी तरह से जो जिसके पास होता है वह उसे बेचने के लिये लाता है। तेली तेल लाता है, लोहार फावड़ा कुदाली लाता है, और चमार जूता, चमडे का डोल आदि चीजें लाता है। बेचने वालों के अलावा गाँवों से माल खरीदने वाले भी आते हैं। जो जिसकी जरूरत होती है वह उस वस्तु को खरीद लेता है। अधिकतर हाट दोपहर के बाद लगता है और रात होते-होते उठ जाता है।

गाँव का मेला

।- के अलावा त्योहारों पर मेला लगता है। चूँकि त्योहार साल भर

मे एक बार आते हैं इसलिए मेला साल में लगता है। मेला किसी कसबे या बड़े गाँव में लगता है। उसमें बड़ी भीड़ होती है। मेले में दूर-दूर के गाँवों के लोग आते हैं। जब मेला लगता है तो गॉव में सब लोगों के घर पर मेहमान आते हैं। झुंड के झुंड लोग देखने आते हैं। मेले में जो भीड़ होती है उसमें यदि कोई छूट जाय तो बड़ी मुश्किल से मिलता है। इसलिए मेले में सब लोग इस बात का ध्यान रखते हैं कि कही कोई भटक न जाय। ऊपर बताई बात से यह मालूम पड़ जाता है कि मेले मे सैकड़ों आदमी इकट्ठे होते हैं। मेले में तरह तरह की दूकानें आती हैं। कहीं खिलौने बिकते हैं, कोई कागज के फूल, चिड़ियाँ और बाँसुरी बेच रहा है। कहीं फल बिकते हैं, कहीं मिठाई और कहीं बरतनों के ढेर लगे रहते हैं। मेले में खेल भी बहुत होते हैं। मेले में हिंडोले भी गड़ते हैं। लड़के और बड़े लोग उन पर झूलते हैं। कहीं कही बड़े मेले लगते हैं। जो चीजे गॉव के हाट व बाजारों में बिकने नहीं आती वे मेलों में बिकने आती हैं। बड़े बड़े मेलों मे गाय, बैल, घोड़े आदि भी बिकने आते हैं।

हाट और मेले का महत्व

गाँव और गॉव के रहने वालों का ख्याल रखते हुए यदि हाट और मेलों के बारे मे सोचा जाय तो वे काफी महत्व रखते हैं। हाटों में अधिकतर अनाज आदि की बिक्री अधिक होती है। इसके विपरीत मेलों मे खेल-खिलौने और मिठाई के अलावा दस्तकारी की वस्तुओं और जानवरों की खरीद-फरोख्त होती है। अतएव हाट तो किसानों के लिए उपयोगी होते हैं और मेले कारीगरों और दस्तकारों के लिए। इसके अलावा यदि गाँव भर का ख्याल किया जाय तो हाट मेलों से बढ़कर स्थान रखते हैं। क्योंकि हाट मे अनाज, तरकारी व हाथ की बनी हुई चीजे बिकने आती हैं। व्यापारी लोग अकसर हाटों से अनाज खरीद ले जाते हैं।

हाट और मेले का संगठन

परन्तु कुछ गाँव से हाट व मेले का स्थान पास नहीं पड़ता। यह बहुत जरूरी है कि हाट लगाने के स्थान इस प्रकार चुने जाएँ कि आस-पास के गाँव के निवासियों को उसमे पहुँचने का मौका मिले। इसके अलावा किसान के ठगे जाने से बचाने के लिए उन्हे बाजार-भाव का ज्ञान कराना

बडा आवश्यक है और आजकल न तो हाट ही व्यवस्थित रूप मे लगते हैं और न मेले ही। हालाँकि इनके जरिए किसान व गॉव के कारीगर अपना बहुत कुछ माल बेच सकते हैं—परन्तु देखा जाता है कि इनमे और खास कर मेले मे मजा उडाने, तमाशा देखने आदि की गरज से लोग ज्यादा आते हैं। हलवाइयों, खिलौने बेचने वालों, चटपटे बेचने वालों और झूला झुलाने वालों को तो काफी आमदनी होती है परन्तु औरों को बिक्री बहुत कम होती है। इस बात की बड़ी जरूरत है कि इनका इस प्रकार से सगठन किया जाय कि हाट और मेलों में बड़ी तादाद में बेचने और खरीदने वाले आवें और खूब खरीद-फरोख्त होवे, लेकिन इस तरह से कि किसानों को धोखा न खाना पड़े।

अभ्यास के प्रश्न

१—उन व्यापारियों की सूची तैयार कीजिये जो आपके गॉव से अनाज खरीदकर मडी में ले जाते हैं। यह भी पता लगाइए कि किस व्यापारी ने अनाज आपके गाँव मे किस भाव में खरीदा और उस समय पास की मंडी में उसका क्या भाव था?

२—तैयार होते ही किसानों को फसल क्यों बेच देनी पड़ती है? इससे उनको क्या हानियॉ होती हैं? ये हानियॉ कैसे रोकी जा सकती हैं?

३—आपके जिले में खेती की उपज की बिक्री का क्या ढग है? किसान को अपने माल की उचित क़ीमत क्यों नहीं मिलती?

४—क्या आपके गॉव के पास से पक्की सडक गई है? यदि नहीं, तो उसके न होने से आपके ग्राम वासियों को क्या असुविधाऍ होती हैं?

५—यदि आपको अपने जिले में नई सडकों के बनवाने का कार्य सौंपा जाय तो आप किस प्रकार की सडकें कौन से स्थान से कहॉ तक बनवावेंगे?

६—बनिए से किसानों को क्या लाभ है? क्या यह जरूरी है कि उनको हटाने के लिए सहकारी बिक्री समितियाँ बनाई जायँ?

७—सहकारी बिक्री समिति का सगठन समझाइये और उसके द्वारा होने वाले लाभों का दिग्दर्शन कीजिये?

—आपके गाँव के आस-पास किन-किन स्थानों में किस-किस दिन लगते हैं? इन हाटों में कौन-कौन सी वस्तुऍ बिकने को आती हैं?

इन हाटों से किसानों को क्या लाभ होते हैं ? इन हाटों की व्यवस्था में किन सुधारों की आवश्यकता है ?

९—आपके गाँव के आस-पास किस स्थान में कब 'मेला' लगता है ? इस मेले मे अधिकतर कौन सी वस्तुएँ बिकने को आती हैं और इस मेले से किसानों को क्या लाभ होते हैं ?

१०—साप्ताहिक हाट और मेलों का ग्रामीणों के लिए क्या महत्व है ? गाँव का बनियाँ कौन सी आर्थिक सेवा करता है ? (१९४२)

११—गाँव के कारीगरों को अपनी बनी हुई वस्तुएँ वेचने में किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है और वे किस प्रकार दूर की जा सकती हैं ?

१२—आपके गाँव में ग्वालों की सख्या कितनी है ? प्रतिदिन उनके यहाँ कितना दूध होता है और इसके वेचने का क्या प्रबन्ध है ? दूध के बिकने पर शेष दूध का क्या उपयोग किया जाता है ?

१३—यदि आपको अपने गाँव में सहकारी बिक्री समिति स्थापित करने को कहा जाय तो आप अपना कार्य किस प्रकार आरम्भ करेंगे ?

१४—आपकी प्रादेशिक सरकार किस प्रकार किसानों की बिक्री सम्बन्धी दिक्कतें दूर करने की कोशिश कर रही है ?

१५—आपके जिले में कृषि पदार्थों की बिक्री कैसी होती है ? किसानो को अपने माल का उचित दाम क्यों नहीं मिलता ?

१६—किसान को अपने माल की विक्री में क्या कठिनाइयाँ होती हैं ?

१७—वर्तमान भारत में वस्तुओं के भाव क्यों अधिक हैं ? उत्पादकों और व्यापारियों द्वारा अत्यधिक मुनाफा का लेना कहाँ तक इसका कारण है ? (१९४७)

ग्यारहवाँ अध्याय

वितरण (Distribution)

वितरण क्या है ?

अभी तक हमने केवल इस बात पर विचार किया है कि धन किस प्रकार उत्पन्न किया जाता है । परन्तु यह हमने अब तक नहीं बताया है कि

उत्पत्ति के कार्य में हाथ बटाने वालों को उत्पन्न किये धन का हिस्सा किस प्रकार मिलता है। इसके पहले कि यह बताया जाय कि प्रत्येक का किस प्रकार हिस्सा लगाया जाता है, यह याद दिलाना जरूरी मालूम पडता है कि किसी वस्तु की उत्पत्ति के साधन क्या क्या हैं ? तुम जानते ही हो कि भूमि का होना अनिवार्य है। जमीन के अलावा मेहनत करना भी जरूरी है। इसके अलावा धन भी लगाना पड़ता है और साथ ही साथ इन्तजाम की भी जरूरत पड़ती है। जो इन्तजाम करता है अधिकतर वही साहसी भी होता है। किसी काम के लिए जोखम उठाने वाला भी होता है। मिलों में इन्तजाम करने वाले को मैनेजर कहते हैं और जोखम उठाने वाले को साहसी कहते हैं।

अतः प्रत्येक तैयार या पैदा की वस्तु में पाँच अंश होते हैं। प्रथम, प्रकृति-दत्त भूमि जिसमें वह सब वस्तुयें शामिल हैं जो तैयार वस्तु में निहित हैं। द्वितीय, मजदूर का श्रम। तृतीय, पूँजीपति की पूँजी का उपयोग। चतुर्थ, मैनेजर की व्यवस्था और पंचम, साहसी का साहस। अतः वस्तु की प्राप्त कीमत में से भूमि के अंश को छोड़ कर शेष में से भूमि के मालिक श्रमिक पूँजीपति, मैनेजर और साहसी का अपना अपना अंश दे देना चाहिये। यही होता है और इसी को वितरण कहते हैं।

वितरण कैसा होता है।

जमीन जिसकी होती है वह कुछ रुपये लेकर अपनी जमीन दूसरों को लगान पर दे देता है। किसान जमींदारों से लगान पर खेत ले लेते हैं। मेहनत करने वाले मजदूर को अपने श्रम के बदले में मजदूरी मिलती है। रुपया कर्ज देने वाला महाजन कर्जदार से सूद वसूल करता है। इंतजाम करने वाले को वेतन मिलता है। वितरण के अंतर्गत यह अध्ययन करते हैं कि विभिन्न साधनों को क्या हिस्सा मिले और कैसे। और इन सब के बाद जो कुछ बचा रहता है वह साहस करने वाले का मुनाफा कहलाता है। इस प्रकार उत्पन्न किये धन में से पाँच हिस्से किये जाते हैं जिनको लगान, मजदूरी, सूद, वेतन और मुनाफा कहते हैं।

खेती में वितरण

[illegible]रे देश के बहुत किसान ऐसे हैं जिनके पास निज की जमीन नहीं [illegible]र न पूँजी या रकम ही होती है। जमीन तो ये जमींदार से लेते हैं

और पूँजी महाजन से। वे तो केवल मेहनत ही करते हैं। फिर मेहनत करने के लिये भी तो किसान कभी-कभी मजदूरों को लगा लेता है। अक्सर खेत सींचने, काटने इत्यादि के लिए मजदूर नौकर रक्खे जाते हैं। फसल काटने पर जब उपज तैयार होती है तब पहले तो उन्हे जमींदार का लगान चुकाना पड़ता है। इसके बाद जिस महाजन से किसान कर्ज लेकर बीज आदि मोल लाता है और अनाज पैदा होने तक खाता-पीता है, उसे सूद व कर्ज का रुपया अदा करना पड़ता है। यह कोई जरूरी नहीं कि वह कर्ज का सारा रुपया लौटा दे। महाजन तो सूद चाहता है। जब तक उसे सूद का रुपया मिलता जाता है वह कुछ नहीं कहता। इसके सिवा मजदूरों की मजदूरी भी तो किसान ही देते हैं। ज्यादातर फसल तैयार होने के पहले ही वह दे दी जाती है, जहाँ नहीं दी जाती वहाँ फसल में से हिस्सा दिया जाता है। बाकी जो कुछ रह जाता है वह किसान के हाथ लगता है। कहीं-कहीं लगान, सूद और मजदूरी एक ही मनुष्य को मिलती है और कहीं-कहीं भिन्न-भिन्न आदमियों को। जिसकी जमीन है वही यदि पूँजी भी लगाये और मेहनत भी करे तो सब हिस्से उसे ही मिल जायँगे। लेकिन भारत मे ऐसा हाल बहुत कम है। यहाँ की जमीन की मालिक सरकार ही समझी जाती है। अतएव यदि कोई आदमी अपनी ओर से पूँजो व मेहनत दोनों ही लगावे तब भी उसे सरकार को लगान या मालगुजारी देना पड़ता है। और जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, यहाँ के किसानों की पूंजी भी महाजन से उधार लेनी पड़तो है। इससे उन्हे जमीन से पैदा होने वाली सम्पत्ति का केवल मजदूरी और मुनाफे वाला अंश मिलता है। चूँकि उन्हे मजदूरी भी लोगों से करानी पड़ती है, इसलिए उन्हे मजदूरी मे से भी कुछ हिस्सा औरों को बाँट देना पड़ता है।

यह सब करने के बाद शायद ही कुछ बचता हो। फिर मुनाफे की कौन कहे। सरकार लगान और मालगुजारी का बन्दोबस्त हरबार बीस तोस साल मे करती है। लगान इतना बढ़ गया है कि हरसाल हजारों किसानों को लोटा-थाली बेचकर भीख माँगने की नौबत आती है। जब लगान चुकाने में तो बेचारे किसानों की यह हालत होती है तो कैसे कहा जा सकता है कि आजकल किसानों को खेती मे मुनाफा मिलता है। अर्थशास्त्र की दृष्टि

से मुनाफा होना अवश्य चाहिए, लेकिन जिस दशा में हमारे किसान खेती करते हैं उसमे यदि मुनाफा और पूरी मजदूरी न मिले तो कोई ताज्जुब नहीं है।

लगान (Rent)

अस्तु, तुम पूछ सकते हो कि लगान शुरू कब से हुआ और वह किस सिद्धान्त के अनुसार लगाया जाता है। जमीन, खेत, जङ्गल, खान आदि को व्यवहार में लाने के लिये उससे स्वामी को दी जाने वाली रकम को लगान कहते हैं। जमीन पर कब और किसका अधिकार हुआ और कैसे ? शुरू में आदमियों की सख्या कम थी और, उनको देखते हुए जमीन बहुत अधिक थी। अतएव जो जहाँ चाहते खेती करते थे। जितनी जमीन जोतना चाहते थे, जितनी लकडी काटना चाहते थे, जितनी धातु खान से खोदना चाहते थे, सब स्वतन्त्रतापूर्वक कर सकते थे। उन्हे रोकने वाला कोई नही था। उस समय 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाला मामला सब जगह चलता था। इसके बाद जनसख्या जैसे-जैसे बढ़ती गई वैसे ही वैसे भूमि की माँग भी बढती गई। भूमि का क्षेत्र परिमित होने के कारण जिसके अधिकार में जो जमीन आ गई वही उसका मालिक बनने लगा। अब अगर किसी के पास जरूरत से ज्यादा जमीन होती तो उसने उसके उपयोग करने का अधिकार दूसरे को देकर उसके बदले में उत्पत्ति का कुछ हिस्सा लेना शुरू कर दिया। इस हिस्से का नाम ही लगान है।

प्राचीन काल मे जमीन का मालिक राजा नहीं होता था लेकिन राजा खेती करने वालों से उपज का छठा हिस्सा लिया करता था। बस राजा का सिर्फ इतना ही हक था। यह एक तरह का टैक्स (कर) कहा जा सकता है।

लगान दो तरह से निश्चित होते हैं:—एक तो रिवाज के अनुसार, दूसरा चढा ऊपरी से। भारत में कहीं-कहीं रीति-रिवाज के मुताबिक पैदावार का आधा, तिहाई, चौथाई या पाँचवाँ भाग के बराबर लगान लिया जाता है। भारत में चढा-ऊपरी वाली रीति भी प्रचलित है अर्थात् जो सब से अधिक लगान देता है वही जमीन पाता है। **इसके अलावा लगान दो तरह के होते** **एक तो कुल लगान होता है** जिसे बोल-चाल में लगान ही कहते हैं। **आर्थिक लगान होता है।** आर्थिक लगान का हिसाब इस प्रकार

लगाया जाता है कि खेत की पूरी उपज के मूल्य मे से उसकी खेती का सब प्रकार का लागत खर्च निकाल दिया जाता है। बची हुई सारी रकम आर्थिक लगान कहलाती है। कुल लगान मे आर्थिक लगान के अलावा जमीन मे लगे हुये धन का सूद और जमीन के मालिक का मुनाफा भी शामिल रहता है। अब तक भारत में लगान दो प्रकार से वसूल की जाती थी। कुछ प्रदेशों मे किसान से सरकार सीधे लगान वसूल करती थी। इस प्रथा को रैय्यतवारी कहते थे। अन्य जगहो मे जमींदारी प्रथा चालू थी। अब कुछ प्रदेशों मे जैसे, उत्तर प्रदेश, बिहार मे जमींदारी प्रथा का कानून द्वारा अन्त कर दिया गया है। जमीदारी प्रथा में सरकार की ओर से जमीन का इंतजाम जमीदारों के हाथ में रहता है। निश्चित दर के लगान पर किसानों को खेत जोतने का अधिकार दे देते हैं। ऐसी हालत में किसान जमींदार को आर्थिक लगान नहीं देता। उसके बजाय वह किस दर से लगान देता है, वह सरकार पहले से ही निश्चित कर देती है। जमींदार भी किसान से वसूल होने वाली सारी रकम सरकारी खजाने में नहीं जमा करता। उसे जो रकम सरकार को देनी पड़ती है वह मालगुजारी कहलाती है और वह भी सरकार द्वारा पहले से निश्चित कर दी जाती है। यह रकम प्रायः किसानों से मिलने वाले लगान का ४०% या ५०% होता है।

यह जरूरी नही कि दो बराबर क्षेत्र वाले जमीन के टुकड़ों का लगान बराबर हो। उन टुकडों के गुण भिन्न-भिन्न हो सकते हैं, अतएव उनके लगान में भी फर्क होगा। जब आबादी के बढने के अथवा पास से रेल निकल जाने के कारण जमीन की माँग बढ़ जाती है तो लगान भी बढ़ जाता है। जैसा कि पहले बताया गया है भारत में पहले रीत-रिवाज के मुताबिक ही लगान लिया जाता था। जब तक किसान नियम के मुताबिक लगान देता रहता था तब तक उसे बेदखल नहीं कराया जा सकता था। लेकिन फिर आबादी की वृद्धि और उपज के बाजार का क्षेत्र बढने के कारण भूमि की माँग बढ़ गई। इससे लगान सम्बन्धी नियम टूट गया और अब अधिकारी किसानों का लगान बन्दोबस्त के समय सरकार निश्चित करती है।

मजदूरी (Wages)

भारतीय किसान साधारणतया यदि अपनी ओर से कोई चीज लगाता है तो वह उसकी मेहनत है। इसके बदले में उसे मजदूरी मिलनी चाहिये।

लेकिन उसे मजदूरी देने वाला तो कोई होता नहीं, वह स्वयं जो उपज पैदा करता है उसी में उसकी मजदूरी शामिल रहती है। बढई, लोहार आदि जो अपने औजारों से अपनी ही भूमि पर काम करते हैं उन्हे जो मजदूरी मिलती है उसमें उनकी मजदूरी ही नहीं बल्कि जमीन का लगान और औजार में लगे धन का सूद भी मिला रहता है।

अस्तु, आजकल वस्तु बनाने वाले मजदूरों को उनकी बनाई वस्तु नहीं दी जाती। यदि दी जाय तो बडी मुश्किल आ पड़े। यदि मेहनत के बदले मजदूरी के रूप में खान के मज़दूर को कोयला, बिजलीघर के श्रमिक को बिजली, मोटर के हिस्से बनाने वाले को मोटर के हिस्से, जिल्द बाँधने वाले को किताबे ही दी जायॅ, तो उस वस्तु का वह क्या करे? मजदूर को तो अपना पेट पालने के लिये आटा-दाल और पहनने को कपड़ा-लत्ता चाहिए। मजदूरी के बदले कोयला मिलने से उसे हर वक्त और हर जगह पर कोयले के बदले उसकी आवश्यकता की ये वस्तुएँ तो मिल नहीं सकती है। इसलिये आजकल मजदूरों की मजदूरी रुपये पैसे में चुकाई जाती है। इस प्रकार की मजदूरी को **नकद मजदूरी** कहते हैं।

असली मजदूरी और नकद मजदूरी में बहुत अन्तर होता है। मजदूर अपनी मजदूरी के पैसों से खाने-पीने की वस्तुएँ कपड़ा आदि मोल लेता है। यदि मजदूरी के पैसों से वह इन वस्तुओं को अधिक मात्रा में खरीद सकता है तब तो असली मजदूरी अधिक कही जायगी। परन्तु यदि वह अब कम सामान खरीद सकता है तब हम कहेगे कि उसकी असली मजदूरी घट गई। अतः यह कोई जरूरी नहीं है कि नकद मजदूरी बढने से असली मजदूरी भी बढ जाय। आजकल मध्यम श्रेणी की आय ड्योढी दुगुनी हो गई है परन्तु वस्तुओं के भाव चौगुने हैं। अतः उनकी असली मजदूरी घट गई है।

मजदूरों को नकद मजदूरी तो अधिकतर कारखानों में ही मिलती है और यह जोर डाला जाता है कि मजदूरी की रकम इतनी हो कि मजदूर अपना भरण-पोषण कर सकें। भारत में दिन पर दिन जनसंख्या बढती ही जाती है। इसलिये मजदूरों की तादाद बढ़ती जाती है। फलतः आपस में काम पाने के लाग-डाँट चलती है। कारखाने वाले इसका फायदा उठाकर मजदूरी देते हैं। मजदूरी की पूर्ति के सम्बन्ध में जानने योग्य बात यह है कि

यह जल्दी घटती बढ़ती नहीं। नए कारखानों के खुलने पर ज्यादातर मजदूरी और जगह की अपेक्षा चढ़ी हुई ही रहती है। एक बात और है। कारखानों या किसी व्यापारी के दफ्तर में काम करने के लिए मजदूर का पढ़ा-लिखा होशियार और विश्वास-पात्र होना बहुत जरूरी है। हमारे मजदूर अधिकतर पढ़े-लिखे नहीं होते। अतएव वे नहीं जानते कि कहाँ अधिक मजदूरी मिलती है। मजदूरी बाँटने वाले तथा अन्य लोग उन्हें खूब धोखा देते हैं। खेतों में काम करने वाले मजदूरों को, जो कि अधिकतर जिन्स में मजदूरी पाते हैं, बहुत कम मजदूरी मिलती है। फसल काटने के समय उन्हे कुछ ज्यादा मजदूरी मिलती है और उसमें भी उनका पेट नहीं भर सकता, फिर और दिनों की तो बात ही क्या है। अधिकतर बीमारी तथा विवाह के लिए मजदूर उधार लेता है और जब तक ऋण अदा न हो जाय तब तक वह ऋणदाता के यहाँ मुफ्त में या चवैनी पर काम करता है। पुश्त-दर पुश्त गुजर जाते हैं। परन्तु ऋण अदा नहीं होता और ऋणी मजदूर नहीं, गुलाम बना रहता है। इसे दूर करना चाहिये। अस्तु, जैसा कि योरप वगैरह में होता है वैसे ही भारत में भी यह बड़ा जरूरी है कि मजदूरों को इतनी मजदूरी मिले जिनमें उन्हें जीवन की आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त हो सकें। भारत सरकार ने एक नया राज-नियम बना दिया है जिसके अंतर्गत प्रत्येक मजदूर की निम्नतम मजदूरी निश्चित की जायगी।

सूद (Interest)

पूँजी का व्यवहार करने के बदले पूँजीपति को जो कुछ दिया जाता है उसे सूद या ब्याज कहते हैं। सूद के कारण धन बढ़ता है।

सूद के दो भेद हैं—कुल सूद और वास्तविक सूद। साधारण भाषा में जिसे सूद कहते हैं उसी को अर्थशास्त्र में कुल सूद कहते हैं। अगर श्याम ने बारह रुपए सैकड़े सालाना पर एक सौ रुपया उधार लिया तो वर्ष भर का "कुल सूद" बारह रुपया हुआ। इस रुपए को उधार देने में ऋण-दाता का कुछ हिसाब-किताब रखने का व्यय होगा, कुछ रुपया वापिस न मिलने का जोखिम है। अगर इन दोनों बातों का अंश निकाल दिया जाय तो वास्तविक सूद बच जाएगा। हम कह सकते हैं कि वास्तविक सूद केवल पूँजी के व्यवहार का प्रतिफल है।

सूद की दर का निश्चय—पूँजी की माँग और पूर्ति से होता है। अगर पूँजी की माँग अधिक है तो सूद की दर अधिक होगी। अगर पूँजी की माँग कम है और पूर्ति अधिक है तो सूद की दर कम होगी। लेकिन अधिकतर उधार देने वालों की कमी रहती है या यों कह लें कि किसान मजदूर आदि केवल दो एक महाजनों को जानते हैं। अतः उनकी अज्ञानता के कारण उन्हें सूद की दर अधिक देनी पड़ती है। गाँव का महाजन और मिल के पास रहने वाला बनिया महाजन तो अधिकतर सूद की दर दो पैसे से लेकर एक आने फी रुपया प्रति मास तक आसानी से ले लेते हैं। परन्तु जब काबुली उधार देते हैं तो वे दो आने फी रुपया तक सूद लेते हैं क्योंकि वे ज्यादातर अधिक गरीब और गरजमन्द को बिना अधिक पूछ-ताछ के रुपया देते हैं और रुपया न मिलने पर अदालत में जाने की जगह अपने डंडे का भरोसा रखते हैं। सहकारी साख समितियाँ १२-१८ प्रतिशत वार्षिक पर उधार देती हैं क्योंकि उन्हे सस्ती दर पर रुपया मिलता है। इस सम्बन्ध में हम विशेष हाल आगे बताएँगे। प्रादेशिक सरकार भी रुपया उधार देती है और उसकी दर समिति से भी कम होती है। व्यापारी बैंक जैसे इम्पीरियल बैंक ६ प्रतिशत सालाना सूद पर दे देती हैं। उन्हे सहकारी समिति से भी सस्ते पर रुपया प्राप्त होता है। दूसरे व्यापारी बैंक ज्यादातर रुपए वाले व्यापारी को तथा मिल वालों को पूँजी उधार देते हैं। अतः उनके रुपए वापस न मिलने का जोखिम कम रहता है। यह भी बात है कि शहरों में उधार देने वाले बैंकों की कमी नहीं रहती। पूँजी की पूर्ति काफी होने से सूद की दर घट जाती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि सूद की दर माँग और पूर्ति पर निर्भर रहती है।

हमारे किसानों की हालत इतनी खराब रहती है कि उन्हे अपने श्रम का पूरी तौर से बदला भी नहीं मिलता। फसल तैयार होने नहीं पाती कि जमींदार का कारिन्दा, मजदूर, महाजन सब उसे लूटने आ पहुँचते हैं। महाजन उसे बीज खरीदने, बैल मोल लेने आदि कार्यों को रुपया उधार देता है। हमारे महाजन गाँव के अपढ़ किसानों को खूब लूटते हैं। तीस चालीस रुपये देकर पचास के रुक्के पर अँगूठा लगवा लेना तो आसान काम है। सूद की दर पैसे दो पैसे रुपये से लेकर आना दो आना रुपया माहवार तक होती

है। छोटे किसानों का रुपया उधार लिए बगैर काम नहीं चल सकता।

शहरों मे सेठ-साहूकार जायदाद रेहन करके या गहना गिरवी रखकर रुपया कर्ज देते हैं। परन्तु यह जरूरी नही कि रुपया उधार देने के लिए कोई वस्तु गिरवी रक्खी जाय। अक्सर महाजन विश्वासपात्र सज्जनों को हाथ का रुक्का लिखा कर ही रुपया उधार दे देते हैं। कभी-कभी रुक्के मे फेर पड़ने से या उसके खो जाने पर महाजन को असल से भी हाथ धोना पड़ता है। आजकल यदि देखा जाय तो रुपया के लेन-देन के बगैर कुछ काम ही नही चल सकता। विदेशो से करोड़ो रुपये का माल आता है और वहाँ जाता है। व्यापार मे उन्नति करने के लिए यह बड़ा जरूरी है कि उसमें रकम लगाई जाय। व्यापारी के पास पर्याप्त रकम तो होती नहीं। उसे बैंकों से रुपया उधार लेकर लगाना पड़ता है। कहाँ तक बताएँ, सरकार को भी कर्ज लेना पड़ता है। कर्ज में कोई बुराई नहीं समझी जाती। लेकिन यह बात उसी वक्त तक लागू होती है जब कर्ज से होने वाली उन्नति से सूद से अधिक फायदा होता रहता है। लेकिन भारतीय किसान और मजदूर तो फिजूल खर्चो और अनुत्पादक कार्य के लिए भी कर्ज लेते हैं। विवाह-शादी या जन्म-मरण सम्बन्धी रिवाज मे बहुत खर्च कर दिया जाता है। फिर अपने रोजाना खर्च के लिए भी किसान रुपया उधार लेते हैं। यह अनुत्पादक होता है। उनसे सूद का मिलना तो अलग रहा असल का भी खातमा हो जाता है। इसके अलावा किसानों की साख और हैसियत कम होने से उनसे अधिक दर से सूद लिया जाता है। अधिक सूद की दर का यह भी कारण है कि कृषि अनिश्चित है। अतः यह निश्चय नहीं है कि रबी या खरीफ की फसल के बाद रुपया अवश्य वापस मिल जायगा। गिरी अवस्था के कारण हमारा किसान कर्ज में जन्म लेता है, कर्ज में पलता है और कर्ज में मर जाता है।

वेतन

व्यवस्था कार्य के लिए मैनेजर को वेतन मिलता है। आज कल व्यवस्था कार्य करना विशेषज्ञ का काम हो गया है। फलतः अगर मंदी और सस्ती आने पर कारखानों का काम बंद प्राय होता है तब भी मैनेजर मोटी मोटी तनख्वाह डकारते रहते हैं। अमेरिका में ऐसा अक्सर देखा गया है कि जब मजदूर निकाले जाते हैं और उनकी मजदूरी कम की जाती है तब भी

मैनेजर अछूता बचा रहता है। जहाँ तक गाँवों का प्रश्न है, किसान के खाने का व्यय ही नहीं चलता, उसके वेतन और मुनाफे की तो बात ही नहीं उठती।

मुनाफा या लाभ (Profit)

साहस का प्रतिफल मुनाफा या लाभ है। बिना लाभ कोई काम नहीं होता। हमारा किसान ही इससे परे है। कारण वह दूसरा धन्धा नहीं ढूँढता। वह कृषि को व्यापार नहीं वरन् अपना जीवन-क्रम समझता है। तथा वह बाप दादों की भूमि और पेशे को छोड उनकी आत्मा दुखी नहीं करना चाहता। अन्यथा हर व्यापार, उत्पादन कार्य आदि के लिए लाभ अनिवार्य है।

मुनाफे के दो भेद हैं—कुल मुनाफा और वास्तविक मुनाफा। एक व्यापारी सौ रुपए की वस्तु ११० रु० में बेचता है। हम कहेंगे कि उसे १०% का कुल मुनाफा हुआ। परन्तु इस दस रुपए में उसकी पूँजी का सूद, जमीन किराया, बीमे की रकम तथा अप्रत्याशित वृद्धि शामिल है। अप्रत्याशित वृद्धि से हमारा मतलब उस वृद्धि से है जिसका व्यापारी को बिल्कुल ध्यान नहीं था तथा जिसकी उसको पहले से कोई आशा नही थी। कुल मुनाफे में उपर्युक्त अंश निकाल देने पर वास्तविक मुनाफा बच रहता है।

मुनाफा भी साहस की माँग और पूर्ति पर निर्भर है और उन्हीं के द्वारा निश्चित होता है। अगर चीनी के उद्योग खोलने के लिए साहसियो की कमी न हो तो बहुत से चीनी के कारखाने खुल जाएँगे और प्रत्येक साहसी को कम मुनाफा होगा। जहाँ केवल एक दो साहसी होंगे वहाँ वे अधिक लाभ कर सकते हैं। उदाहरणार्थ, भारतीय लोहे के उद्योग मे अधिक लाभ है। यह वास्तविक मुनाफे की बात हुई। अगर हम कुल मुनाफे की दृष्टि से विचार करे तो हम कह सकते है कि उत्पादन व्यय कम होने तथा अधिक दाम वसूल करने से लाभ बढ़ता है। अतः मिल-मालिक उसी मजदूरी मे अधिक काम कराना चाहता है और मजदूरी भी कम करना चाहता है। माल जितनी जल्दी बिकता है उतनी ही बिक्री धिक होती है और मुनाफा भी बढ़ जाता है। अगर बाजार मे प्रतियोगिता कीमत और लाभ घट जायगा। अधिक जमीन तथा मंडी के पास

होने से भी मुनाफा अधिक होता है। बुद्धिमानी और दूरदेशी से प्रबन्ध करने पर भी मुनाफा बढ जाता है।

कुल मुनाफे को दृष्टि से ही हम यह भी कह सकते हैं कि प्रदेश और नगर मे कुछ ऐसे बडे सौदागर होते हैं जो देश के अन्दर और बाहर के भाव का हर वक्त पता लगाये रखते हैं और वे एक ओर से माल खरीदकर दूसरी ओर बेच लेते हैं। बीच का मुनाफा वे खुद खा जाते हैं। कुछ सौदागर जिन्हें आढतिया कहते हैं बनियो या किसानों से माल खरीद कर बड़ी-बड़ी मंडियों में या बन्दरगाहो मे भेज देते हैं। ये लोग अपने काम मे बडे चतुर होते हैं और किसानो तथा बनियों की अज्ञानता से खूब लाभ उठाते हैं। दूकानदारी मे मुनाफे का एक विचित्र ही ढग रहता है। वहाँ पर तो दूकानदार हर एक ग्राहक से मोल करता है, दाम बँधे तो होते नही। एक वस्तु का दाम किसी से चार आना, किसी से साढ़े चार आना या पाँच आना लिया जाता है। ग्राहक जितना ही अबोध होता है उतना ही दूकानदार को अधिक मुनाफा होता है।

आजकल अधिक मुनाफा लेना व्यापार-कुशलता का चिन्ह माना जाता है। जिस मनुष्य को सबसे अधिक मुनाफा होता है लोग उसकी ही नकल करने की कोशिश करते हैं। मुनाफा बढाने के लिये कंपनियाँ अपने नौकरों से कह देती हैं कि यदि किसी निश्चित सीमा से अधिक लाभ हुआ तो इस अधिक लाभ का एक हिस्सा तुमको भी दिया जायगा। इससे मजदूर और दिल लगाकर काम करते हैं, परन्तु याद रखना चाहिए कि अधिक मुनाफा करने से कुछ थोड़े से ही मनुष्यों के पास द्रव्य और रुपया इकट्ठा हो जाता है। इसके विपरीत हमारा उद्देश्य यह होना चाहिए कि हम सब की आवश्यकताओं को पूरा करे। मनुष्य का उद्देश्य सुख-शान्ति प्राप्त करना रहता है। केवल रुपया पैसा से ही आदमी को सुख-शान्ति नहीं मिल सकती। अलग किसी अध्याय में हम जमींदारी प्रथा, किसान का जमींदार से क्या सम्बन्ध रहता है इत्यादि के बारे मे तुम्हें कुछ हाल बताएँगे।

अभ्यास के प्रश्न

१—वितरण का अर्थ उदाहरण सहित समझाइये।

२—लगान का सिद्धान्त समझाइये। अत्यधिक लगान किन दशाओं में लिया जा सकता है?

३—उत्तर प्रदेश मे लगान और मालगुजारी का क्या सम्बन्ध है ?

४—जमीन कितने प्रकार की होती है ? उनके गुणों का लगान से क्या सम्बन्ध है ? जमीन की स्थिति का लगान से क्या सम्बन्ध है ?

५—नई सडकों के बनने, नई रेल की लाइन खुलने, मनुष्य की संख्या वृद्धि इत्यादि का लगान पर क्या प्रभाव पडता है ?

६—अनाज की मूल्य वृद्धि का लगान पर क्या प्रभाव पडता है ?

७—मजदूरी किस सिद्धात के अनुसार निश्चित होती है ? भारत में मजदूरी कम होने के प्रधान कारण क्या हैं ?

८—असली मजदूरी और नकद मजदूरी के भेद उदाहरणों सहित समझाइये ।

९—उत्तर प्रदेश मे मजदूरों को कम से कम कितनी मजदूरी मिलनी चाहिये ?

१०—सूद की दर किस प्रकार निर्धारित होती है ? गॉवो मे सूद की दर अधिक होने के प्रधान कारण क्या हैं ?

११—किस कर्ज के लिए सूद की दर अधिक होती है—उत्पादक कर्ज के लिए अथवा अनुत्पादक कर्ज के लिये ?

१२—अपने गॉव के पॉच किसानों के आय व्यय का कम से कम एक फसल का पूरा हिसाब रखिए और यह पता लगाइये कि प्रत्येक को कितना मुनाफा हुआ । यदि किसी किसान को कुछ भी मुनाफा न हुआ तो उसके न होने के कारणों का पता भी लगाइए ।

१३—लगान खर्च मे कौन कौन सी मदे सम्मिलित की जाती है ?

१४—किन उद्योग-धधों मे अधिक मुनाफा होना है और क्यों ?

१५—बहुत लोगो की यह धारणा हो गई है कि इस प्रदेश मे अधिकाश किसानों को खेतो से कुछ भी मुनाफा नहीं होता । यह कहॉ तक सत्य है ? यदि यह सत्य है तो किसान फिर खेती क्यों नहीं छोड देते ?

६—भारतीय गॉवों में सूद की दर अधिक क्यों है ? उसे घटाने के लिये ा उपाय करिएगा । (१९४३)

१७—गाँव के विभिन्न काम करने वालों को किस प्रकार मजदूरी मिलती है ? मजदूरी के इस ढंग का उनकी कार्य-क्षमता पर क्या प्रभाव पड़ता है ? (१९४४)

१८—लगान का अर्थ समझाइये। गाँव में लगान किस प्रकार निश्चित होता है ? हाल मे किसान को अत्यधिक लगान से बचने के लिए क्या उपाय किए गए हैं ? (१९४५)

१९—(अ) सूद क्यों दिया जाता है ?

(ब) (i) काबुली ३६% सूद पर रुपया उधार देता है।

(ii) सहकारी समिति १२% सूद लेती है।

(iii) बैंक व्यापारियों को ६% सूद पर देती है।

सक्षेप मे समझाइए कि उपर्युक्त सूद की दरों मे अतर क्यों है ? (१९४६)

२०—'मजदूरी' की व्याख्या कीजिए। गाँव का मजदूर कानपुर जाकर अढाई रुपये रोज पर काम नही करता और अपने ही गाँव मे बारह आने रोज पर मजदूरी करना पसद करता है। इसका क्या कारण है ? (१९४६)

२१—(अ) विभिन्न कृषि-मजदूर को भिन्न मजदूरी क्यों मिलती है ?

(ब) यदि कृषि-मजदूर प्रत्येक कृषि कार्य के लिए एक समान योग्य हो, क्या तब भी मजदूरी भिन्न होगी ? (१९४८)

बारहवाँ अध्याय

औद्योगिक मजदूर

गन्दी बस्तियाँ

कारखानो और मिलो मे काम करने वाले तीस चालीस लाख मजदूरों की जिन्दगी मनुष्य की जिन्दगी नही कही जा सकती। मजदूर को अपनी आय का चौथाई से छठवाँ भाग किराये पर व्यय करना पड़ता है। तब भी उसे एक गंदी सी कोठरी मिलती है। इस निवास स्थान मे हवा की गुजर नही होती। यहाँ पाखाने और स्नान का कोई प्रबन्ध नहीं होता। गन्दा

पानी निकलने और बहने के लिए उपयुक्त नालियाँ नहीं होतीं। यहाँ सफाई नहीं की जाती। जो मजदूर अपनी गृहस्थियों के साथ रहते हैं उन्हे उसी कमरे में रहना, सोना, उठना, बैठना, खाना, पकाना आदि की व्यवस्था करनी पडती है। प्रति छोटी कोठरी में पाँच छः प्राणी रहते हैं। वेपर्दगी के कारण मजदूर अधिकतर अकेले रहते हैं। अतः वे जुए, शराब, वेश्यावृत्ति के शिकार बन जाते हैं। रहने वाले साँस के, मूत्र के तथा तपेदिक के रोगों के मरीज बन जाते हैं। बालमृत्यु और मृत्यु संख्या अधिक होती है। इन सब बातों का **मजदूर की कार्य क्षमता पर प्रभाव** पडता है। उत्पादन कम होता है। वे जल्दी-जल्दी देहात भागते हैं ताकि अपने बाल बच्चों के साथ रह आएँ और स्वास्थ्य भी सुधार ले।

औद्योगिक केन्द्रों में मजदूरों को नारकीय जीवन व्यतीत करना पडता है। बम्बई मे जो जॉच हुई है उससे प्रतीत होता है कि वहाँ ६७ प्रतिशत मजदूर एक कोठरी मे रहते हैं और प्रत्येक कोठरी में ६ से ६ तक प्राणी रहते हैं। अहमदाबाद मे ७५ प्रतिशत मजदूर एक कोठरी मे रहते हैं। लगभग यही दशा कानपुर, मदरास तथा कलकत्ता की है। रहने के स्थान की इस कमी का मजदूरों के स्वास्थ्य पर भयकर प्रभाव पडता है। सच तो यह है कि यह केन्द्र बीमारियों के स्थायी अड्डे बन गए हैं और मजदूरों को उनमे नारकीय जीवन व्यतीत करना पडता है। वास्तव मे जिस प्रकार के मकानों मे भारतीय मजदूर रहता है वे मनुष्य के लिए क्या पशुओं के लिए भी उपयुक्त नहीं है। हम नीचे कुछ विशेष किस्म के निवास स्थानों का हाल बताते हैं।

बम्बई

बम्बई मे अधिकाश मजदूर "चालों" मे रहते हैं। चाल कोठरियों की एक लम्बी पक्ति को कहते हैं जिसके सामने एक पतला बरामदा होता है। यह कई मजिल की होती है और एक दूसरे से सटी होती है। दो चाला के बीच में एक गज से अधिक जगह नही होती। इसका परिणाम यह होता है कि नीचे की मजिल तथा ऊपर की मजिलों के बीच की कोठरियों मे हवा और रोशनी नहीं पहुँचती। इन चालों मे शौचगृह नही होते। दो चालों के में जो पतली सी गली होती है वही शौचगृह का काम देती है। इसका यह होता है कि चालों में तेज दुर्गन्ध सदैव बनी रहती है। कोठरियों

की खिड़कियाँ उस गली की ओर ही खुलती हैं जिन्हे दुर्गन्ध के कारण मजदूर बन्द रखते हैं इस कारण कोठरियों मे हवा का प्रवेश नहीं हो पाता। इन चालों का कूडा भी इसी गली मे फेंक दिया जाता है। मलमूत्र और कचरे की सड़ाँद भयंकर दुर्गन्ध उत्पन्न करती है और सारे वायुमडल को दूषित कर देती है।

कलकत्ता

कलकत्ते के समीप मजदूर "बस्तियों" मे रहते हैं। कलकत्ते की ये बस्तियाँ इतनी गन्दी होती हैं कि जिनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। वे गन्दे रोग ग्रस्त बिल हैं जहाँ मानवता सड़ती है। ये बस्तियाँ झोपड़ो की होती हैं। बस्ती का मालिक मजदूर को जमीन दे देता है और बाँस और फूस दे देता है तथा मजदूर स्वयं झोपडा खडा कर लेता है। इन झोपड़ों में हवा और रोशनी के लिए खिडकी या रोशनदान नहीं होते तथा धुआँ निकलने के लिये कोई मार्ग नहीं होता। बस्तियों के आस पास अनेक पोखरे और तालाब होते हैं जिनमें वर्षा का जल सडता है और वे रोगों के कीटाणुओं के जन्म स्थान बन जाते हैं। इन बस्तियों मे स्वच्छ जल की कमी रहती है। दो बस्तियों के बीच में २ फीट चौड़ी गली होती है और उसमे ही बस्ती की गन्दी नाली बहती है। और इन्हीं गन्दी बस्तियों मे मजदूर नारकीय जीवन व्यतीत करता है।

मद्रास

मद्रास में अधिकाश मजदूर "चेरियों" में रहते हैं। मजदूर खाली स्थान पर स्वयं अस्थायी झोपडे या कच्ची पक्की कोठरिया बना लेते हैं और इन्हीं को चेरी कहते हैं। जमीन के मालिक उनसे बहुत अधिक किराया लेते हैं। इनमें नालियाँ नहीं होती और पानी तथा रोशनी का कोई प्रबन्ध नहीं होता। शहर के अत्यन्त गन्दे भाग में होती हैं। ये कोठरियाँ या झोपडे छोटे होते हैं। उनकी दीवारें कच्ची होती हैं और तेल के पीपे की टीन से छाई जाती हैं। यह अत्यधिक गन्दी होती हैं। शौचगृहों का कोई प्रबन्ध नहीं होता इस कारण गन्दगी और भयंकर रूप धारण कर लेती है।

कानपुर

कानपुर मे अधिकाश मजदूर "अहातो" मे रहते हैं। इन अहातों में एक कोठरी और उसके सामने एक बराडे वाले बहुत से मकान होते हैं। प्रत्येक कोठरी मे एक दरवाजा होता है कोई खिडकी नही होती। इनमे हवा और रोशनी का भी समुचित प्रबन्ध नही होता तथा गन्दगी तो हद दर्जे की होती है।

अहमदाबाद

अहमदाबाद मे भी मजदूर मानो नरक मे रहता है। अधिकाश मजदूर एक कोठरी मे रहते हें जिनमे हवा और रोशनी का गुजर नहीं होता। गन्दे तो यह इतने होते हैं कि जिसका कोई ठिकाना नहीं। पानी और शौचगृहों की व्यवस्था बहुत खराब होती है।

कोयले के खानों के केन्द्र

रानीगज, झरिया तथा अन्य कोयले की खानों के केन्द्रों में मजदूर "धोरों" में रहते हैं। इन कोठरियों में ही मजदूर रहते हैं और उन्हीं में वे खाना पकाते हैं। इनकी छते वर्षा में चूनी हैं। इनमें खिडकी या रोशनदान नहीं होते और न वहाँ सफाई रहती है। अधिकाश मजदूर गन्दे तालों के पानी को काम में लाते हैं।

ऊपर के विवरण से यह तो स्पष्ट हो गया होगा कि भारतीय कारखानों के मजदूरों को कैसी गन्दी बस्तियों में रहना पड़ता है। कुछ स्थानों पर कुछ मिल मालिकों ने सुधरी हुई बस्तियाँ बनाई हैं किन्तु वे बहुत कम हैं। हर्ष की बात है कि सरकार का इस ओर ध्यान गया है और मजदूरों के लिये अच्छे मकानों को बनाने का प्रश्न विचाराधीन है।

हमारे कारखाने के मजदूरों की बढती हुई बीमारियों के इलाज का भी तो कोई प्रबन्ध नही है। न कोई यह शिक्षा देता है कि उन्हे किस प्रकार का भोजन करना चाहिये, न उसके खेलकूद का प्रबन्ध है, न मनोरजन या क्लब की व्यवस्था है। परन्तु अब मजदूरों के दिन पलट रहे हैं। इन गन्दी बस्तियों का शीघ्र ही रूप बदल जाएगा।

औद्योगिक सुख-सुविधा

एक जमाना था जब मिलों और कारखानों मे काम करने वालों की दशा परवाह नहीं की जाती थी। न काम करने के घटे का नियत्रण था,

न वेतन का। मुसीबत के दिनों में पैसों का कोई सिलसिला नही रह जाता था। उनकी शिक्षा और उनके स्वास्थ्य की किसी को चिन्ता नही थी। वह कहाँ काम करते हैं, किस प्रकार के वातावरण मे काम करते है, किस प्रकार का काम करते और कैसा जीवन व्यतीत करते हैं, इन सब बातों का किसी को ध्यान नही था।

सरकारी प्रयत्न

परन्तु अब भारत सरकार कारखनों के मजदूरों के लिए उचित सुविधाएँ और वेतनादि प्राप्त करने के लिये वचनबद्ध है। भारत सरकार ने सामाजिक बीमे का कानून बनाया है। मिल मालिक और एक रुपये प्रति दिन से अधिक वेतन पाने वाले मजदूरों से चन्दा लेकर एक कोष स्थापित किया जायगा। जब कोई मजदूर बीमार पड़ेगा तो उसे इस कोष से डाक्टरी सहायता पहुँचाई जावेगी। उसे ५६ दिन तक अपनी मजदूरी भी दी जायगी और अशक्त होने पर सहायता भी की जायगी। नौकरी पर किसी मजदूर की मृत्यु हो जाने पर उसके आश्रितों को पेन्शन दी जाएगी। स्त्रियों को मातृत्व-काल में १२ सप्ताह की छुट्टी मिलेगी और उस काल में इसी कोष से बारह आने प्रतिदिन सहायता मिलेगी?

इसी प्रकार कारखाना-कानून मे संशोधन किया गया है। अब मजदूरों को अधिक स्वास्थ्यप्रद, साफ सुथरी और अधिक सुरक्षित परिस्थिति में काम करने को मिलेगा। उन्हें सवेतन छुट्टी भी मिलेगी। अब तक मिलों में मजदूरों को ठेकेदारों के द्वारा नौकरी मिलती थी। यह ठेकेदार उन्हें लूटता था। अब सरकार नौकरी दिलाऊ केन्द्रों को स्थापित कर रही है। ये केन्द्र बिना किसी से फीस लिये मजदूरों को नौकरी दिलाते हैं। मजदूरों के लिये प्रावडेंट फंड की व्यवस्था की जा रही है।

मजदूरों के लिये उपयुक्त मकानों की व्यवस्था करने के लिये भी सरकार कानून बना रही है। इस समय भारत सरकार दस लाख मजदूर घरों को बनाने की एक योजना चला रही है। कोयले की खान में काम करने वाले मजदूरों के लिये पचास हजार मकान बनाना आरम्भ हो गया है।

भारत सरकार मजदूरों के वेतन के सम्बन्ध मे भी एक न्यूनतम वेतन कानून बनाया है। इसके अन्तर्गत सरकार यह निश्चय कर देगी कि किस काम के लिए कम से कम कितनी मजदूरी दी जाय। इसी कानून मे खेती मे काम करने वाले मजदूरो की मजदूरी निश्चित करने की भी व्यवस्था है।

मिल मालिकों के प्रयत्न

अब मिल मालिक भी मजदूरों की सुख-सुविधा का कुछ ध्यान रखने लगे हैं। कुछ मिले मजदूरों के लिये मकान बनवाती हैं जिससे मजदूर अपने बाल-बच्चों के साथ रहता भी है और गैर हाजिर भी कम रहता है। कहीं-कहीं बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध है और मजदूरों के लिये रात्रि-पाठ-शालाएँ, मनोरञ्जन और व्यायाम के लिए अखाडे, व्यायाम-शालाएँ आदि का इतजाम करते हैं। कुछ मिलों मे दवा भी मुफ्त बाँटी जाती है।

अन्य सस्थाओं के प्रयत्न

अन्य संस्थाओं मे मजदूर सघ मुख्य हैं। हम उनके बारे मे नीचे बतायेंगे। इन्हे छोड कर कुछ स्थानो मे समाज सेवा सघ, सरवेन्ट ऑफ इडिया सोसायटी, बाल-सुख-संघ आदि शिक्षा, औषधि, जच्चा-बच्चा की सेवा का प्रबन्ध करती हैं। वे प्रचार द्वारा शराब खोरी, जुआ आदि बुराइयों को दूर करने के लिये भी प्रयत्न करते हैं। कही-कही बनियों और महाजनों से बचाने के लिए सस्ते अन्न, चाय आदि की दूकानें भी खोली गई हैं।

ट्रेडयूनियन

भारतीय ट्रेड यूनियन कानून के द्वारा मजदूरों का यह अधिकार दिया गया है कि वे अपने सघ (ट्रेड यूनियन) बनाएँ। ये इन संघों के द्वारा कारखानेदारों से सामूहिक ढग पर सौदा कर सकते हैं।

भारत में अभी तक ट्रेड यूनियनों की संख्या कम है। लगभग तीन चौथाई ट्रेड यूनियन छोटी-छोटी हैं। रेल, कपडे की मिलों और मल्लाही सम्बन्धी काम करने वाले मजदूरों की ट्रेड यूनियन सबसे अधिक हैं। ट्रेड-यूनियनों के लगभग दो तिहाई सदस्य इन्ही तीन क्षेत्रों मे काम करते हैं।

उद्योग धन्धों मे मजदूरों के जो सघ बनते थे उन्हे अधिकतर मिलमालिक मानते थे। सरकार भी इस ओर चुप रहती थी। परन्तु जैसा ऊपर

बताया जा चुका है, अब सरकार ने इन संघों को कानूनी रूप देने का निश्चय कर लिया है।

परन्तु हमारी ट्रेड यूनियनों मे अक्षमता भरी पड़ी है। हमारे मजदूरों की शिक्षा-दीक्षा तो नहीं के बराबर रहती है। अतः ट्रेड यूनियन की नेतागिरी कुछ पढ़े लिखे लोगों के हाथ मे होती है। मजदूर उन्हीं के इशारे पर नाचते हैं। शीघ्र प्रसिद्धि प्राप्ति के लालच मे ये नेतागण मजदूरों को तरह तरह के लाल दे देते हैं, और फिर उसकी पूर्ति के लिए वे उन्हे हड़ताल करने के लिए उकसाते हैं, हड़तालों के कारण उत्पादन घट जाता है और वस्तुओं की उत्पत्ति कम होती है। आजकल हमारे आजाद देश में मिल के तैयार माल की जो कमी है उसका एक महत्वपूर्ण कारण हमारी ट्रेड यूनियनें कही जा सकती हैं। उनके कारण ही मजदूरों मे अधिक वेतन माँगने और धीरे-धीरे काम करने की प्रवृत्ति बढ रही है। इस समय तो यह जरूरी है कि मजदूर नेता मजदूरो को समझा कर हड़ताले रोके और उन्हे अधिक उत्पत्ति के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित करे।

ट्रेड यूनियने मजदूरों को नकारात्मक ढग से तो सहायता करने का प्रयत्न करती हैं परन्तु रचनात्मक ढग से कोई काम नही करती। उदाहरणार्थ मजदूरी की कमाई ऋण चुकाने और बनिए को दाम देने मे उड जाती है। ट्रेड यूनियनों का कर्त्तव्य है कि वे मजदूरों की अपनी दूकाने खोले ताकि वे बनियों के चगुल से बच सके। मजदूरों को वर्तमान व्यय मे अधिक सामान दिलाने का कोई प्रयत्न नहीं किया जाता। इसी प्रकार मजदूरों की ओर से ट्रेड यूनियनों को मकान मालिकों से मोर्चा लेना चाहिए जो अधिक किराया ले कर तग और गन्दी बस्तियों मे रहने पर बाध्य करते हैं। परन्तु ट्रेड यूनियने ऐसे काम नहीं करती। कहा जाता है कि यदि उनके नेता इस प्रकार मजदूरों की कठिनाइयाँ हल कर दे तो उनकी पूछ कम होगी। उनकी नामवरा नहीं होगी। उनके नाम और उनके वक्तव्य समाचार पत्रों मे स्थान नहीं पायेगे। यदि ऐसा है, तो उनका ख्याल गलत है। देश में सच्चे चुपचाप कार्य करने वाले व्यक्ति का नाम धीरे-धीरे फैल जाता है। सब उनको जानने लगते हैं। यह प्रसिद्धि अधिक टिकाऊ होती है। कम से कम देश को इसी प्रकार के काम करने वालों की आवश्यकता है।

हमारी ट्रेड यूनियनो मे धन की भी कमी रहती है । आय-व्यय का कोई हिसाब नही रक्खा जाता । मेम्बरों की कोई पूरी सूची नही रहती । अतः हडताल के दर्मियान मजदूरों को अधिक सहायता नही पहुँचाई जा सकती और अधिकतर हडताले असफल साबित होती हैं ।

भारतीय ट्रेड यूनियनों की निर्बलता के कारण

मजदूर आन्दोलन की निर्बलता के मुख्य कारण नीचे लिखे हैं :—

१—मजदूरों का अशिक्षित होना, वे मजदूर सगठन से होने वाले लाभ को नहीं समझते ।

२—औद्योगिक केन्द्रों मे मजदूर एक भाषा नही बोलते । उनकी भाषा भिन्न होती है क्योंकि वे भिन्न-भिन्न प्रदेशों से आते हैं । इस कारण उनका संगठन अच्छा नहीं हो पाता ।

३—मजदूर अत्यन्त निर्धन होते हैं वे चन्दा इत्यादि देने मे रुचि नहीं दिखाते ।

४—भारत में औद्योगिक केन्द्र बिखरे हुये हैं वे एक दूसरे से बहुत दूर हैं इस कारण उनको सगठित करने की उतनी सुविधा नहीं है ।

५—भारतीय मजदूर स्थायी रूप से औद्योगिक केन्द्रों में काम नही करते । वे कुछ समय काम करके फिर अपने गाँवों को लौट जाते हैं इस कारण वे मजदूर आन्दोलन मे अधिक दिलचस्पी नहीं लेते ।

६—मजदूर आन्दोलन का योग्य हाथों मे न होना ।

आज भारतीय मजदूर आन्दोलन राजनैतिक नेताओं के हाथ मे है । कुछ मजदूर यूनियनें कम्यूनिस्टों के हाथ में हैं । कुछ सामाजवादियों के हाथ मे और कुछ कांग्रेस के हाथ मे हैं । ये मजदूर नेता अपने दल के स्वार्थ से मजदूरों मे कार्य करते हैं उनके हितों का इतना ध्यान नही रखते ।

अभ्यास के प्रश्न

१—भारतीय मजदूर किस दशा मे रहता है, उसका सक्षिप्त विवरण दीजिए ।

२—भारत के किन्ही दो औद्योगिक केन्द्रों मे मजदूर के रहने के स्थानों का वर्णन कीजिए और बतलाइए कि उसका उनके स्वास्थ्य पर कैसा प्रभाव पडता है ।

३—भारतीय मजदूर के लिए सरकार ने कानून बनाकर कौन सी सुवि-
धाये प्रदान की हैं।

४—भारतीय ट्रेड यूनियनों (मजदूर सभाओं) का सक्षिप्त विवरण
दीजिए।

५—भारतीय ट्रेड यूनियने सुसगठित क्यों नहीं हैं ? उनकी निर्बलता के
क्या कारण हैं, लिखिए ?

तेरहवाँ अध्याय

बटाई प्रथा

पिछले अध्याय मे तुमको धन के वितरण के बारे मे बताया गया था। लगान का जिक्र करते समय जमीदार प्रथा, स्थाई बन्दोबस्त आदि का थोड़ा सा हाल लिखा गया था। लगान के इन विभिन्न बन्दोबस्तों तथा जमीदार और किसान के सम्बन्ध के बारे मे हम अगले अध्याय मे खुल कर हाल लिखेगे। सरकार जमीन जमींदार के सुपुर्द कर देती है। इसके बदले मे जमीदार सरकार को मालगुजारी देने के लिए बाध्य हो जाते हैं। सरकार को अधिकतर मालगुजारी से ही मतलब रहता है। जमींदार को इस बात की स्वतन्त्रता रहती है कि वह जिस प्रकार चाहे उस प्रकार उन खेतों को काम मे लावे। चाहे वह स्वय मजदूर लगा करके जमीन जोते बोवे और फसल पैदा करे चाहे वह लगान के ऊपर उस जमीन को किसान को उठा दे। जमीन को लगान पर देने से जमीदार को किसान से एक निश्चित दर से रुपया मिलता है। यह दर खेत के क्षेत्र के हिसाब से होती है जैसा कि पिछले अध्याय में बताया गया था। सरकार द्वारा यह निश्चित कर दिया जाता है कि जमींदार किसी खेत से किसी निश्चित रकम से (जो भी ठीक हो जाय) अधिक लगान नहीं ले सकता। किसान जमींदार को यही लगान देकर रह जाता है। लगान पर दी गई जमीन के जोतने-बोने का सारा खर्च किसान के ऊपर रहता है। जमींदार को उससे कोई मतलब नही रहता। किसान अपना हल-बैल लावे, अपनी ओर से मेहनत, धन

तथा बीज आदि लगावे । चूँकि जमींदार को केवल लगान से मतलब रहता है, अतएव उसको इस बात की चिन्ता नहीं रहती कि किसान के खेत मे कितना अनाज पैदा होता है ।

बटाई प्रथा क्या है ?

ऊपर बताई गई प्रथा के अलावा एक और रीति है। जमींदार या मौरूसी किसान अक्सर अपनी जमीन किसान को इस शर्त पर जोतने बोने के लिए दे देते हैं कि वे उनसे नकद लगान लेंगे नही परन्तु पैदा होने वाली उपज का एक हिस्सा ले लेंगे । इसको बटाई-प्रथा कहते हैं। अधिकतर जमींदार कुछ जमीन तो स्वय जोतते-बोते हैं, कुछ बटाई पर किसानों को दे देते हैं । लेकिन आमतौर पर जमींदार जमीन को बटाई पर देना पसन्द नहीं करते । इसका कारण हम आगे चलकर बतायेंगे । बटाई पर जमीन देने से पहले जमींदार और किसान आपस मे तय कर लेते हैं कि हल, बैल, बीज आदि कौन देगा ? यदि ये सब चीजे किसान लगाता है तो जहाँ तक होता है आधा-आधा हिस्सा तय होता है अर्थात् यदि दो सौ मन अनाज पैदा होगा तो सौ मन अनाज जमींदार ले लेगा । कहीं-कहीं जमीदार किसान को बीज दे देता है । कभी हल-बैल भी मिल जाते हैं । ऐसी हालत में जमींदार पैदावार का दो तिहाई हिस्सा ले सकता है ।

बढई की दर

वैसे तो बटाई-प्रथा के अन्तर्गत किसान को मालगुजारी नहीं देनी पड़ती । लेकिन कुछ जगहों मे ऐसी भी शर्त रक्खी जाती है कि मालगुजारी कौन देगा । यदि किसान मालगुजारी भी देता है तो जमींदार का हिस्सा केवल चौथाई भो रह सकता है । बटाई प्रथा मे उत्तर प्रदेश में अधिकतर आधा हिस्सा कर लिया जाता था। लेकिन जैसा कि पहले भी बताया गया है यह जरूरी नहीं है कि आधा हिस्सा ही लिया जाय। जमीन की हालत के ऊपर भी हिस्सा निर्भर रहता है । उदाहरण के लिए जमीदार के पडी हुई बेकार जमीन को ले लीजिए । कुछ जमीन परती पडी रहती कुछ ऊसर होती है । किसी जमीन के साथ उससे लगा हुआ ताल

तलैया भी दे दिया जाता है। इसके अलावा जिस जमीन में खेती होती है उसके किनारे कुछ बेकार जमीन पड़ी रहती है। जमींदार अक्सर ऐसी जमीन बहुत कम बटाई पर किसानों को देते हैं। जब ऊसर या बेकार पड़ी जमीन किसान को दे दी जाती है तब लगान लिया जाता है। वह जमीन उसे मुफ्त मे जोतने-बोने को मिल जाती है। किसान मेहनत-मजदूरी लगा कर उस जमीन मे खेती करता है और जो कुछ पैदा होता है उसे अपने काम मे लाता है। लेकिन साल दो साल के बाद जमींदार अपना हक जाहिर करता है। जमीन तो अब उपजाऊ बन गई और दूसरे लोग उपज का कुछ हिस्सा देकर उस जमीन को लेने के लिए तैयार हो जाते हैं। अतएव जिस किसान ने उस जमीन मे पहले-पहल खेती की है वह जमींदार को उपज का एक हिस्सा देने पर मजबूर हो जाता है, हालाँकि यह बात जरूर है कि आरम्भ में यह भाग बहुत छोटा रहता है। किसान जमींदार को चौथाई या तिहाई भाग देने लगता है।

यों तो मामूली जमीन और बेकार जमीन ही अधिकतर बटाई पर दी जाती है। परन्तु कभी-कभी उपजाऊ भूमि भी बटाई पर उठाई जाती है। आमतौर पर अच्छी व उपजाऊ जमीन लगान तय हो जाने पर बटाई के ऊपर उठाई जाती है।

हिस्से पर मामला तय करे। परन्तु जैसा कि हम पहले बता आये हैं मामले तय होने में माँग और पूर्ति का हाथ रहेगा। यदि शंकर को खेती करने की गरज है तो वह रामू को शायद दो तिहाई तक दे देवे। परन्तु इसके विपरीत यदि फसल के बीच किसी कारण रामू अपना खेत किसी दूसरे को देना चाहता है तो शायद रामू को आधा हिस्सा भी मिलना मुश्किल हो जाय।

बटाई प्रथा के गुण-दोष

जैसे और बातों मे गुण-दोष होते हैं वैसे ही बटाई प्रथा मे कुछ अच्छाइयाँ भी हैं और बुराइयाँ भी। यदि किसान की दृष्टि से देखा जाय तो बटाई-प्रथा लगान प्रथा से कहीं बेहतर है। लगान पर ली हुई जमीन में उपज हो या न हो किसान को लगान तो देना ही पड़ता है। किसान यदि बहुत रोया-गाया तो कुछ माफी मिल जाती है। परन्तु बटाई पर दी हुई जमीन में तो किसान और जमींदार दोनों ही आपस में पहले से तय किये हिस्से में उपज बाँटते हैं। यदि अनावृष्टि या अन्य किसी कारण से किसी साल फसल मारी जाती है तो किसान जमींदार को बाकी फसल का हिस्सा देता है। इसी तरह यदि फसल बहुत अच्छी है तो किसान के साथ जमींदार को अधिक मात्रा में फसल मिल जाती है। परन्तु इसके अलावा कुछ ऐसे फायदे भी हैं जिन्हे किसान उठा सकता है। जैसे यदि किसान के पास हल बीज न हों तो वे जमींदार से मिल सकते हैं। इस प्रथा में जमींदार को अलग नुकसान ही नुकसान दिखलाई पड़ता है। फसल खराब होने पर उसे किसान से ज्यादा दाम तो मिलता नहीं है। अतएव उस समय उसे अपनी गाँठ से मालगुजारी देनी पड़ती है।

इसके अलावा बटाई प्रथा के अन्तर्गत जमींदार को रुपये तो मिलते नहीं। उसे अनाज मिलता है। यहाँ पर भी किसान को फायदा ही रहता है। मान लो खेत मे सौ मन अनाज पैदा हुआ। मान लो किसान अपने खाने-पीने के लिए दस मन अनाज रख कर नब्बे मन बेच देता है और फिर जमींदार को लगान के रुपये दे देता है। परन्तु यदि किसान ने खेत आधे हिस्से की बटाई पर लिया होता तो किसान को पचास मन अनाज मिलता। इस पचास में से उसे अब केवल चालीस मन अनाज बेचने की

तकलीफ उठानी पड़ेगी और जमींदार को पचास मन अनाज बेचना पड़ेगा। ऐसी दशा मे एक बात और होती है। यदि कहीं फसल के बाद अनाज का बाजार भाव गिर जाय अर्थात् सस्ता बिकने लग जाय तो जमींदार को और घाटा होता है क्योंकि चढ़े हुए भाव से बेचने पर उसे जो रुपये मिलते हैं उतने रुपये अब नही मिल सकते। इसके अलावा किसान कुछ नाजायज फायदे उठा सकता है। जैसे कुछ बेईमान किसान रात में या जमींदार की गैरहाजिरी में अनाज काट लेते हैं या काटा अनाज खलिहान से अपने घर उठा लेते हैं। इसके अलावा यह तो मामूली बात है कि बँटवारा होते समय यदि जमींदार या उसका आदमी नहीं पहुँचता तो किसान अपने घर अधिक माल उठवा देता है।

बटाई प्रथा विधवाओं, नाबालिगो व उन व्यक्तियों की दृष्टि से भी अच्छी है जो विशेष कारणवश स्वयं खेती नही कर सकते और जो अधिकतर मजदूर रखकर खेती नहीं करा सकते।

परन्तु बटाई-प्रथा के तीन मुख्य दोष हैं। प्रथम बटाई वाले किसानों को अधिकतर खेत मे कोई हक नहीं प्राप्त होता। यह जरूर है कि जिस प्रकार उत्तर प्रदेश मे लगभग प्रत्येक खेतिहर को कम से कम लगातार पाँच साल तक खेती करने का हक मिल गया है वैसे ही हक दूसरी जगह भी दिये जायँ। सन् १६४० के बंगाल कमीशन ने बङ्गाल प्रान्त के बटाई पर खेती करने वाले बरगादार किसानों के लिये ऐसी ही सिफारिश की थी।

द्वितीय, बटाई प्रथा में किसान अपनी मेहनत द्वारा उपज मे जो वृद्धि करता है उसका केवल एक भाग उसे मिलता है। किसान को उपज बढ़ाने में उत्साहित करने के लिये यह आवश्यक है कि ऐसी वृद्धि मे जमींदार का हिस्सा न हो।

तृतीय, कहीं-कहीं लगान पर खेती करने वाले किसानों की अपेक्षा बटाई पर खेती करने वाले किसानों की हालत अच्छी नहीं है। उदाहरण के लिये बंगाल मे बटाई की दर आधी उपज है। यदि यह घटाकर एक तिहाई भी कर दी जाय तब भी उन्हें इस प्रकार जितना लगान पड़ेगा वह खेतों के मालिक को देन का साढ़े पाँच गुना होगा। अतः यह आवश्यक है कि बटाई की दर घटा कर उपज का चौथाई या पाँचवाँ हिस्सा कर दिया जाय।

अतः इस समय बटाई प्रथा के कारण देश की उर्वरता नहीं बढ पाती। इसलिए अनुपयुक्त रूप में होने के कारण बटाई प्रथा देश के हित मे रुकावट पैदा करती है।

मजदूरी सम्बन्धी बटाई

अब तक हमने जिस बटाई का हाल बताया है उसके अलावा गॉव में एक और बटाई होती है। यह बड़ा जरूरी है कि इस दूसरी बटाई को भी स्पष्ट कर दिया जाय। यह दूसरी बटाई भी खलिहान में ही होती है; परन्तु इसके हिस्सेदार बनिये, ब्राह्मण, नाई, चमार, धोबी, बढई, लोहार आदि गॉव के काम करने वाले होते हैं। भारतीय गॉवों में यह रिवाज है कि ये लोग साल भर किसानों को जिस वस्तु की जरूरत होती है देते रहते हैं। तेल की जरूरत पडने पर तेली को तेल देना पडता है। मतई का जूता फट जाने पर हामिद उसके लिये दूसरा जूता बना देता है। धोबी सब घर वालों के कपडे धोता है। वह हर एक बडे आदमी या औरत के पीछे चार-पॉच पसेरी अनाज लेता है। उसे छोटे बच्चों का कुछ नहीं मिलता। इसी प्रकार लोहार, बढई आदि कारीगर भी गाँव भर की सेवा करते हैं और फसल तैयार हो जाने पर हर एक के खलिहान से अपने-अपने हिस्से का अनाज ले आते हैं। इन लोगों के साथ हमे खेती में काम करने वाले मजदूरों को नहीं भूल जाना चाहिये। इन्हे अधिकाश मजदूरी काम करने के साथ ही साथ रोजाना मिलती जाती है क्योंकि इनको तो रोज ही खाने के लिये अन्न चाहिये। परन्तु फिर भी फसल के समय कुछ मजदूर फसल तैयार हो जाने पर नाज मिलने की शर्त पर लगाए जाते हैं। कुछ मजदूर पैसों पर काम करते हैं। परन्तु उन्हे भी फसल में से कुछ मिल जाता है। फसल कट जाने पर किसान ऐसा खुश रहता है कि उस समय उसके पास जो पहुँच जाये उसे ही कुछ न कुछ मिल जाता है।

अस्तु, अब समझ मे आ गया होगा कि इस बटाई और पहले बताई हुई बटाई में क्या फर्क है। पहली बटाई तो लगान का एक रूप-मात्र है। फर्क यही है कि लगान मे आमतौर पर कमी नही की जाती और फसल मे होने ली घट-बढ का किसान ही जिम्मेदार होता है, परन्तु बटाई मे किसान ५ जमीदार भी कुछ अश मे उसके सुख-दुख का साथी बनता है।

दूसरी किस्म की बटाई मे किसान उन सब कारीगरों और काम करने वाले मजदूरों की मजदूरी चुकाता है, जो बिना कुछ लिए साल भर किसान की सेवा करते हैं तथा उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। पहली भाँति की बटाई का अन्न लगान है, तो दूसरी मे दी हुई उपज मजदूरी और कोमन स्वरूप है।

बटाई और रीति-रिवाज

ऊपर बताई बटाई-प्रथाओं की दर में दस्तूर और रीति-रिवाज का बहुत कुछ असर पडता है। यदि यह दस्तूर चला आ रहा है कि सोहनसिंह कुएँ के पास वाले खेत को उठाने मे किसान से दो-तिहाई हिस्सा लेता है तो चाहे इस साल रामू खेत को ले चाहे पारसाल श्याम उस खेत को ले, सोहनसिंह का उस खेत मे दो-तिहाई का हिस्सा रहेगा। इसी प्रकार यदि किसी खेत के साथ सोहनसिंह बीज भी देता है तो उसे दस्तूर के मुताबिक उस खेत को लेने वाले को बीज देना ही पडेगा। इसी प्रकार धोबी, चमार, मेहतर आदि के हिस्सों के बारे में भी दस्तूर और रीति-रिवाज का बोलबाला रहता है। वंश परम्परा से धोबी को छोटे बच्चों और विधवाओं के पीछे कुछ भी अन्न नहीं मिलता। इसी प्रकार आदमी पीछे गाँव के धोबी को चार पंसेरी अनाज मिलता है, उस दर में भी कोई परिवर्तन नहीं होता। कहने का मतलब यह है कि रीत-रिवाज के इस प्रभाव के कारण गाँवों के आदमियों के हिस्सों की दर बहुत पीढ़ियों तक स्थायी बनी रहती है। इससे महँगी और सस्ती के समय गाँव वालों की आर्थिक दशा पर बहुत बड़ा असर पडता है। महँगी के समय में गरीब किसानों की हालत गिर जाती है। परन्तु लोहार, चमार आदि के जीवन में कुछ दिनों तक कोई प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता। भिन्न-भिन्न काम करने वालों की क्षमता मे कुछ न कुछ अन्तर होता ही है। यदि उनकी कार्य-क्षमता एक सी हो, तब भी मजदूरी में अतर रहेगा; क्योंकि उनकी मजदूरी अधिकतर रीति-रिवाज पर निर्भर है।

अन्तु, जैसा हम आरम्भ में कह चुके हैं अगले अध्याय में हम सरकार और किसानों के सम्बन्ध मे कुछ बाते बतायेंगे। सरकार किस प्रकार किसानों से लगान की दर निश्चित करती है? क्या सरकार हमेशा जमींदार के

जरिये किसान से मालगुजारी वसूल करती है या कहीं पर किसान से सीधे वसूल करती है ? जमींदार सरकार को लगान का कौन सा भाग देते हैं ? जमींदार और किसानों के बीच आजकल कैसा सम्बन्ध है ? इन प्रश्नो मे उत्तरो के अलावा खेती सम्बन्धी कागजातों के बारे मे भी कुछ बाते बताई जावेगी।

अभ्यास के प्रश्न

१—बटाई प्रथा आप के गाँव मे कहाँ तक प्रचलित है ? आप पटवारी द्वारा यह पता लगाइये कि गत वर्ष कितने खेत बटाई पर किसानों को दिये गये थे।

२—आप के गाँव मे बटाई की दर साधारणतया क्या है ? इनसे अधिक दर किन दशाओं में ली जाती है ? रीति-रिवाज का इस दर पर क्या प्रभाव पड़ा है ?

३—बटाई पर जोते जाने वाले खेतों की फसल की तुलना उन खेतों की फसल से कीजिये, जिनमे खेतों के मालिक ने स्वय खेती की है। किन खेतों मे फसल अधिक अच्छी होने की आशा की जाय और क्यों ?

४—अपने गाँव मे जाकर यह पता लगाइये कि फसल तैयार हो जाने पर किसानों को हल पीछे नाई, धोबी, बढई, पुरोहित, चमार, कुम्हार इत्यादि को कितना अनाज प्रतिवर्ष देना पड़ता है।

५—बटाई प्रथा के गुण-दोष समझाइये और यह बतलाइये कि उसके दोष किस प्रकार दूर किये जा सकते हैं ?

६—'बटाई प्रथा में बेईमानी की बहुत गुञ्जाइश है' यह कथन कहाँ तक सत्य है ?

७—'बटाई प्रथा किसानों के लिए लाभदायक, परन्तु देश के लिए हानिकारक है,' इस कथन की आलोचना कीजिए।

८—इस प्रदेश के गाँवों में रीति-रिवाज का लगान, मजदूरी और सूद की दर पर क्या प्रभाव पड रहा है ?

९—विभिन्न कृषि-मजदूर को भिन्न मजदूरी क्यो मिलती है ? यदि प्रत्येक कृषि-मजदूर प्रत्येक कृषि-कार्य के लिए एक समान योग्य हो, क्या तब मजदूरी भिन्न होगी ?

चौदहवाँ अध्याय

जमींदार और किसान

लगान के सम्बन्ध मे लिखते समय देश में प्रचलित बन्दोबस्तों का जिक्र आया था। अब हम इन बन्दोबस्तों, जमींदारों तथा किसानो के आपस के सम्बन्ध व खेती के कागजात के बारे में विस्तारपूर्वक विचार करते हैं।

स्थायी बन्दोबस्त

सन् १८६० के लगभग बंगाल के गवर्नर लार्ड कार्नवालिस ने सरकार की ओर से भारत के कुछ भागों मे मालगुजारी को रकम हमेशा के लिए निश्चित कर दी। यह रकम किसानों से वसूल किये जाने वाले लगान की नब्बे फी सैकड़ा थी। इस बन्दोबस्त से सरकार को बँधी हुई रकम मिलने लगी और फिर हर साल झंझट से छुट्टी हो गई। इसके अलावा सोचा गया कि हमेशा के लिए बन्दोबस्त हो जाने पर जमींदार किसान की पढ़ाई-लिखाई, तन्दुरुस्ती, सफाई आदि का इन्तजाम करेंगे। लेकिन स्थायी बन्दोबस्त हो जाने की वजह से खेती मे उन्नति होने पर सरकार की आमदनी नहीं बढ़ सकती थी। सन् १८०० से जमीन की पैदावार बहुत बढ़ गई है तथा जमींदार लगान के रूप में किसानों से उस समय की बनिस्बत अब कई गुना रुपया वसूल कर रहे हैं। लेकिन सरकार को एक पाई ज्यादा नहीं मिल सकती, यद्यपि आजकल देश की उन्नति तथा भलाई करने के लिये रुपये की बड़ी जरूरत है। दूसरे कुछ जमींदार दयालु और परोपकारी अवश्य हैं, लेकिन जो आशा की गई थी कि ऊपर बनाए बन्दोबस्त के बाद वे लोगों की शिक्षा, स्वास्थ्य आदि की उन्नति करेंगे वह बिलकुल पूरी नहीं हुई। अस्तु, स्थायी बन्दोबस्त बंगाल, बिहार तथा उत्तर प्रदेश के बनारस डिवीजन में चालू है।

बंगाल का फ्लाऊड कमीशन

१६४० में बंगाल सरकार ने श्री फ्लाउड महोदय की अध्यक्षता में वहाँ की जमीन के बन्दोबस्त के सम्बन्ध में एक जाँच कमीशन बिठाया था। इस कमीशन की राय यह है कि बंगाल में स्थाई बन्दोबस्त से भूमि के प्रबन्ध और खेती में कोई सुधार नहीं हुआ। जमींदारों ने, जैसी

जाती थी कि वे अपनी जमीदारियों की उन्नति की ओर ध्यान देंगे, ऐसा कुछ नही किया और उस प्रथा से किसानों की बहुत हानि हुई। वे भी भूमि तथा खेती की उन्नति नहीं कर पाते, साथ ही प्रादेशिक सरकार को एक बहुत बडी हानि यह हुई कि उसकी मालगुजारी (Land Revenue) से होने वाली आमदनी सदैव के लिए निश्चित हो गई। वह कभी भी बढाई नहीं जा सकती। कमीशन का अनुमान था कि अगर आज के हिसाब से बगाल में मालगुजारी लगाई जावे तो बगाल सरकार को कई करोड रुपये का लाभ हो। अतएव कमीशन की राय थी कि बगाल में जमींदारी प्रथा नष्ट कर दी जाये और स्थायी बन्दोबस्त तोड दिया जावे। सरकार जमीदारों को बदले में रकम देकर उनसे जमींदारी ले ले।

अस्थायी बन्दोबस्त

भारत की अन्य जगहों मे अस्थाई बन्दोबस्त है, अर्थात् वहाँ पचीस या तीस साल के लिए मालगुजारी निश्चित की जाती है। इसके बाद फिर से जमीन की देख-भाल की जाती है तथा उपज की जाँच करके मालगुजारी ठीक की जाती है। ज्यादातर यह देख गया है कि हर नए बन्दोबस्त के साथ मालगुजारी का भार बढता ही रहता है। ये अस्थाई बन्दोबस्त कई तरह के हैं। बम्बई, मद्रास आदि प्रदेशों में रैय्यतवारी रिवाज चालू है। इसमे सरकार सीधे किसान से लगान वसूल करती है। किसान और सरकार के बीच में कोई जमीदार नहीं होता। बम्बई या मद्रास मे तीस साल मे बन्दोबस्त होता है। रैय्यतवारी के अलावा महालवारी प्रथा होती है। यह मध्य प्रदेश के कुछ भागों में प्रचलित है। रैय्यतवारी और महालवारी प्रथा में केवल यही फर्क है कि महालवारी के अन्तर्गत गाँव का मालगुजार मालगुजारी चुकाने का जिम्मेदार रहता है। उत्तर प्रदेश, बिहार, पंजाब और मध्य प्रदेश के कुछ भागों मे जमीदारी प्रथा चालू है। इसमें जमीदार या ताल्लुकेदार अपने हिस्से की मालगुजारी देने के जिम्मेदार रहते हैं। जमीन के लगान की रकम सरकार की ओर से तय कर दी जाती है। जमीदार उस लगान की दर से किसानों को खेती करने के लिये जमीन देते हैं। इस तरह [illegible]ने से जो लगान आ सकता है उसका निश्चित हिस्सा सरकार ले [illegible]ती है। मान लो जमींदार सौ रुपया लगान के रूप में वसूल कर सकता है।

पहले सरकार इसमें से सत्तर अस्सी रुपये मालगुजारी के रूप में ले लेती थी। लेकिन अब तो घटते-घटते यह रकम चालीस-पचास फी सैकड़ा के करीब रह गई है।

सरकारी मालगुजारी नगद रुपयो मे ली जाती है, अनाज वगैरह में नही। जिस साल पानी कम बरसता है या ओला पाला पड़ता अथवा टिड्डी आदि लग जाती है, उस साल फसल खराब हो जाती है। मालगुजारी का कुछ हिस्सा माफ कर दिया जाता है। लोगों की शिकायत है कि छूट नुकसान के हिसाब से कम होती है। मालगुजारी के साथ लगान मे भी कमी करनी पड़ती है। लगान मालगुजारी से भिन्न होता है। लगान तो किसान देता है और मालगुजारी जमींदार देता है। लगान जमीदार को मिलता है पर मालगुजारी सरकारी खजाने मे जमा की जाती है। जहाँ जमींदार नहीं हैं, जैसे उन प्रदेशों मे जहाँ रैय्यतवारी प्रथा चालू है, वहाँ किसानों का सरकार से सीधा सम्बन्ध रहता है। वहाँ सरकार किसानों से मालगुजारी वसूल करती है। सरकार लगान की दर व मालगुजारी दोनों को निश्चित करती है उत्तर प्रदेश मे मालगुजारी उस लगान के आधार पर निश्चित होती है जो किसान पिछले बन्दोबस्त के समय जमींदार को देते थे। मध्य प्रदेश मे सरकारी अफसर जमीन के गुणों और स्थिति की जाँच करते हैं और उसी हिसाब से लगान निश्चित किया जाता है। अगर किसी जमीन की मिट्टी अच्छी है तथा वह बाजार से बहुत पास है, तो उसका लगान ज्यादा रक्खा जाता है। लेकिन लगान (जमींदार के न रहने पर यह मालगुजारी भी कहा जा सकता है) की दर निश्चित करने की जो रीति बम्बई मे चालू है वह सबसे अच्छी कही जाती है। वहाँ पर यह जानने की कोशिश की जाती है कि पिछले बन्दोबस्त के समय जो उपज हुई थी उसकी कीमत क्या थी और उस उपज को पैदा करने के लिए क्या खर्च बैठा था। उपज की कीमत से यह खर्च निकाल कर जो बचता है उसका लगभग आधा भाग आगामी बन्दोबस्त तक के लिए मालगुजारी निश्चित की जाती है। यों तो लगान निश्चित करने का यह तरीका हमारे प्रदेश के तरीके से कहीं अच्छा है। लेकिन किसानो को यह शिकायत रहती है कि उपज की कीमत बढ़ाकर और लागत खर्च घटाकर हिसाब लगाया जाता है। कहा जाता है कि इससे

किसानों को पूरी मजदूरी भी नहीं मिल पाती। किसानों के कई महीने भूखे रहने का कारण यह भी है।

जमींदार और किसान

भारत मे पूर्वी पजाब, पश्चिमी बगाल, उडीसा, मध्य प्रदेश, मद्रास के उत्तरी जिलों में जमीदार प्रथा है तथा मध्य भारत, राजस्थान और विन्ध्यप्रदेश में जागीरदारी प्रथा है। जमीदार किसानों से लगान वसूल करके आधी से कम रकम मालगुजारी के रूप सरकारी खजाने में जमा कर देते हैं और शेष उनकी आय होती है। जमींदारों ने कभी अपना कर्तव्य पालन नही किया। वे किसानों से अधिक से अधिक से लगान वसूल करने का प्रयत्न करते थे। जो मौरूसी काश्तकार नहीं थे, शिकमी काश्तकार थे उनकी स्थिति तो दयनीय थी। उनको आये दिन बेदखल किया जाता था और अधिक लगान और नजराना लेकर दूसरों को जमीन उठा दी जाती थी। किसान को यह भरोसा नहीं रहता था कि उसके पास भूमि रहेगी या नहीं। केवल यही नहीं, जमींदार तथा जागीरदार किसानों से बेगार लेते थे किसान को बिना कुछ दिए ये लोग अपने खेतों पर तथा मकान पर काम करवाते थे। जमींदार तथा जागीरदार के पशुओं को चारा, लकडी, दूध इत्यादि मुफ्त देना पडता था। इसके अतिरिक्त जमीदार और जागीरदार अनेक प्रकार की लगातें (कर) किसानों से जबरदस्ती वसूल करते थे। इस प्रकार जमीदार किसानों का शोषण करता था। केवल बात यहाँ तक ही नहीं रहती थी। जमीदार गाँव में मनोरजन तथा विलासिता के साधन न होने के कारण गाँव छोडकर शहरों में रहते थे। गाँव का धन उनके द्वारा खिचकर शहरों को जाता था और गाँव निर्धन हो रहे थे। गाँव मे जमीदारों के कारिन्दे या कामदार काम करते थे जो किसानों का और भी अधिक शोषण करते थे। इस सबका परिणाम यह हो रहा था कि गाँवों की स्थिति दयनीय होती जा रही थी और ऐसी स्थिति में खेती की उन्नति नहीं हो सकती थी। खेती की उन्नति के लिए यह आवश्यक था कि जमींदारी और जागीरदारी को समाप्त कर दिया जावे और किसान को भूमि का स्वामी बना दिया जावे। यही कारण है पूर्वी पजाब, उडीसा, बगाल, मध्य प्रदेश, मद्रास, मध्य भारत और राजस्थान में जमींदारी उन्मूलन कानून बना दिए गए और जमींदारों

और जागीरदारों को साधारण हर्जाना देकर समाप्त किया जा रहा है। वह दिन अब दूर नही है जबकि जमींदार और जागीरदार इस देश मे नही रहेंगे और किसान भूमि का स्वामी हो जावेगा।

उत्तर-प्रदेश मे ज़मींदारी उन्मूलन कानून

उत्तर-प्रदेश मे पहली जुलाई १९५२ से जमींदारी उन्मूलन और भूमि-सुधार कानून (१९५१) लागू हो गया है। इसके अनुसार कुछ क्षेत्रों को छोड़कर अन्य स्थलों की सभी भूमि पर से जमींदारों के अधिकारों का अंत हो गया है। प्रत्येक जमींदार को उसके वास्तविक मुनाफे पर उपयुक्त मुआविजा दिया जावेगा। किसानों की दो श्रेणियाँ होंगी—(१) भूमिधर (२) सीरदार। वर्तमान जमींदार को सीर और खुदकाश्त भूमि मे भूमिधर के अधिकार मिलेंगे। जो किसान अपनी लगान का दस गुना एक साथ दे देगा वह भी उस भूमि का भूमिधर कहलावेगा। भूमिधर किसानों को भूमि बेचने या बंधक रखने का पूर्ण अधिकार रहेगा। उन्हे भूमि पर मौरूसी हक रहेगा। सीरदार किसानों को भी मौरूसी हक रहेगा। परन्तु वह भूमि को न बेच सकेगा और न गिरवी रख सकेगा। इस प्रकार जो रुपया इकट्ठा होगा उसमे से जमींदारों को मुआविजा दिया जावेगा। जो छोटे जमींदार हैं उन्हे मुआविजे के अतिरिक्त काम धन्धा करने के लिये कुछ पूँजी सहायता के रूप मे दी जावेगी। छोटे जमींदारो मे पुनर्स्थापन सहायता उन्हीं को दी जावेगी जिनका वास्तविक मुनाफा दस हजार रुपया वार्षिक से कम होगा और यह सहायता उनके वास्तविक मुनाफे के एक गुने से २० गुने तक होगी। जिनकी आय कम होगी, उनको अधिक और जिनकी आय अधिक होगी, उनको कम सहायता मिलेगी। उदाहरण के लिए जिनकी वार्षिक आय २५ रुपया है उन्हे २० गुनी और जिनकी ५ हजार से दस हजार तक है उन्हे एक गुनी ग्राट दी जावेगी। जो दस साल का लगान पेशगी देकर भूमिधर का अधिकार प्राप्त करेंगे उनका लगान जो आज वे देते हैं उसका आधा कर दिया जावेगा। भविष्य मे केवल नाबालिग, विधवा, अपंग अथवा शारीरिक दृष्टि से अशक्त व्यक्ति और सेना मे नौकरी करने वाले या विद्यार्थी अपनी भूमि को लगान पर उठा सकेंगे। भविष्य मे किसी एक व्यक्ति के पास ३० एकड भूमि से अधिक भूमि नहीं रहेगी। इसके अतिरिक्त कानून में

भूमि को ६१/४ एकड से छोटे टुकडों मे न बॅटने देने तथा सहकारी खेती की भी व्यवस्था की गई है। अन्य प्रदेशों मे भी जमींदारी प्रथा का अन्त हो रहा है।

उत्तर प्रदेश की सरकार ने जमींदारों को उनकी क्षतिपूर्ति की रकम के सरकारी बौंड दिये है जिन पर २१/२ प्रतिशत सूद दिया जावेगा और ४० वर्षों मे सारी रकम चुका दी जावेगी।

जमींदारी प्रथा के विनाश का प्रभाव

उत्तर प्रदेश मे जमीदारी प्रथा के विनाश का परिणाम यह होगा कि किसान स्वय भूमि का मालिक हो जावेगा। वह यदि अपनी भूमि से सुधार करके, कुआँ खोदकर तथा अन्य प्रकार से परिश्रम करके भूमि की उपजाऊ शक्ति को बढावेगा तो उसको लाभ होगा। वह भूमि पीढी दर पीढी उसके वशजों के अधिकार में रहेगी। अतएव किसान भूमि का सुधार करने, उसमें पूॅजी और श्रम लगाने मे सकोच नहीं करेगा। इसका परिणाम यह होगा कि खेती की उन्नति होगी, आज जितनी पैदावार होती है उससे अधिक पैदावार होगी और किसान समृद्धिशाली बनेगा। आज तो किसान को जमीदार भूमि से बेदखल करके दूसरे को भूमि दे सकता है। ऐसी दशा मे किसान भूमि का सुधार करने तथा पैदावार को बढाने का प्रयत्न क्यों करे? गैर मौरूसी काश्तकार को जमींदार जब चाहे इस भूमि पर से हटा सकता है और उसकी लगान बढा सकता है। ऐसी दशा मे जब तक कि जमींदारी प्रथा विद्यमान है तब तक किसान को आर्थिक दशा ठीक नहीं हो सकती और न खेती की ही उन्नति हो सकती है।

पटवारी के कागजात

अस्तु, अब यह बताना बडा जरूरी है कि किसान और जमीदार के बीच जो बात ठहरती है तथा लगान वगैरह के बारे मे जो फेर-फार होते रहते हैं उनका हिसाब कौन रखता है? तुम सबने पटवारी का नाम जरूर सुना होगा। बस, यही पटवारी खेतो से सम्बन्ध रखने वाले सब कागजात रखते हैं। और उत्तर प्रदेश मे यही अब किसानों से लगान वसूल रेंगे। इन कागजों को लैन्ड-रेकर्ड्स या जमीन के कागजात कहते हैं। के बगैर क्या काश्तकार क्या जमींदार, यहाँ तक कि सरकार का भी

काम नही चल सकता। सब के लाभ के लिए यह निहायत जरूरी है कि उन कागजों मे जो कुछ दर्ज हो, वह ठीक हो। यदि उसमे जरा सी भी गलती हो गई तो फिर कुछ न कुछ गड़बड़ी जरूर होगी। इसलिये यह आवश्यक है कि कागजों मे सारी बाते अच्छी व पूरी तरह भरी जायॅ। यह ठीक मालूम पड़ता है कि हम तुम्हे पटवारी के सभी कागजातों के बारे मे थोड़ा हाल बता दें।

पटवारी के पास जो कागजात रहते हैं वे सब छपे हुये फार्मों पर लिखे हुये होते हैं। पटवारी उन्हे एक सरकारी अफसर से जिसको रजिस्ट्रार-कानूनगो कहते हैं, प्राप्त करते है। रजिस्ट्रार-कानूनगो को सरकार की तरफ से ये कागजात छपे छपाये मिलते हैं। वे ही उन्हे रखते हैं और जिस पटवारी को जरूरत पड़ती है, उसे दे देते हैं। उन कागजों के नाम ये हैं—

शजरा मिलान, खसरा, स्याहा, खतौनी, जमाबन्दी, बहीखाता जिन्सवार और खेवट।

शजरा मिलान

शजरा मिलान गॉव के खेतों और मकानों का नकशा होता है। यह मोमजामे के कपड़े या मजबूत कागज का बनाया जाता है। इसमे हर तरह की आराजी का नकशा दिया जाता है। जिस खेत का नकशा रहता है उसी मे उसका नम्बर भी दिया रहता है। यह तुम्हे मालूम ही है कि आराजी या रकबा की हालत बदलती है, क्योंकि किसान खेत बेचते, खरीदते और दखल बेदखल होते रहते हैं। अतएव निश्चित समय के बाद इस नकशे में भी फेरफार होता रहता है। इसके लिए पटवारी हर एक खेत की जॉच करता है। साल भर के अन्दर उसमें जो रद्दोबदल होते हैं उनका ठीक ठीक हाल वह लिख लेता है। इस काम के लिए खेत को नापना पड़ता है। यदि नाप मे जरा सी भी गलती हो गई तो बड़ी गड़बड़ी पड जाती है। इसलिए यह जरूरी होता है कि जिसका कुछ भी हक जमीन मे हो, वह पटवारी के साथ साथ जाकर यह देखे कि सब लिखा-पढी ठीक-ठीक हो रही है या नहीं। शजरा मिलान मे तालाब, बाग और कुआॅ वगैरह भी दिखाये जाते हैं। यह निहायत जरूरी होता है कि काश्तकार और जमींदार पटवारी को मदद करके ठीक-ठीक बाते पटवारी को लिखा दें। अस्तु,

खसरा

क्रम	विवरण			
१	खेत का नम्बर			
२	क्षेत्रफल एकड में या बन्दोबस्ती बीघे में			
३	मुहाल का नाम और पट्टी का नाम			
४	खेवट का नम्बर			
५	खतौनी का नम्बर			
६	किसान का नाम व जात			
७	नीचे का किसान और जात			
८	लगान			
९	सिंचाई का तरीका			
१०	कुएँ			
११	सींचा हुआ	उपज	खरीफ	जोता हुआ क्षेत्रफल
१२	बिना सींचा हुआ			
१३		क्षेत्रफल		
१४	सींचा हुआ	उपज	रबी	
१५	बिना सींचा हुआ			
१६		क्षेत्रफल		
१७	सींचा हुआ	उपज	जायद	
१८	बिना सींचा हुआ			
१९		क्षेत्रफल		
२०	सींचा हुआ	दो फसली क्षेत्रफल		
२१	बिना सींचा हुआ			
२२	जमीन की किस्म	बिना जोती हुई भूमि		
	क्षेत्रफल			
	कैफियत			

खतौनी

१	सिलसिलेवार नम्बर	
२	किसान का नाम, वल्दियत और जात	
३	खेती का समय	
४	खसरा नम्बर	
५	गाँव के बीघों में	क्षेत्रफल
६	एकड़ या बन्दोबस्ती बीघों में	
७	बिना जोता गया क्षेत्रफल	
८	कानूनी माँग	
९	ज्यादा माँग	नकद लगान / लगान
१०	अनाज की नकद कीमत	अनाज लगान
११	अन्य सम्बन्धी खेतों का लगान	
१२	किस्त और साल	कुल माँग बकाया सहित
१३	प्रत्येक किस्त की माँग	
१४	रकम	वसूलयाबी
१५	सियाहे के नम्बर की तारीख	
१६	प्रत्येक किस्त का बकाया भाग	
१७	कैफियत	

खेवट

१	थोक और पत्ती का नम्बर और नम्बरदार का नाम	
२	हिस्से (खाता) का सिलसिलेवार नम्बर	
३	हिस्से की तादाद, लगान और कर	
४	हिस्सेदार का नाम, वल्दियत वगैरह	फसली के लिये
५	तबादला करने वालों के नाम वगैरह	
६	जिसका तबादला हो उसका नाम मय रजिस्ट्रार-कानूनगो के दस्तखत, वगैरह	
७	तबादला होने वाले व्यक्तियों के नाम, वल्दियत वगैरह	
८	(जैसा स्तम्भ ५ में है)	फसली के लिए
९	(स्तम्भ ६ की तरह)	
१०	(स्तम्भ ७ की तरह)	
११	(स्तम्भ ५ की तरह)	फसली के लिये
१२	(स्तम्भ ६ की तरह)	
१३	(स्तम्भ ७ की तरह)	
१४	(स्तम्भ ५ की तरह)	फसली के लिये
१५	(स्तम्भ ६ की तरह)	
१६	(स्तम्भ ७ की तरह)	
१७		कैफियत

शजरा मिलान में गाँव की जितनी जमीन होती है, उसका इसमें खेतवार हिसाब रहता है। इस नक्शे को देखकर कोई भी किसान अपना खेत जान सकता है।

खसरा

शजरा मिलान मे तो खेतों का नक्शा ही रहता है लेकिन खसरे में जमीन का पूरा हाल रहता है। नक्शे मे जितने खेत रहते है उसमें उनके नम्बर दिये रहते हैं। वही नम्बर सिलसिलेवार खसरे में दर्ज रहते हैं। उन्हीं नम्बरों के साथ उन खेतो का क्षेत्रफल, लगान, जमीन किस तरह की है, जमींदार का नाम, किसान का नाम और फसल की किस्म आदि सब लिखे रहते हैं। जैसा साथ में छपे खसरे के फार्म से स्पष्ट है। खसरे का ठीक-ठीक लिखा जाना बहुत जरूरी है। खेतो की गलत नापजोख का असर शजरा मिलान में तो नही के बराबर रहता है, लेकिन खसरे में अगर कुछ भी गलत लिखा जाता है तो बाद में लड़ाई-झगड़े चल जाते हैं और किसान वगैरह मुसीबत में पड़ जाते हैं। इसलिये यह परमावश्यक है कि जमींदार और काश्तकार दोनों पटवारी के साथ रहकर अपने खेत की सब बाते खसरे में लिखवा दे। जो जो फेर-फार हुए हैं; वे जरूर ही पटवारी के कागजों में दर्ज हो जाने चाहिये। प्रत्येक गॉव का खसरा हर वर्ष ३० अप्रैल तक तैयार हो जाना चाहिए और दूसरे वर्ष अगस्त तक रजिस्ट्रार के दफ्तर मे जमा हो जाता है।

स्याहा

स्याहा वह कागज होता है जिसमे पटवारी जमींदार के कागजात देखकर लगान की वसूलयाबी की खानापूरी करता है

वहीखाता जिन्सवार

वहीखाता जिन्सवार मे लगान का हिसाब लिखा जाता है। इसके साथ ही लगान का तरीका भी दिया रहता है। चाहे वह बटाई से लिया जाय चाहे और किसी तरीके से।

खतौनी

खतौनी जमाबन्दी खसरे के मुताबिक बनाई जाती है। इसमें कब्जे के मुताबिक किसानों के नाम दिये जाते है। किसानों और जमींदार के सब खेत एक जगह दर्ज रहते हैं। उसी मे साथ ही लगान और बकाया लगान भी लिखा रहता है। खतौनी मे भी सब जरूरी तबदीलियाँ लिखी रहती हैं। खतौनी का एक फार्म पृष्ठ १४५ पर छपा है।

खेवट

ऊपर पटवारी के कागजातों में खेवट का नाम भी आया है। यह मुहालवार तैयार किया जाता है। हर एक मुहाल मे सभी दखलकारों का एक रजिस्टर होता है। उसमे रकबे के सब मालिकों का हर एक अधिकार लिखा रहता है और यह भी लिखा रहता है कि वह अधिकार कितना और किस किस्म का है। पृष्ठ १४६ पर छपे खेवट के फार्म से यह बात स्पष्ट है। खेवट मे जो तबदीली होती हैं, वह रजिस्ट्रार कानूनगो की आज्ञा लेकर होती है। उसके हुक्म के बिना कोई फेर-फार नहीं हो सकता। जो भी घटा-बढी होती है उस पर उसके दस्तखत होते हैं, जिससे कि उनके लिए वही जिम्मेदार रहे।

पटवारी के अन्य कार्य

ऊपर बताये छै कागजातों को तो पटवारी पूरा ही करता है। उसके अलावा जब कोई किसान या जमींदार मर जाता है, जब कोई जमीन बेची जाता है, गाँवों की जब सरहद बदली जाती है, तब इन सब का हाल पटवारी को लिखकर देना पड़ता है। इसके अलावा जिस साल वर्षा कम होने के कारण, बाढ़ के कारण उपज मारी जाती है, तब भी पटवारी को रिपोर्ट लिखनी पडती है।

पटवारी गाँव के बहुत काम का होता है। लेकिन वह किसानों पर होने वाले अत्याचार नहीं रोक सकता। ये अत्याचार तो तभी रुक सकते हैं जब जमींदारों की आँखे खुलें या किसान मिलकर कुछ काम करे। अब तो गाँव मे लोग मिलकर समिति बना लेते हैं। इसे सहकारी समिति कहते हैं। सहकारी समितियाँ किसानों की हालत बहुत कुछ सुधार सकती हैं। हम इनका विचार सहकारिता के अन्तर्गत करेंगे।

अभ्यास के प्रश्न

१—अपने गाँव के किसानों से पूछ कर यह ठीक ठीक पता लगाइये कि उनको गत वर्ष में अपने जमींदार को किस प्रकार की कितनी बेगार देनी पड़ी।

२—यदि आप किसी गाँव के जमीदार बना दिये जायँ तो उस गाँव के किसानों की आर्थिक दशा सुधारने के लिए आप क्या प्रयत्न करेंगे ?

३—गैर मौरूसी काश्तकार की तुलना मे मौरूसी काश्तकार की खेती अच्छी होने के प्रधान कारण क्या हैं ?

४—'किसान गरीब होने से अंत में जमीदार भी गरीब हो जाता है' इस कथन की सत्यता सिद्ध कीजिए।

५—जिन प्रदेशों में जमीदार नही हैं, क्या उनमें किसानों की दशा अच्छी है ? यदि नही तो उसके प्रधान कारण क्या हैं ?

६—स्थायी बन्दोबस्त के गुण-दोष लिखिये ?

७—उत्तर प्रदेश और बम्बई प्रदेश की मालगुजारी निश्चित करने की प्रणालियो की तुलना कीजिए। अर्थशास्त्र की दृष्टि से कौन-सी प्रणाली उत्तम है ?

८—उत्तर प्रदेश मे नये कानून द्वारा किसानों को कौन-सी सुविधाएँ हुई हैं ? सक्षेप मे लिखिए।

९—गाँव में पटवारी का क्या महत्व है ? इसके द्वारा किसानों का क्या लाभ हो सकता है ?

१०—पटवारी के मुख्य कागजातों का वर्णन कीजिए। ये कागजात ठीक किस प्रकार रखाये जा सकते हैं ?

११—अपने गाँव के पटवारी से 'खसरा' लेकर उसका एक पृष्ठ नकल कर लाइये और यह जाँच कीजिये कि उसमें लिखी हुई बातें कहाँ तक ठीक हैं।

पन्द्रहवाँ अध्याय

ग्रामों की समस्याओं का दिग्दर्शन

(Village Problems)

इस पुस्तक का विषय ग्राम्य अर्थशास्त्र (Rural Economics) है। पहिले अध्यायों में अर्थशास्त्र के मुख्य सिद्धान्तों पर विचार किया जा चुका है। अगले अध्यायों में हम ग्रामों की समस्याओं पर विचार करेंगे। इस अध्याय में इन समस्याओं का दिग्दर्शन कराते हैं।

भारत कृषि-प्रधान देश है। लगभग ३६ करोड़ जनसंख्या वाले इस महादेश में लगभग ७५ प्रतिशत जनसंख्या प्रत्यक्ष रूप से खेती पर निर्भर है। जिस देश में लगभग तीन चौथाई जनसंख्या खेती करके गुजारा करती हो, वहाँ गाँवों का बहुतायत से होना अवश्यम्भावी है। यही कारण है कि भारत गाँवों का देश है। सारे देश में लगभग ५½ लाख गाँव हैं, जिनमें देश की ८३ प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। ऐसी दशा में यदि भारत को गाँवों का देश कहा जाता है तो कोई आश्चर्य नहीं है। महात्मा गाँधी ने ठीक ही कहा था कि वास्तविक भारत की जानकारी कलकत्ता और बम्बई जैसे विशाल नगरों को देखने से नहीं हो सकती, यदि किसी को भारत का सच्चा स्वरूप देखना है तो उसे गाँवों की ओर जाना चाहिये।

ऊपर दिए हुये विवरण से यह तो ज्ञात हो गया कि भारत मे गॉवों का बहुत अधिक महत्व है। गॉव कोई नई संस्था नही है, वह हजारों वर्ष पुरानी है, और आज भी जब कि उसकी सब ओर से उपेक्षा हो रही है, वह जीवित है। परन्तु गॉवों की दशा अत्यन्त गिरी हुई है। गॉवो मे रहने वाले अधिकाश ग्रामीण पशुवत जीवन व्यतीत करते हैं। दरिद्रता, गन्दगी, लड़ाई झगडे, ऋण और अशिक्षा का गॉवों मे एकछत्र राज्य है। सच बात तो यह है कि गाँवो की दशा अत्यन्त दयनीय है। न वहाँ स्कूल, अस्पताल और सड़कें ही होती हैं और न सभ्यता के कोई दूसरे ही साधन वहॉ मिलते हैं।

सैकडों वर्षों से नगरों द्वारा गॉवों का शोषण होता रहा है। गॉवों का केवल आर्थिक शोषण ही हुआ हो, यही बात नहीं है। प्रादेशिक सरकार अपनी आय का अधिकाश भाग गॉवों से वसूल करके अधिकतर नगरों पर व्यय करने लगी। इसका फल यह हुआ कि गॉव निर्धन हो गये। जमीदारों के नगर में जाकर बसने से एक हानि यह हुई कि जो भी गॉवों मे शिक्षित और बुद्धिमान व्यक्ति थे गॉव में नही रहे। क्रमशः गॉवों मे बुद्धि और धन का अकाल हो गया। इसका फल यह हुआ कि गॉवों की दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई। उनका सब तरह से पतन हो गया।

हर्ष का विषय है कि सैकड़ों वर्षों के उपरान्त अब सरकार, देश के नेताओं, तथा शिक्षित व्यक्तियों का ध्यान गॉवों की गिरी हुई अवस्था की ओर आकर्षित हुआ और ग्राम-सुधार आन्दोलन (Rural uplift movement) देश में उठ खडा हुआ है। इसमे तो तनिक भी सन्देह नहीं कि यदि हम चाहते हैं कि अधिकाश जनसख्या आज जैसी नीची श्रेणी का जीवन व्यतीत न करके अच्छा जीवन व्यतीत करे तो हमे गॉवों का सुधार करना चाहिये।

इससे पहले कि हम गॉवों को सुधारने की बात सोचें, हमे यह जान लेना आवश्यक है कि भारत के गॉवो मे कौन कौन सी ऐसी समस्याये हैं, जिनके हल किये बिना गॉवों का सुधार नही हो सकता।

गॉवों की समस्याये (Village Problems)

विद्वानों ने बहुत खोज करने के बाद यह नतीजा निकाला है कि जो

कुटुम्ब गाँवों में रहते हैं उनका जीवन और शक्ति शहरों में रहने वाले कुटुम्बों की अपेक्षा अधिक होती है। यदि किन्हीं सौ ग्रामीण कुटुम्बों को ले लिया जाय जो बराबर गाँव में पीढी दर पीढी रहते हों और उन्हीं की स्थिति के सौ शहराती कुटुम्बों को ले लिया जाय तो मालूम होगा कि गाँव मे रहने वाले कुटुम्बों की आयु शहरों मे रहने वाले कुटुम्बों से अधिक होगी। कहने का तात्पर्य यह कि जो कुटुम्ब सदैव गाँवों मे रहते हैं वे बहुत अधिक पीढियों तक चलते रहते हैं और शहरों में रहने वाले कुटुम्ब कुछ पीढियों के बाद समाप्त हो जाते हैं। सच तो यह है कि गाँव, मनुष्य जन-संख्या की नर्सरी है जहाँ से मनुष्य रूपी पौधा शहरों मे लगाया जाता है। जिस प्रकार कोई पौधा अपनी प्राकृतिक अवस्था मे खूब पनपता है और अप्राकृतिक वातावरण मे उसकी बाढ रुक जाती है, ठीक उसी तरह से मनुष्य की जीवन-शक्ति शहरों मे पीढी दर पीढी कम होती जाती है।

यदि गाँवों से शहरों मे नया खून न पहुँचे तो शहरों मे बहुत घटिया लोग दिखलाई दे। लेकिन गाँव से कुछ न कुछ कुटुम्ब सदैव शहरों मे जाकर बसते रहते हैं और वहाँ जाकर धीरे-धीरे निस्तेज हो जाते हैं। इस लिये ग्रामीण जन-सख्या ही किसी देश की शक्ति का आधार है। यदि ग्रामीण जनसख्या गिरी हुई दशा मे रही तो देश की अवनति हुए बिना नही रह सकती। इसके लिए यह जरूरी है कि स्वस्थ, बुद्धिमान और पुरुषार्थी स्त्री-पुरुष गाँव मे रहे।

आज भारतीय गाँवों की दशा यह है कि जो भी गाँव का लडका पढ़ जाता है, जो चार पैसे वाला हो जाता है, वह सदैव के लिए गाँव छोड़ कर शहरों में जाकर बस जाता है। जमींदार शहरों के आकर्षण के कारण अपनी जमीदारियाँ छोड़कर शहरों मे जाकर बस गए हैं। ये जमींदार किसानों से प्राप्त धन को गाँवों मे व्यय न करके शहरों मे व्यय करते हैं। इस कारण गाँव निर्धन होते जा रहे हैं। भारत के गाँव का मस्तिष्क और पूँजी बाहर चली जा रही है। गाँव दिवालिया हो रहे हैं। जो भी व्यक्ति बुद्धिमान, साहसी और महत्वाकाक्षी होता है, वही गाँव छोडकर शहर मे जा बसता है। क्रमशः गाँवों मे मनुष्यों का छाँटन रह गया है और प्रथम श्रेणी के

लोग शहरों में जाकर निस्तेज और क्षीण होते जा रहे हैं। इसका देश पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है और हमारा सब तरह से पतन हो रहा है।

कुछ हद तक गाँवों से शहरों की ओर प्रवास होना अनिवार्य है। हमारा कहना यह है कि गाँवों मे भी शिक्षित, बुद्धिमान और साहसी व्यक्ति रहना पसन्द करें जिससे कि जाति का ह्रास न हो।

अब हमे देखना चाहिए कि लोग गाँवों से भागते क्यों हैं? गाँवो में आय के साधन कम हैं। ऊँचे दर्जे का सामाजिक जीवन, शिक्षा, मनोरंजन, सडक, डाक, रेल, तार इत्यादि का अभाव है। यहीं कारण है कि कुशाग्र-बुद्धि और महत्वाकांक्षी युवक शहरों की ओर भागते हैं।

अस्तु, जब तक हम गाँवों में यथेष्ट आय के साधन, शिक्षा, मनोरंजन, सड़कें, डाक इत्यादि की सुविधायें उपलब्ध नहीं कर देंगे तब तक यह प्रवास नहीं रुक सकता। वास्तव में हमारे ग्राम-सुधार आन्दोलन का यही लक्ष्य होना चाहिए।

मोटे तौर पर हम कह सकते हैं कि गाँवों की नीचे लिखी मुख्य समस्याये हैं:—

१—ग्रामवासियो का पूर्ण निराशावादी दृष्टिकोण। गाँव वाला इस बात का विश्वास ही नहीं करता कि उसकी दशा सुधर सकती है, अस्तु वह अपनी दशा सुधारने का प्रयत्न भी नही करता।

२—गाँवों में सफाई का अभाव। रोगों की बहुलता तथा चिकित्सा के साधनों का अभाव।

३—गाँवों मे शिक्षा की कमी।

४—गाँवों में मनोरंजन तथा खेल-कूद के साधनों का अभाव तथा घरों को अधिक आकर्षक बनाने की समस्या।

५—स्वास्थ्य रक्षा तथा उसके सिद्धान्तों की जानकारी न होना।

६—पशुओ की समस्या तथा उनकी उन्नति के उपाय।

७—खेती-बारी की उन्नति।

८—गाँव मे लड़ाई-झगडे और मुकदमेबाजी की समस्या।

९—ग्रामीण ऋण की समस्या।

१०—गाँवों में धंधों की कमी और आय के साधनों का न होना।

११—गाँवों मे गमनागमन के साधनों का अभाव।

१२—गाँवों में प्रचलित सामाजिक कुरीतियाँ तथा अंधविश्वास।

अब हम प्रत्येक समस्या को लेकर उसकी विस्तृत आलोचना अगले अध्यायों मे करेंगे।

अभ्यास के प्रश्न

१—भारत मे गाँवों का महत्व बतलाइये और लिखिए कि गाँव वर्तमान समय मे इतने महत्वपूर्ण क्यों हो रहे हैं?

२—भारत के गाँवों की वर्तमान गिरी हुई दशा के मुख्य कारण क्या हैं? विस्तारपूर्वक लिखिए।

३—"ग्राम-सुधार" कार्य से आप क्या समझते हैं? आजकल यह विषय इतना महत्वपूर्ण क्यों बन गया है?

४—गाँवों की मुख्य समस्याये क्या हैं? संक्षेप मे लिखिये।

५—यदि गाँवों मे पुरुषार्थी, बुद्धिमान और महत्वाकांक्षी व्यक्ति न रहे तो क्या हानि होगी?

६—अपने प्रदेश के गाँवों की मुख्य समस्याएँ बतलाइए। ग्राम-सुधार तथा कृषि विभाग ने उनका कहाँ तक सुधार किया है। (१९४४ तथा १९४६)।

सोलहवाँ अध्याय

किसानों का निराशावादी दृष्टिकोण

वास्तविक बात तो यह है कि ग्रामवासी इतने अधिक निराशावादी बन गये है कि उनको, चाहे कितना कहा जाय, यह विश्वास ही नहीं होता कि उनकी दशा मे सुधार हो सकता है। यही कारण है कि जब उनसे किसी नवीन सुधार को स्वीकार करने के लिए कहा जाता है, तो वे इच्छापूर्वक उसे कभी स्वीकार नही करते। यदि ग्रामीण चेचक का टीका लगवाता है तो इस कारण नही कि उसका विश्वास है कि वह लाभदायक है, परन्तु सरकारी कर्मचारियों के भय से अथवा सरकार को प्रसन्न करने के लिए वह ऐसा करता है। सरकार किसानों के हितो की रक्षा करने के लिए कानून बनाती

है, परन्तु वह कानूनों का बहुत कम उपयोग करता है। आज-कल ग्राम-सुधार आन्दोलन (Rural uplift movement) का जोर है। किसी किसी गाँव मे यह दिखलाई पड़ता है कि मानो किसानों ने सफाई, घरों में हवा और रोशनी तथा अन्य आवश्यक सुधारों को अपना लिया है, किन्तु वास्तविक बात तो यह है कि यह सब सरकारी अफसरों के भय से अथवा उनको प्रसन्न करने के लिए किया जाता है। यदि सरकारी कर्मचारी अथवा जिलाधीश उस गाँव की ओर से अपना ध्यान हटा लेते हैं तो थोड़े ही दिनों मे गाँव पुरानी दशा को पहुँच जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि ग्रामवासियों के हृदय में अपनी तथा अपने गाँव की दशा सुधारने की तीव्र इच्छा उत्पन्न नही होती। जो कुछ भी वे करते हैं बाहरी दबाव के कारण करते है।

प्रश्न यह है कि ग्रामवासी इतने अधिक निराशावादी क्यों हैं ? क्यों वह अपने सुख, स्वास्थ्य और उन्नति के प्रति इतना उदासीन है ? इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए हमे ग्रामवासियो की वास्तविक स्थिति को समझना होगा। वे शताब्दियों से दुर्भिक्ष और रोगों के शिकार होते चले आ रहे हैं। प्रकृति ऐसी चचल और अस्थिर है कि खेती का धंधा बिल्कुल अनिश्चित बन गया है। किसान चाहे जितनी मेहनत करे, चाहे जितनी सावधानी से खेती को जोते बोवे, परन्तु वर्षा के कम होने से, अथवा अत्यधिक वर्षा होने से, टिड्डियों तथा अन्य फसलों के रोगों से, ओलों और तुषार से, तथा अन्य प्राकृतिक परिवर्तनो से, उसकी खेती नष्ट हो सकती है। किसान इस प्राकृतिक आक्रमण से अपनी फसल की रक्षा करने मे असमर्थ रहता है। यही नही, शताब्दियों से वह और उसके पशु भयङ्कर रोगो के शिकार होते आ रहे हैं। जहाँ पशुओं की बीमारी फैली कि लाखों की सख्या मे पशु मरने लगते हैं और यही दशा मनुष्यों की होती है।

यही नही, किसान भयंकर कर्ज के बोझ से इतना दबा रहता है कि वह अपने खेत मे जो कुछ पैदा करता है उसका बहुत बड़ा हिस्सा महाजन के पास चला जाता है। बेचारे गरीब किसान के पास तो सिर्फ ६ या १० महीने के खाने का अनाज भर रह जाता है। इन परिस्थितियो के कारण ग्रामवासी नितान्त निराशावादी तथा भाग्यवादी बन गया है।

यही कारण है कि ग्रामवासियो के जीवन का सिद्धान्त यह बन गया है 'वर्तमान को देखो, भविष्य की चिन्ता न करो। क्योंकि भविष्य में क्या होगा यह कोई नही जानता।' एक कारण और भी है जो किसान को अपने धधे की उन्नति करने से रोकता है। वह है उसका ऋणी होना। भारतीय किसान इस बुरी तरह ऋण के बोझ से दबा हुआ है कि यदि वह वैज्ञानिक ढग से खेती करके अपनी भूमि की पैदावार बढाता है तो उसे कुछ लाभ नहीं होता। जितनी अधिक पैदावार होती है वह महाजन के पास जाती है। किसान को तो वर्ष में केवल आठ महीने का भोजन मिलता है। ऐसी दशा मे वह खेती के आवश्यक सुधारों को क्यों अपनावे। जमींदारी प्रथा भी किसान को निराशावादी बनाती है। हर्ष की बात है कि अब जमींदारी प्रथा शीघ्र ही नष्ट होने जा रही है।

ग्रामवासियों को भाग्यवादी से पुरुषार्थवादी, और निराशावादी से आशावादी कैसे बनाया जावे। इसमे तनिक भी सदेह नहीं कि जब तक ग्रामवासी यह विश्वास नही करने लगते कि उनकी गिरी हुई दशा में सुधार होना सभव है और अपनी दशा सुधारने के लिए उनमे उत्कट लालसा उत्पन्न नहीं होती, तब तक गाँवों का सुधार होना असभव है। गाँवों का सुधार स्वय ग्राम-वासियों के द्वारा ही हो सकता है, अन्यथा हो ही नहीं सकता। यदि सरकार अथवा और कोई सस्था किसी गॉव मे नालियाँ, सड़कें तथा अन्य आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध कर दे तो थोडे दिनों में उनका निशान भी नहीं रहेगा। नालियों और सडकों की देख-भाल, सफाई और मरम्मत कौन करेगा। गाँव वाले तो उन्हे चाहते नही थे, वे तो इन्हे दान-स्वरूप मिली है। जिस वस्तु के लिए हम परिश्रम करते हैं अथवा धन व्यय करते हैं, उसका ठीक उपयोग भी करते हैं, और उसकी देख-भाल भी करते हैं। अतएव सरकार तथा ग्राम सुधार कार्य करने वाली अन्य सस्थाओं का कार्य केवल इतना ही होना चाहिये कि वे अनुसधान करें, ग्राम समस्याओ को कैसे हल किया जा सकता है, इसका अध्ययन करें, और उसके अनुसार योजना बना कर गॉव वालों को बतावे।

यह तो हुआ काम करने का ढग, परन्तु किसानों के भाग्यवादी दृष्टि-कोण को कैसे बदला जावे? इसके लिए लगातार प्रचार तथा शिक्षा की

आवश्यकता होगी। शिक्षा तथा प्रचार के द्वारा ही उनका दृष्टिकोण बदला जा सकता है। जब ग्रामवासियो का दृष्टिकोण बदल जावेगा, तभी उनमें अपनी वर्तमान दयनीय दशा के विरुद्ध असतोष तथा घृणा उत्पन्न होगी। जिस दिन ग्रामवासियों मे अपनी गिरी हुई दशा के विरुद्ध असंतोष तथा घृणा उत्पन्न हो जावेगी और वे भाग्यवादी नहीं रहेगे, उसी दिन से ग्रामों की दशा स्वयं सुधरने लगेगी।

आज तो भारतीय किसान घोर भाग्यवादी बन गया है। यदि खेत की फसल नष्ट हो जाती है, बैल मर जाता है, कर्जे मे जमीन जायदाद बिक जाती है या बीमारी में उसके परिवार का कोई व्यक्ति मर जाता है, तो वह "भाग्य का दोष" कह कर चुप हो जाता है। उस विपत्ति को दूर करने के लिये कोई प्रयत्न नहीं करता। बाप-दादों से चले आने वाले पैतृक कर्जा, जमीदार, पुलिस, महाजन, अदालतों और तहसीलों के कर्मचारियों का अत्याचार और शोषण, निर्धनता, बीमारी, अशिक्षा, और गरीबी ने उसे इतना निराशावादी बना दिया है कि वह यह स्वप्न में भी नही सोचता कि उसकी दयनीय स्थिति में सुधार हो सकता है। जब ग्राम-सुधार कार्यकर्त्ता उससे कहता है कि यदि कार्यकर्त्ता की बातों पर ध्यान दे तो उसकी दशा सुधर सकती है तो ग्रामीण सुन तो लेता है किन्तु विश्वास नहीं करता। और जब तक ग्रामीण का निराशावादी दृष्टिकोण बना हुआ है तब तक कोई स्थायी सुधार नहीं हो सकता।

अस्तु, जरूरत इस बात की है कि उसके दिल में अपनी इस दयनीय अवस्था के विरुद्ध घृणा और घोर असंतोष उत्पन्न किया जावे। वह सोचने लगे कि मैं इस बुरी दशा मे नही रहूँगा, तब फिर उसे बतलाया जावे कि वह अपनी दशा किस प्रकार सुधार सकता है। तभी ग्रामीण नई बातों को स्वीकार करेगा।

अतएव जब तक किसान के हृदय मे अपनी दयनीय दशा के विरुद्ध तीव्र असतोप उत्पन्न नही हो सकता, तब तक न तो उसका निराशावादी दृष्टिकोण ही दूर होगा और न वह अपनी दशा को सुधारने की चेष्टा ही करेगा।

आज तो वह "मृत्यु का संतोष" लिये हुए जी रहा है। जो लोग भी

गाँवों की दशा को सुधारना चाहते हैं उन्हे इसके विरुद्ध ग्रामीणों में "असतोष" की भावना भरनी चाहिये ।

अभ्यास के प्रश्न

१—किसान को जब उसके स्वास्थ्य और खेती की उन्नति के लिये कोई भलाई की बात बतलाई जाती है तो वह उसको अपनी इच्छा से कभी नहीं मानता । इसका कारण क्या है ?

२—किसान इतना अधिक निराशावादी क्यों बन गया ? इसके कारण बतलाइये ।

३—गाँव वालों की दशा को सुधारने मे उनका निराशावादी और भाग्यवादी होना क्यों बाधक है ?

४—गाँव वालों की दशा मे सुधार करने के लिए उनमे अपनी वर्तमान गिरी हुई दशा के प्रति असतोष उत्पन्न करने, और उन्हे पुरुषार्थवादी बनाने की जरूरत क्यों है ?

५—खेती की सफलता भाग्य पर निर्भर है । इस कथन की आलोचना कीजिए ।

सत्रहवाँ अध्याय

गाँव की सफाई (Sanitation of Village)

साधारणत. हम लोगों की यह धारणा बन गई है कि हमारे गाँवो मे मनुष्यों का स्वास्थ्य बहुत अच्छा रहता है । गाँवों में रोग और महामारी बहुत कम होती है । क्योंकि मनुष्यो को खुली हुई हवा और सूर्य का प्रकाश खूब मिलता है । किन्तु वस्तुस्थिति इससे भिन्न है । प्लेग, हैजा, हुकवर्म, कालाजार, चेचक तथा क्षय रोग गाँवों मे घर बनाये हुए हैं । इन भयकर रोगो के अलावा वर्षा के बाद गाँवों मे सर्वत्र जूड़ी बुखार का भयकर प्रकोप होता है, बङ्गाल और आसाम मे तो मलेरिया का भीषण प्रकोप होता है । धान की फसल खड़ी रहती है किन्तु काटने वाले नही मिलते । इसका कारण है, गाँवों की गदगी ।

गाँवों में सर्वत्र गंदगी का साम्राज्य होता है। गाँवों के समीप जाइये; दुर्गन्ध, मक्खियों, धूल और कूड़े की बहुतायत पाइयेगा। गाँव के समीप ही छोटे-छोटे ताल और पोखरे होते हैं जिनमें गंदा पानी सड़ा करता है। अनेक रोगों के कीटाणु यहीं जन्म लेते हैं। घरों मे नालियाँ या नाबदान नहीं होते, जिनके कारण घरों का पानी गलियों मे बहता रहता है। गाँव की गलियाँ कच्ची होती हैं, वे कभी साफ नहीं होतीं, उन पर धूल और कूड़ा जमा रहता है। बरसात में ये गलियाँ दलदल बन जाती हैं। किसानों की स्त्रियाँ घरों को साफ रखती हैं, किन्तु गली में कोई सफाई नहीं करता। अधिकतर गाँवों के घरों में शौचस्थान नहीं होते, स्त्री-पुरुष बाहर खेतों और मैदानों मे शौच को जाते हैं। गाँवों की आबादी के चारों ओर मैदान, खेत, जङ्गल तथा तालाब ही गाँव वालो के शौचस्थान होते हैं। इससे गांव मे गंदगी फैलती है तथा वायु अशुद्ध होती है। गाँव के अन्दर ही खाद के ढेर लगे रहते हैं जिन पर मक्खियाँ भिनभिनाया करती हैं। घरों मे काफी हवा और रोशनी आने का कोई प्रबन्ध नहीं होता और जिन कोठों में मनुष्य रहते हैं उनमे ही पशुओं को रक्खा जाता है। इस कारण घर भी गंदे रहते हैं। इन सब कारणों से गाँव में बहुत गंदगी रहती है और उसी के कारण पशु और मनुष्यों की बीमारियाँ फैलती हैं। अब हम प्रत्येक गंदगी के कारण पर विचार करते हैं।

ताल या पोखरे (Village Pond)

ग्रामवासी अपने मकान कच्ची मिट्टी के बनाते हैं। प्रतिवर्ष बरसात बीत जाने पर उन्हें अपने मकानों की मरम्मत करनी पड़ती है। अतएव उन्हें मिट्टी की बहुत आवश्यकता होती है। दूर न जाकर गाँव के लोग आबादी के पास ही भूमि को खोदकर मिट्टी निकालते हैं जिससे उन्हें मिट्टी ढोना न पड़े। कहीं-कहीं धीरे-धीरे वह स्थान तालाब या पोखरे का रूप धारण कर लेता है। गाँव जितना ही पुराना होता जाता है, उतने ही अधिक ताल और पोखरे बनते जाते हैं, क्योंकि गाँव वालों को मिट्टी की हर साल आवश्यकता पड़ती है।

ताल व पोखरों में बरसात का पानी भर जाता है। वर्षा के दिनों में गाँव की गंदगी को साथ लेकर पानी इस ताल या पोखरे में जाता है

प्रकार कच्ची खाद से कोई लाभ नहीं होता, वरन् उससे दीमक उत्पन्न होती है। खाद को गड़हों में सड़ाकर ही खेतों में डालना चाहिये। प्रयत्न तो यह करना चाहिये कि प्रत्येक घर मे एक शौच-स्थान हो और कुछ सार्वजनिक शौचगृह हों, जिनका उपयोग अजनबी तथा गाँव मे बाहर से आने वाले व्यक्ति कर सकें। परन्तु अभी यह असम्भव नहीं है। भारत में तीन प्रकार के शौचस्थान गाँवो के लिए उपयोगी बतलाये गये हैं। एक तो खाद के गड़हे को ही शौचस्थान की भाँति काम में लाया जावे किन्तु किसान मैला के खाद को छूना नहीं चाहता, इस कारण इन गडहो का उपयोग नहीं किया जा सकता। दूसरे प्रकार का शौचस्थान बोर लैट्रिन (Bore Latrine) (भूमि मे सूराख करके शौचस्थान बनाना) है। किन्तु स्वास्थ्य-विभाग का कहना है कि इससे पानी दूषित हो सकता है। तीसरे प्रकार का शौचस्थान साधारण गड़हे के रूप मे बनाया जाता है, किन्तु उसमे एक प्रकार की हरी मक्खी उत्पन्न हो जाती है। इन गड़हों के चारों तरफ अरहर की एक बाड़ खड़ी करके दो तख्ते उस पर रखने से एक अच्छा खासा शौचस्थान तैयार हो सकता है। यदि शौचस्थान तैयार करने में कुछ कठिनाइयाँ हों तो इस बात का खूब प्रचार करना चाहिये कि प्रत्येक व्यक्ति मैदान मे शौच जाते समय अपने साथ खुर्पी अवश्य ले जावे और एक फुट का छोटा सा गड़हा करके उसमे शौच करके मल को मिट्टी से दबा दे। इससे गाँवों में हुकवर्म रोग नहीं होगा और गाँव गन्दगी से बच जावेगा।

नावदान तथा नालियों की समस्या (Drainage)

गाँव की यह समस्या भी महत्वपूर्ण है। घरों मे रसोई घर, बर्तन माँजने तथा नहाने-धोने मे जो पानी काम में लाया जाता है वह घरों मे अथवा गलियों में गन्दगी फैलाता है। जहाँ देखिये वहाँ घरों के बाहर गलियों मे काली काली कीचड़ दिखलाई देती है। इसका फल यह होता है कि उससे मच्छर उत्पन्न होते हैं और गन्दगी बढती है। कुओं के पास भी पानी बहुत गिरता है, किन्तु उसके निकास का कोई प्रबन्ध नहीं होता। फल यह होता है कि कुएँ के पास दलदल तथा कीचड़ हो जाता है और वहाँ से पानी बह कर गलियों मे जाता है।

होना तो यह चाहिये कि कुओ के पास ही औरतों के नहाने तथा कपडे

धोने के लिये एक पर्दे की जगह बना दी जावे। पुरुषों के लिए खुली जगह भी उपयुक्त हो सकती है। इससे लाभ यह होगा कि घरों में बहुत कम पानी जावेगा और वहाँ गन्दगी कम होगी। अतएव वहाँ नाली बनाने की आवश्यकता ही न होगी। कुये की मन (जगत) को ऊँचा बनाया जाना चाहिये। अच्छा तो यह हो कि वह पटा हो, जिससे पत्ती और कूड़ा कुये में न जा सके। कुये के चारों ओर ढलवाँ सीमेंट की नाली बनवा दी जावे जिससे कि जो पानी गिरे वह कुएँ के पास ही न भरे। कुये के पास ही पानी गिरने से कुयें का पानी दूषित हो जाता है। कुये की नाली और स्नान तथा कपड़े धोने के स्थानों की नालियाँ एक बड़ी नाली में मिला दी जावें। यह नाली भी कंकरीट की बनाई जावे या कुये का पानी नाली द्वारा गाँव के बाहर ले जाया जावे या दूसरा उपाय यह हो सकता है कि कुयें के पास ही एक बगीची लगाई जावे और उसके पेड़ों और पौधों की सिंचाई के लिये कुये के पानी का उपयोग कर लिया जावे। इन वाटिकाओं में फल और फूलों के पेड़ लगाये जावें। इनसे यह लाभ होगा कि गाँव का सौंदर्य बढ़ेगा और गन्दगी भी नहीं होगी। जिन घरों में बहुत जल काम में लाया जाता हो, वहाँ भी गृह-वाटिका में, अथवा तरकारी की क्यारी में उस पानी का उपयोग किया जा सकता है। उत्तर प्रदेश तथा अन्य प्रदेशों में इस समस्या को हल करने के लिये सोकेज पिट (Soakage Pit) बनाये गए हैं, किन्तु जब तक सोकेज पिट गहरे और बहुत बड़े तथा अच्छी तरह बनवाये न जावें, उनसे कोई विशेष लाभ नहीं होता। लेकिन और कुछ प्रबन्ध न होने से वे ही अच्छे हैं। वाटिकाओं द्वारा इस समस्या को अधिक सफलतापूर्वक हल किया जा सकता है।

तथा रोशनी का काफी प्रबन्ध नही करता। उनके मकान मे खिड़की अथवा रोशनदार होते ही नही। ग्रामीण खिडकी अथवा रोशनदान चोरों के भय से नहीं लगाते। परन्तु हवा और रोशनी जीवन और स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है, अतएव रोशनदान अवश्य निकलने चाहिये। यदि छत के समीप ऊँचे पर रोशनदान लगाया जावे और उसमे लोहे की छड़ें हों तो चोरों का भी इतना भय नहीं रहेगा। यदि मकान एक दूसरे से भिड़े हों तो छत में रोशनदान तथा हवादान लगाना चाहिये। भविष्य में एक दूसरे मकान से सटा कर मकान न बनाने के लिये गाँव वालों को कहना चाहिये।

बहुत से ग्रामीण घरों मे स्त्रियाँ सोने के कोठे में ही एक किनारे भोजन बनाती हैं, जिसमें धुआँ घुटता है और सोने का कमरा गन्दा हो जाता है। अतएव उन्हे यह बतलाया जाना चाहिए कि रसोई आँगन के एक किनारे पर सोने के कोठे से दूर होनी चाहिए और रसोई घर में धुआँ निकलने का मार्ग होना चाहिए। इससे दो लाभ होंगे। धुये से रसोई घर काला नहीं होगा, और घर की स्त्रियों की आँखे खराब होने से बच जावेंगी।

बहुत से किसान मकान में रहने के स्थान पर ही पशुओं को बाँध देते हैं। इससे स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है और गन्दगी बढती है। मकान के साथ एक छोटी सी पशुशाला होनी चाहिए जहाँ बैल बाँधे जावे। यदि पृथक् पशुशाला का प्रबन्ध न हो सके तो भी मकान मे पशुओं को रहने के स्थान से दूर बाँधना चाहिए।

गाँव की सडके (Village Roads)

गाँव की सड़के कच्ची होती हैं। दोनों ओर के खेतों के मालिक धीरे धीरे सडक को खोद कर खेतों मे मिलाने का प्रयत्न करते हैं, इससे सड़क पतली और टेढी हो जाती है। यही नहीं, किसान अपने खेत की मेंड को बनाने के लिए सड़क में से मिट्टी खोद लेते हैं, जिससे सड़क मे गड़हे बन जाते हैं। नहरे तथा कुये का पानी जब सडक के पार ले जाया जाता है तो वह सडक पर ही बहता रहता है। अधिकतर ये कच्ची सडके आस-पास के खेतों से नीची होती हैं। इस कारण बरसात में इनमे पानी भर जाता है।

सच तो यह है कि बरसात के दिनों मे बैलगाड़ी का इन सडको पर चल सकना असम्भव हो जाता है। सडक खेतों से ऊँची होनी चाहिए जिससे वर्षा का पानी खेतो में चला जावे। गॉव की पचायत गॉव वालों को सडक मे से मिट्टी खोदने के लिए मनाही कर दे, और प्रतिवर्ष वर्षा के उपरान्त गॉव वाले मिल कर स्वय सडक की मरम्मत कर ले तो गॉव वालों को अपनी पैदावार मडियो मे ले जाने, तथा आने-जाने मे बहुत सुविधा हो जावे। सरकार और जिलाबोर्ड यह नियम बना दे कि जो गॉव सडक बनाने के लिये मजदूरी मुफ्त देगा, उसको ककड अथवा अन्य सामान पक्की सडक बनाने के लिये मुफ्त दिया जावेगा। इस प्रकार बहुत थोडे व्यय से और गाँव वालों के परिश्रम से गॉवों मे पक्की सड़कें बन सकती हैं। हॉ, वहॉ वालों को उन सडकों की प्रतिवर्ष मरम्मत करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेनी होगी। किन्तु यह काम तभी हो सकेगा जब गॉव वालों मे अपने गॉव की दशा सुधारने की उत्कट लालसा उत्पन्न हो जावेगी।

गाँव मे कुशल दाइयों की समस्या

गाँवो मे जो दाइयॉ हैं वे न तो गर्भवती स्त्रियो को ठीक से देखभाल ही करना जानती हैं और न बच्चा जनाने का काम ही वे ठीक तरह से कर सकती हैं। गदी तो वे इतनी होती हैं कि उनके छूने से ही मॉ और बच्चे को रोग हो जाते हैं। सच तो यह है कि गाँवों मे बहुत बड़ी सख्या मे जो गर्भवती मातायें और बच्चे मरते हैं उनका कारण एक मात्र कुशल और साफ दाइयो का न होना है।

जब तक हर एक गाँव मे या दो चार गॉवो के बीच एक शिक्षित कुशल और ट्रेन्ड दाई नही होगी, तब तक, बच्चों और माताओं की मृत्यु रोकी नहीं जा सकती। ये दाइयॉ माताओं और बच्चो के जीवन से खिलवाड़ करती हैं। अतएव सरकार, डिस्ट्रिक्ट बोर्डों तथा अन्य सभी सस्थाओं का यह कर्त्तव्य है कि यह किसी प्रकार रोका जावे।

प्रादेशिक सरकारों को प्रत्येक जिले में दाइयों के ट्रेनिग स्कूल स्थापित करने चाहिए और डिस्ट्रिक्ट बोर्डो को तथा अन्य सस्थाओं को गॉवों की दाइयों को वजीफा देकर वहॉ शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजना चाहिए।

तथा रोशनी का काफी प्रबन्ध नहीं करता। उनके मकान में खिडकी अथवा रोशनदार होते ही नहीं। ग्रामीण खिड़की अथवा रोशनदान चोरों के भय से नहीं लगाते। परन्तु हवा और रोशनी जीवन और स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है, अतएव रोशनदान अवश्य निकलने चाहिये। यदि छत के समीप ऊँचे पर रोशनदान लगाया जावे और उसमें लोहे की छड़े हों तो चोरों का भी इतना भय नही रहेगा। यदि मकान एक दूसरे से भिड़े हों तो छत में रोशनदान तथा हवादान लगाना चाहिये। भविष्य में एक दूसरे मकान से सटा कर मकान न बनाने के लिये गाँव वालों को कहना चाहिये।

बहुत से ग्रामीण घरों में स्त्रियाँ सोने के कोठे में ही एक किनारे भोजन बनाती हैं, जिसमें धुआँ घुटता है और सोने का कमरा गन्दा हो जाता है। अतएव उन्हे यह बतलाया जाना चाहिए कि रसोई आँगन के एक किनारे पर सोने के कोठे से दूर होनी चाहिए और रसोई घर में धुआँ निकलने का मार्ग होना चाहिए। इससे दो लाभ होंगे। धुये से रसोई घर काला नहीं होगा, और घर की स्त्रियों की आँखे खराब होने से बच जावेंगी।

बहुत से किसान मकान में रहने के स्थान पर ही पशुओं को बाँध देते हैं। इससे स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है और गन्दगी बढ़ती है। मकान के साथ एक छोटी सी पशुशाला होनी चाहिए जहाँ बैल बाँधे जावें। यदि पृथक् पशुशाला का प्रबन्ध न हो सके तो भी मकान में पशुओं को रहने के स्थान से दूर बाँधना चाहिए।

गाँव की सड़के (Village Roads)

गॉव की सड़कें कच्ची होती हैं। दोनों ओर के खेतों के मालिक धीरे धीरे सड़क को खोद कर खेतों में मिलाने का प्रयत्न करते हैं, इससे सड़क पतली और टेढी हो जाती है। यही नहीं, किसान अपने खेत की मेंड़ को बनाने के लिए सडक में से मिट्टी खोद लेते हैं, जिससे सड़क मे गड़हे बन जाते हैं। नहरे तथा कुयें का पानी जब सड़क के पार ले जाया जाता है तो वह सड़क पर ही बहता रहता है। अधिकतर ये कच्ची सड़के आस-पास के खेतों से नीची होती हैं। इस कारण बरसात में इनमें पानी भर जाता है।

सच तो यह है कि बरसात के दिनों मे बैलगाड़ी का इन सडकों पर चल सकना असम्भव हो जाता है। सडक खेतों से ऊँची होनी चाहिए जिससे वर्षा का पानी खेतो में चला जावे। गॉव की पचायत गॉव वालों को सड़क मे से मिट्टी खोदने के लिए मनाही कर दे, और प्रतिवर्ष वर्षा के उपरान्त गॉव वाले मिल कर स्वय सड़क की मरम्मत कर लें तो गॉव वालों को अपनी पैदावार मडियों मे ले जाने, तथा आने-जाने मे बहुत सुविधा हो जावे। सरकार और जिलाबोर्ड यह नियम बना दे कि जो गॉव सड़क बनाने के लिये मजदूरी मुफ्त देगा, उसको ककड अथवा अन्य सामान पक्की सडक बनाने के लिये मुफ्त दिया जावेगा। इस प्रकार बहुत थोडे व्यय से और गाँव वालों के परिश्रम से गॉवों मे पक्की सड़कें बन सकती है। हॉ, वहाँ वालों को उन सड़कों की प्रतिवर्ष मरम्मत करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेनी होगी। किन्तु यह काम तभी हो सकेगा जब गॉव वालों मे अपने गॉव की दशा सुधारने की उत्कट लालसा उत्पन्न हो जावेगी।

गाँव मे कुशल दाइयों की समस्या

गॉवों मे जो दाइयॉ है वे न तो गर्भवती स्त्रियो को ठीक से देखभाल ही करना जानती हैं और न बच्चा जनाने का काम ही वे ठीक तरह से कर सकती हैं। गदी तो वे इतनी होती हैं कि उनके छूने से ही मॉ और बच्चे को रोग हो जाते हैं। सच तो यह है कि गॉवों मे बहुत बड़ी सख्या मे जो गर्भवती मातायें और बच्चे मरते हैं उनका कारण एक मात्र कुशल और साफ दाइयों का न होना है।

जब तक हर एक गाँव मे या दो चार गॉवो के बीच एक शिक्षित कुशल और ट्रेन्ड दाई नही होगी, तब तक, बच्चों और माताओं की मृत्यु रोका नहीं जा सकती। ये दाइयॉ माताओ और बच्चों के जीवन से खिलवाड़ करती हैं। अतएव सरकार, डिस्ट्रिक्ट बोर्डों तथा अन्य सभा सस्थाओं का यह कर्त्तव्य है कि यह किसी प्रकार रोका जावे।

प्रादेशिक सरकारों को प्रत्येक जिले मे दाइयों के ट्रेनिंग स्कूल स्थापित करने चाहिए और डिस्ट्रिक्ट बोर्डों को तथा अन्य सस्थाओं को गॉवों की दाइयों को वजीफा देकर वहॉ शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजना चाहिए।

जब काफी शिक्षित दाइयाँ तैयार हो जावें तब सरकार को एक कानून बना देना चाहिये कि बिना लाइसेंस लिए कोई भी दाई का काम नहीं कर सकती और लाइसेंस केवल उन्हीं को दिया जावे जो कि ट्रेंड हैं और इस कार्य में कुशल हैं।

जब तक ऐसा नही किया जावेगा तब तक बच्चों और माताओं के जीवन की रक्षा नही की जा सकती।

केवल बच्चा जनाने के लिए कुशल दाइयों का प्रबन्ध कर देने से हो काम नही चलेगा। गाँव की स्त्रियों को बच्चों के ठीक प्रकार से लालन-पालन करने की शिक्षा भी देना आवश्यक है। माताओं की भूल से बच्चों का स्वास्थ्य खराब हो जाता है। इसलिए इन दाइयों का कर्त्तव्य भी होगा कि वे बच्चों के लालन-पालन की शिक्षा स्वयं प्राप्त करें और माताओं को दें।

प्रतिवर्ष गाँव मे बच्चो के स्वास्थ्य के प्रदर्शन (Baby Show) किये जावें और स्वस्थ बच्चों की माँ को पारितोषिक दिया जावे। इसके साथ ही बच्चों का लालन-पालन कैसे करना चाहिए, इसकी जानकारी कराई जावे। यह प्रदर्शन कई दिन तक होना चाहिए।

गाँव मे सफाई और स्वास्थ्य की योजना

भारत में रोके जा सकने वाले रोगों के कारण जो भयकर हानि हो रही है वह सहकारी स्वास्थ्य समितियाँ स्थापित करके रोकी जा सकती है। हर एक गाँव में स्वास्थ्य रक्षक समिति की स्थापना की जावे। जहाँ तक हो सके हर एक गाँव वाले को उसके लाभ समझा कर उसका सदस्य बना लिया जाय।

सब सदस्यों की एक साधारण सभा हो। प्रतिवर्ष सभा वार्षिक प्रोग्राम निश्चित करे और दो मन्त्री तथा पच निर्वाचित कर दे। एक मन्त्री गाँव को सफाई की देख-भाल करे और दूसरा मन्त्री गाँव मे चिकित्सा और दवा का प्रबन्ध करे।

गाँव के पास के सब गडहों को पाट दिया जाय, नालों तथा खेतों के बहाव को ठीक कर दिया जाय। वर्षा समाप्त हो जाने पर जहाँ पानी रुक जाय वहाँ मिट्टी का तेल छिड़कवाया जाय। इससे मलेरिया बुखार गाँव मे

नही फैल सकता क्योंकि मलेरिया ज्वर का कीडा रुके हुए पानी मे ही उत्पन्न होता है।

पास के चार-पाँच गॉवो की स्वास्थ्य रक्षक समितियॉ मिलकर एक बडी समिति बनाले। हर एक ग्राम-समिति के प्रतिनिधि बडी समिति के सदस्य रहेगे। बडी समिति एक चिकित्सक तथा योग्य नर्स को नौकर रक्खे। इनको निजी प्रैक्टिस करने की आज्ञा न होनी चाहिए। नर्स का काम यह होगा कि वह बड़ी समिति से सम्बन्धित गॉवों मे बच्चा जनाने का काम करे। बडी समिति का चिकित्सक बीच के गाँव में रहे और प्रतिदिन दो गॉवों में जाकर वहॉ जो भी बीमार हो, उन्हे दवा दे।

चिकित्सक का मुख्य कार्य केवल चिकित्सा करना ही न होगा, वरन् रोगो से बचने का उपाय बताना भी उसका कर्त्तव्य होगा। मास मे एक दिन प्रत्येक गॉव मे चिकित्सक व्याख्यान देकर बतावे कि रोग क्यों उत्पन्न होते हैं और उनसे बचने के क्या उपाय हैं। इसी प्रकार समिति की नर्स गर्भवती स्त्रियो का निरीक्षण करे और उनको बच्चों के लालन-पालन करने तथा गर्भवती स्त्रियो को किस प्रकार रहना चाहिये, इसकी शिक्षा दे।

प्रत्येक सदस्य समिति को मासिक चन्दा देगा। जो सदस्य चन्दा देने में असमर्थ हो उससे समिति चन्दा न लेकर शारीरिक परिश्रम करवा ले। इस प्रकार सब ग्रामवासी यदि चाहे तो स्वास्थ्य रक्षक समिति के सदस्य बन सकते हैं। समिति अपने सदस्यों के लिये औषधियॉ भी रक्खे।

ये बडी समितियॉ मिलकर जिला स्वास्थ्य रक्षक समिति का सङ्गठन करे। जिला समिति का कार्य केवल ग्राम समितियों की देखभाल करना, स्वास्थ्य-रक्षा सम्बन्धी प्रचार करना, जिले के किसी स्वास्थ्य-विभाग के कर्मचारियों से लिखा-पढी करके जब कभी उस जिले के किसी भाग मे बीमारी फैल जावे, उनको रुकवाने का प्रयत्न करना होगा।

प्रादेशिक सरकार, जिला बोर्ड इन समितियो को आर्थिक सहायता देकर इस कार्य को आगे बढा सकते हैं। इस प्रकार यदि संगठन हो तो ग्रामीण अपने प्रयत्न के द्वारा ही गॉव में सफाई और स्वास्थ्य रक्षा की समस्या को हल कर सकते हैं।

अभ्यास के प्रश्न

१—गाँव इतने गंदे क्यों होते हैं ? कारण बतलाइये।

२—गाँव के समीप के ताल और पोखरों का गाँव वालों के स्वास्थ्य पर कैसा प्रभाव पड़ता है ? विस्तारपूर्वक लिखये।

३—गाँव के तालों और पोखरों से गाँव वालों के स्वास्थ्य पर जो बहुत बुरा असर पड़ता है, उससे बचने का रास्ता क्या है ?

४—किसान आजकल जो गाँव के किनारे ढेर लगाकर खाद बनाते हैं, उसको तुम कैसा समझते हो ? उसके हानि लाभ लिखिए।

५—खाद को तैयार करने का अच्छा और स्वास्थ्य बढ़ाने वाला ढंग कौन सा है ?

६—गाँवों में रहने वाले खुले मैदानों, खेतों और तालाबों के किनारे शौच जाते हैं, इससे क्या हानियाँ होती हैं ?

७—गाँवों के लिए किस प्रकार के शौचस्थान उपयुक्त होंगे ? इन शौचस्थानों से गाँव के रहने वालों को क्या लाभ होगा ? सक्षेप मे लिखिए।

८—कुओं की मन (जगत) न होने से क्या हानि होती है ? कुओं के पास वाटिका अथवा सोकेज पिट बनाने से क्या लाभ होगा ?

९—घरों के फिजूल पानी के बहाने से जो गंदगी उत्पन्न होती है, उसको दूर करने का क्या उपाय है ?

१०—घरों में रोशनदान और धुआँ निकलने का मार्ग क्यों जरूरी है ? उससे क्या लाभ होगा ?

११—गाँव में कच्ची सड़कों की जो दशा है, उसको लिखिए और बतलाइये कि इन सड़कों का सुधार कैसे हो सकता है ?

१२—गाँव मे चिकित्सा का कैसा प्रबन्ध है सक्षेप में बतलाइये और चिकित्सा का समुचित प्रबन्ध किस प्रकार हो सकता है इस पर अपना मत दीजिए ?

अठारहवाँ अध्याय

ग्रामीण शिक्षा (Rural Education)

भारत मे शिक्षा का अभाव है, फिर गाँवों का तो पूछना ही क्या ? वहाँ तो निरक्षरता का साम्राज्य है। बड़े-बड़े नगरों तथा कस्बों मे शिक्षा की कुछ सुविधाएँ हैं, परन्तु गाँवों में बहुत कम पाठशालायें देखने को मिलेंगी। इसका फल यह हुआ कि गाँव के लड़के निरक्षर रह कर जीवन व्यतीत करते हैं। समस्त स्वतन्त्र भारत मे दो लाख के लगभग प्राइमरी पाठशालायें हैं। इन पाठशालाओं में बहुत अधिक संख्या शहरी पाठ-शालाओं की है। अतएव समस्त स्वतन्त्र भारत के ग्रामों मे एक लाख से अधिक पाठशालाये नही हैं। अब प्रादेशिक सरकारे ग्राम-शिक्षा की ओर अधिक ध्यान दे रही हैं और हजारों पाठशालायें स्थापित की जा रही हैं।

गाँवों मे पाठशालाओं की बहुत कमी तो है ही परन्तु जो भी पाठशालायें गाँव मे हैं वहाँ की शिक्षा बिल्कुल शहराती है। जो शिक्षाक्रम शहरों मे है, वही गाँवों मे चलाया जा रहा है। शहर के शिक्षक ही गाँवों में भेजे जाते हैं। वे ही पाठ्य-पुस्तके, वे ही विषय, वही पद्धति अर्थात् सब कुछ वही है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो गाँव वालों की कोई विशेष आवश्यकताएँ ही नही हैं, और न गाँवों मे कोई ऐसी बात है, जिसको अपनाया जावे। इस शहराती शिक्षा का फल यह हुआ कि ग्रामीण सभ्यता क्रमशः घृणा की वस्तु बनती जाती है। शहर के शिक्षित व्यक्ति तो गाँव की सभ्यता, गाँव की वेश-भूषा और गाँव के रहन-सहन को घृणा की दृष्टि से देखते ही हैं, गाँव के पढ़े-लिखे लड़के भी गाँव की प्रत्येक वस्तु से घृणा करने लगते हैं। यहाँ तक कि "गँवार" शब्द असभ्य, मूर्ख तथा अशिक्षित का पर्यायवाची बन गया है। इन सबका फल यह हुआ कि गाँव का शिक्षित लड़का और उसका अनुसरण करने के कारण गाँव के समस्त लड़के सभ्यता, वेशभूषा तथा रहन-सहन के विषय मे शहरों को आदर्श मानते और उसकी नकल करते हैं। आज गाँव के लड़कों को आकांक्षा यह नही है कि गाँव मे रहे और उसकी उन्नति करे, वरन् उनकी आकांक्षा शहरी जीवन व्यतीत करने, अथवा कम से कम उसकी नकल करने की होती है। यह सब किस कारण हो रहा

है ? प्राइमरी पाठशाला से लेकर विश्वविद्यालय तक में ग्रामीण जीवन, गाँवो की आवश्यकताओ, और ग्रामीण समस्याओं की पूर्ण उपेक्षा की गई है। जो देश ग्राम-प्रधान है, वहाँ ग्रामों की इस प्रकार उपेक्षा हो, क्या यह लज्जा की बात नही है ?

अतएव केवल इसी बात की आवश्यकता नहीं है कि गाँवों में अधिक स्कूल की स्थापना की जावे, वरन् इस बात की भी आवश्यकता है कि ग्राम पाठशालाओं का पाठ्य-क्रम गाँवों की आवश्यकताओं के अनुकूल बनाया जावे। केवल ग्राम पाठशालाओं के पाठ्यक्रम को ही गाँव की परिस्थिति के अनुसार बनाने से काम नही चलेगा। मिडिल स्कूल, हाई स्कूल तथा विश्वविद्यालयों मे भी ग्राम सम्बन्धी विषयों का समावेश होना चाहिये, जिससे कि शिक्षित व्यक्तियों मे ग्रामों के प्रति घृणा की भावना न रहे और वे उनकी ओर आकर्षित हों। उच्च शिक्षा मे ग्राम सम्बन्धी विषय रखने से एक लाभ यह भी होगा कि शिक्षित व्यक्ति ग्रामीण समस्याओ के विषय मे जानकारी प्राप्त करेंगे, और उसके कारण उनकी सहानुभूति गाँवों के प्रति बढ़ जावेगी।

ग्राम्य पाठशाला का पाठ्यक्रम

साधारण लिखाई-पढाई तथा अन्य विषयों के अतिरिक्त, ग्राम्य पाठशालाओं में कृषि सम्बन्धी आवश्यक बातों, सहकारी समितियो के सम्बन्ध में साधारण जानकारी, शारीरिक तथा गाँव की सफाई, तथा अन्य आवश्यक बातों की जानकारी भी कराई जानी चाहिये। पाठशाला का एक छोटा सा फार्म होना चाहिये जिस पर अच्छे ढग से खेती पाठशाला के लडके स्वयं करे, और उन पर नई बातो का अनुभव प्राप्त करे जिनको कृषि विभाग खेती के सुधार के लिये आवश्यक समझता है। पाठशाला की सफाई के लिए एक आदर्श होना चाहिये। प्रतिदिन विद्यार्थियों की शारीरिक स्वच्छता का निरीक्षण होना चाहिये। साफ कैसे रहना चाहिये, इस सम्बन्ध मे उन्हे सब बाते जाननी चाहिये। पाठशाला मे वे सब बाते बतानी चाहिये जो गाँव की सफाई के लिये आवश्यक समझी जावें। ग्राम पाठशालाओं में किसी कौशल की शिक्षा अवश्य दी जानी चाहिये।

प्रत्येक पाठशाला मे एक बालचर ट्रूप (Scout troop) होना

चाहिए जिससे बालक अच्छी आदतें सीखें और उनमे सेवा की भावना जाग्रत हो। किन्तु बालचर ट्रूप केवल दिखाने के लिए न हो। पाठशाला के विद्यार्थियो को वे खेल, जिनको कि गॉव मे प्रचार करना अभीष्ट है, नियम के साथ सिखाये जावें।

यदि महात्मा गाधी की वर्धा योजना के अनुसार पाठशालाओं में उद्योग-धन्धो के आधार पर शिक्षा देने की व्यवस्था की जावे तो ग्राम पाठशालाओं को भी उस योजना मे सम्मिलित करना चाहिये। यदि वर्धा योजना स्वीकृत न भी हो तो भी ग्राम पाठशाला मे ग्रामीण उद्योग-धन्धों की शिक्षा का प्रबन्ध होना चाहिए। ग्राम पाठशाला की पढाई का उद्देश्य गॉव के लडके को केवल साक्षर बना देना ही नही होना चाहिए, वरन् उसका उद्देश्य उनको साक्षर बनाने के अतिरिक्त अच्छा ग्रामीण और सफल कृषक बनाना होना चाहिए।

स्त्री शिक्षा

किन्तु एक बात ध्यान मे रखने की है। बिना लड़कियों को शिक्षित बनाये, गॉवो मे भी शिक्षा का विस्तार नही हो सकता और न गाँवों का सुधार ही हो सकता है। आजकल ग्राम-सुधार की बहुत चर्चा हैं; परन्तु ग्राम-सुधार कार्य मे लगे हुए लोग यह भूल जाते हैं कि जो परिवर्तन वे गॉव तथा गॉव वालों के घरों मे लाना चाहते हैं, वे बिना गॉव की स्त्रियों की इच्छा के लाये ही नही जा सकते। जब तक गॉव की स्त्रियॉ उन परिवर्तनों को नहीं अपनातीं, तब तक उनकी उपयोगिता को समझते हुए भी गाँव के पुरुष उनको स्वीकार ही नही कर सकते। इस कारण गॉव की लड़कियों की शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है।

गॉव मे लड़को की ही शिक्षा की ओर जब किसी ने ध्यान नही दिया तो लड़कियो की शिक्षा के विषय मे पूछना ही क्या है ? उसकी तो नितान्त अवहेलना की गई है। अब समय आ गया है कि लड़कियो की शिक्षा का महत्व समझा जावे और उस पर ध्यान दिया जावे।

लडकियों की शिक्षा किस प्रकार की हो, इस पर जहाँ तक गॉवों का सम्बन्ध है, दो मत नही हो सकते। लड़कियों को साक्षर बनाने के अतिरिक्त उन्हे कुशल गृहिणी बनाने के लिये जिन बातों की आवश्यकता है, वे सभी

बातें उन्हे सिखलाई जानी चाहिये। खाना बनाना, भिन्न-भिन्न खाद्य पदार्थों के गुण तथा उनका मनुष्य के स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव होगा इसका ज्ञान, सिलाई, घर के अन्य सब कार्य, हिसाब रखना, साधारण बीमारियों तथा छूत के रोगों के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी चूहों, मच्छरों तथा मक्खियों से क्या हानि पहुँचती है, इसका ज्ञान, कुछ उपयोगी और सदैव काम मे आने वाली औषधियों का उपयोग, बच्चों का लालन-पालन तथा घरों को सुन्दर बनाना, ये कुछ ऐसे विषय हैं, जिन्हे बडी लडकियों को सिखाने की आवश्यकता है।

परन्तु भारत मे केवल लडके और लड़कियों की शिक्षा के प्रबन्ध करने से गाँवों का शीघ्र ही सुधार न हो सकेगा। यदि हम चाहते हैं कि गाँवों में नवीन जीवन का प्रादुर्भाव शीघ्र ही हो तो हमें प्रौढ़ों (adults) को भी शिक्षित बनाने का प्रबन्ध करना होगा। आजकल यदि गाँवों में कोई लड़का कुछ पढता भी है तो प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करने के उपरान्त, वह सब भूल जाता है और पहले की ही भाँति निरक्षर बन जाता है। माता और पिता अशिक्षित होते हैं, इस कारण वे लड़के और लडकियों के लिये ऐसा कुछ प्रबन्ध नहीं करते कि वे पढ़ा-लिखा न भूल जावे। शिक्षित माता-पिता के पुत्र और पुत्रियाँ पढना-लिखना भूल ही नहीं सकते। प्रौढों की शिक्षा ग्राम सुधार कार्य को शीघ्र सफल बनाने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। प्रौढ़ की शिक्षा के लिए रात्रि पाठशालाओं की योजना करनी होगी। स्त्री और पुरुषों की शिक्षा का अलग अलग प्रबन्ध करना होगा। यह कार्य गैरसरकारी कार्यकर्त्ताओं को, जिनमें सेवा भाव हो, सौंपना चाहिये। गाँव की पंचायत से उन्हे इस कार्य में सहायता मिल सकेगी। सहकारी शिक्षा समितियाँ (co-operative education societies) स्थापित करके यह कार्य और भी अच्छी तरह से चलाया जा सकता है, जैसा कि पजाब में हुआ है। स्त्री और पुरुषों के लिये अलग-अलग समितियाँ स्थापित होनी चाहिए। गाँव के सेवा भाव वाले और पढे-लिखे स्त्री-पुरुषों को इस कार्य में अपना थोडा सा समय देने पर राजी किया जावे, तब ही काम मे सफलता मिल सकती है। शिक्षा के सम्बन्ध मे जो भी रात्रि पाठशाला का काम हो = समिति, चन्दे के रूप में इकट्ठा करे, चन्दा पैदावार के रूप मे भी जमा

किया जा सकता है। यदि सरकार उस प्रकार की समितियो को सहायता दे, तो उनके द्वारा केवल प्रौढों (adults) को ही शिक्षा का प्रबन्ध नही वरन् गाँव के लडके-लडकियों की शिक्षा का प्रबन्ध किया जा सकता है। किताबी शिक्षा के साथ-साथ, गाँव वालों मे अखबार तथा अन्य पुस्तको को पढ़ने की आदत भी डालनी चाहिये। उसके लिए समिति पुस्तकालय और वाचनालय खोल सकती है।

ग्राम्य पाठशाला मे शिक्षा समाप्त करने के उपरान्त गॉव का लड़का यदि मिडिल स्कूल मे शिक्षा प्राप्त करने चला जाता है, तब तो कोई बात ही नही, अन्यथा यह भय रहता है कि कहीं पढ़ना लिखना भूल न जावे। इस भय को दूर करने, गॉव के लड़कों की साक्षरता को स्थायी बनाने और उनके ज्ञान की वृद्धि करने के लिए पुस्तकालयों की स्थापना उतनी ही आवश्यक है जितनी पाठशालाओं को स्थापित करने की। शिक्षा-प्रचार के साथ साथ ग्राम्य पुस्तकालयों की नितान्त आवश्यकता है। पुस्तकालय घूमने-फिरने वाले भी हो सकते हैं। इसके लिए आवश्यक यह होगा कि गॉवों के लिए साप्ताहिक समाचार-पत्र निकाले जावें और ग्राम्य पुस्तकालयों के लिए ग्रामोपयोगी सरल पुस्तकें लिखाई जावें। कुछ पुस्तके तो स्थायी रूप से प्रत्येक गॉव मे रहे और अन्य पुस्तकों के पच्चीस-पच्चीस पुस्तको के सेट बनवा दिये जावें, जो एक गॉव से दूसरे गॉव मे घूमते रहे।

रेडियों के द्वारा भी गाँव में ससार तथा देश की हलचलों के विषय मे जानकारी कराई जा सकती है और मनोरजन के साथ-साथ उनका ज्ञान-वर्धन भी किया जा सकता है। यदि देखा जावे तो रेडियो का प्रचार कार्य गॉव मे बहुत उपयोगी हो सकता है। जहॉ जलविद्युत् है, वहॉ रेडियो सेट अवश्य लगवाना चाहिये। रेडियो प्रोग्राम भी गॉव के लिए उपयोगी हो, ऐसा प्रबन्ध होना चाहिये।

ग्राम्य शिक्षक

जहाँ ग्राम शिक्षा अत्यन्त महत्वपूर्ण है, वहाँ वह एक अत्यन्त कठिन समस्या भी है। गॉव मे शिक्षा प्रचार के लिए देश को ऐसे ग्राम शिक्षकों की आवश्यकता होगी कि जो गाँवों से सहानुभूति रखते हों और गॉव मे जाकर सेवा-कार्य करने को तैयार हों। लडकियों की शिक्षा की समस्या तभी हल

हो सकती है जब ग्राम शिक्षकों की पत्नियो को ग्राम-अध्यापिका बनने के लिए उत्साहित किया जावे और उनको आवश्यक शिक्षा दी जावे। इस कार्य के लिए बहुत धन और शिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता होगी। परन्तु बिना इस कार्य को किये निस्तार भी नही है।

ग्राम्य शिक्षक के सम्बन्ध मे विचार करते समय हमे एक बात न भूलनी चाहिये। गाँवो की पाठशाला के शिक्षक मे नीचे लिखे गुण हों :—

(१) गाँवों से जिन्हे प्रेम हो जो गाँवों से घृणा न करते हों वरन् गाँवों की सेवा करने मे जिन्हे आनन्द मिलता हो। शहरी वातावरण में पले हुए अध्यापक गाँवों से घृणा करते हैं परन्तु नौकरी न मिलने पर गाँवों की पाठशालाओं मे पढाने लगते हैं। ऐसे अध्यापको से गाँव का हित न होगा।

(२) ग्राम्य अध्यापक को फैशन से दूर सादा होना आवश्यक है नही तो वह ग्राम वासियो मे भी फैशन का प्रचार करेगा और अपनी बुरी आदतो को फैलावेगा।

(३) ग्राम्य अध्यापक ऐसा होना चाहिये जो शारीरिक परिश्रम के महत्व को समझता हो, स्वयं परिश्रम करे और विद्यार्थियों मे शारीरिक परिश्रम के प्रति आदर उत्पन्न करे।

सक्षेप मे हम कह सकते है कि ग्राम्य शिक्षक एक सेवक हो। वह सदा परिश्रमी, और गाँव के जीवन को पसन्द करने वाला हो। नही तो उसके सम्पर्क में आकर गाँव के बालकों मे ग्राम के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न होगी और शारीरिक परिश्रम के प्रति अरुचि उत्पन्न हो जावेगी।

शिक्षा-योजना की सफलता के लिये यह भी जरूरी है कि हर एक गाँव मे सरकार कानून बनाकर प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य कर दे। प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य तो होना ही चाहिये, वह निःशुल्क (बिना फीस) भी होनी चाहिए, तभी भारत से अशिक्षा का रोग मिट सकता है। यह देश के लिए अत्यन्त लज्जा की बात है कि यहाँ की केवल १२ प्रतिशत जनसख्या लिख पढ सकती है। सच तो यह है कि जब तक देश से अशिक्षा का रोग दूर नही हो जाता, तब तक किसी भी प्रकार की उन्नति नहीं हो सकती।

हर्ष की बात है कि उत्तर प्रदेश मे काग्रेस सरकार, इस प्रकार का नियम बनाने जा रही है कि जो युवक विश्वविद्यालयों मे उच्च शिक्षा प्राप्त करेंगे,

वे गाँवों मे शिक्षक का कार्य करें। उससे ग्राम शिक्षा की समस्या को हल करने मे सुविधा होगी।

सारे देश मे कोई भी सुधार-कार्य पूरी तरह से सफल नही होता, इसका मुख्य कारण जनता का अशिक्षित होनी ही है। अतएव गाँवो की उन्नति के लिये भी शिक्षा की नितान्त आवश्यकता है।

सार्जेन्ट रिपोर्ट

युद्ध के उपरान्त भारत मे शिक्षा की उन्नति किस प्रकार की जावे, इस सम्बन्ध मे जाँच करने के लिये भारत सरकार ने एक बोर्ड स्थापित किया था, जिसके मन्त्री श्री सार्जेन्ट महोदय थे, जो भारत सरकार के शिक्षा विषयक मामलों के सलाहकार थे। बोर्ड ने युद्ध के उपरान्त भारत मे शिक्षा किस प्रकार फैले, इस सम्बन्ध मे एक रिपोर्ट प्रकाशित की है। ग्रामो मे शिक्षा (प्रारम्भिक) किस प्रकार हो, इस सम्बन्ध मे नीचे लिखी सिफारिशे की गई हैं।

(१) हमारी राय मे भारत में अनिवार्य और नि:शुल्क (बिना फीस) प्रारम्भिक शिक्षा ६ से १४ वर्षों तक के लड़के-लड़कियो के लिए सर्वत्र शीघ्र ही प्रचलित कर देना चाहिये। ऐसा करने के लिये लगभग १८ लाख अध्यापकों की जरूरत होगी और २०० करोड़ रुपया व्यय होगा। इसलिए यह योजना लगभग ४० वर्षों मे पूरी होगी।

(२) शिक्षा किसी दस्तकारी के द्वारा दी जावे, जिसे बेसिक शिक्षा-पद्धति कहते हैं।

(३) इस योजना को सफल बनाने के लिए अध्यापकों की आज जो गिरी हुई दशा है, उसे दूर करना होगा। उन्हे उचित वेतन देना होगा और योग्य व्यक्तियों को अध्यापक बनने के लिए उत्साहित करना होगा।

यदि यह योजना काम मे लाई गई, तो आशा है, गाँवों मे आज जो अशिक्षा का अन्धकार है, वह दूर हो सके और गाँव वाले शिक्षित हो सकें।

निर्माण महात्मा गाँधी के नेतृत्व में तालीमी सघ ने किया था, और वह वर्धा योजना के नाम से प्रसिद्ध है। तालीमी सघ ने जो बेसिक (Basic) शिक्षा पद्धति निकाली है, उसका उद्देश्य तो यह है कि बालक किसी धन्धे के आधार पर और उसके द्वारा सभी आवश्यक विषयों की शिक्षा-प्राप्त कर सके, जिससे उसका पूर्ण विकास हो सके। महात्मा गाँधी का तो यह मत था कि भारत जैसे निर्धन देश मे करोडो व्यक्तियों का शिक्षा-व्यय इतना अधिक होगा कि राष्ट्रीय सरकार भी उतना व्यय करने में असमर्थ होगी। अस्तु, शिक्षा-पद्धति ऐसी होनी चाहिये कि उसका खर्चा भी निकल सके। इसलिये उन्होंने धन्धे के द्वारा शिक्षा देने पर जोर दिया है। उनका कहना है कि विद्यार्थी जो वस्तुएँ पढते समय तैयार करेगे, उनको बेचकर बहुत कुछ शिक्षा का व्यय पूरा किया जा सकता है। अभी तक महात्मा गाँधी का इस योजना को, देश के शिक्षा-शास्त्रियों ने स्वीकार नहीं किया है। वर्धा योजना मे केवल ७ वर्ष से १४ वर्ष तक के बालकों की शिक्षा का प्रबन्ध किया गया है।

पढना-लिखना सीखना जरूरी है ही, परन्तु हमको गाँवो मे उस प्रकार की शिक्षा का प्रचार करना है कि जो गाँव वालों की मनोवृत्ति को बदल सके। आज गाँवों मे जिस प्रकार की सामाजिक और धार्मिक कुरीतियाँ फैली हैं, वे दूर हो सके। शिक्षा ऐसी होनी चाहिये कि उनका सामाजिक और धार्मिक दृष्टिकोण उदार बने, उनमे अपने पैरों पर खडे होने की भावना पैदा हो, उनमे देश के प्रति प्रेम पैदा हो और श्रम के महत्व (Dignity of Labour) को समझ सके।

अशिक्षा के कारण जो आज बहुत से कुसस्कार गाँव वालों मे पाये जाते है, उनमे आपस मे जो द्वेष और लडाई झगडा देखने को मिलता है और आपस के सहयोग की भावना का आज जो नितान्त अभाव है, हम उसका अन्त करना चाहते है और गाँववालो के जीवन को सुखी और सम्पन्न बनाना चाहते हैं। हमारी शिक्षा का ध्येय होगा, गाँववालो को एक अच्छा नागरिक (Citizen) बनाना और जीविकोपार्जन के लिये उन्हे पूर्ण तरह से योग्य और उपयुक्त बनाना। दूसरे शब्दों में उनकी शिक्षा ऐसी होनी चाहिये कि वे अपने शिक्षाकाल में कोई न कोई ऐसा उपयोगी कार्य

सीखे जिसके द्वारा वे अपने परिवार का पालन-पोषण कर सकें। इस प्रकार की शिक्षा वही हो सकती है, जो एक लक्ष्य को सामने रख कर दी जावे।

प्रौढ शिक्षा (Adult Education)

केवल लडके-लडकियों को शिक्षित बना देने से हो हमारे गाँवों की समस्या हल नही होगी। हमे प्रौढों को भी शिक्षित करना होगा। जब तक घर मे बडे पुरुष और स्त्रियाँ भी शिक्षित नही होंगी ग्राम-सुधार का कार्य सफल नहीं हो सकता। जब तक हम गाँव के प्रौढ स्त्री-पुरुषो को शिक्षित नहीं बनाते, तब तक गाँवों से गदगी, रोगों तथा रूढियो और सामाजिक कुरीतियों को दूर नहीं किया जा सकता, और न गाँवों मे खेती मे सुधार और उद्योग-धन्धों की उन्नति ही सम्भव है। प्रौढो को शिक्षित करके ही हम उनके दृष्टि-कोण को बदल सकते है, उनमें स्वाभिमान और आत्म-विश्वास उत्पन्न कर सकते हैं और गाँव से कलह और द्वेष को दूर कर सकते हैं। सच तो यह है कि ग्राम-वासियो की कार्य-क्षमता को बढाने के लिए प्रौढ शिक्षा की नितान्त आवश्यकता है।

प्रौढ शिक्षा के लिए हमे विशेष प्रबन्ध करना होगा। रात्रि पाठशालाओं का आयोजन करना होगा, मैजिक लैन्टर्न, फिल्मो तथा रेडियो, तथा हेलमेल दिवस मनाकर उन्हे शिक्षित बनाना होगा। प्रौढों को केवल अक्षर ज्ञान कराने से ही काम नही चलेगा वरन् उनको साक्षर बनाने के अतिरिक्त आधुनिक समस्याओ की भरपूर जानकारी करानी होगी। उनको अधविश्वास, रूढिवादिता और भाग्यवाद के अधकार से निकाल कर उन्नति के पथ पर आगे बढाना होगा।

आज भारत स्वतन्त्र हो गया है और हमने जनतन्त्र को स्वीकार किया है। प्रत्येक बालिग स्त्री-पुरुषों को मत देने का अधिकार दिया गया है। ऐसी दशा मे यदि हमने प्रौढ शिक्षा के द्वारा प्रौढ ग्रामीणों को शिक्षित नहीं बनाया तो वे अपना मत (वोट) ऐसे व्यक्तियों को न देकर जो योग्य देश-भक्त और ईमानदार हो ऐसे चतुर व्यक्तियों को दे सकते हैं जो योग्य, सच्चे और ईमानदार न हों। ऐसी दशा में देश का बहुत अहित होगा। अतएव देश के हित को ध्यान मे रखते हुए प्रौढ शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है।

अभ्यास के प्रश्न

१—गाँव वाले जो यह कहते सुने जाते हैं कि "लड़कों को पढाने से वे खेती के काम के नहीं रहते" इसका कारण क्या है ?

२—शहरों जैसी शिक्षा गाँवों के लड़कों को देने का क्या परिणाम हुआ है ?

३—गाँव की पाठशालाओं का पाठ्यक्रम कैसा होना चाहिये ?

४—बालचर किसे कहते हैं ? बालचर ट्रूप की व्यवस्था गाँव की पाठशाला मे करने से क्या लाभ होगा ?

५—गाँव की पाठशालाओं में, खेती और गाँव के उद्योग-धन्धों के सम्बन्ध मे क्यों शिक्षा देनी चाहिये।

६—गाँव की उन्नति के लिए लडकियों को पढाना क्यों जरूरी है ?

७—गाँव की लडकियों की शिक्षा किस प्रकार की होनी चाहिये ?

८—गाँव वालों को शिक्षित बनाने के लिए, ग्राम वाचनालय और पुस्तकालय क्यो जरूरी हैं ? गाँवो मे किस तरह के पुस्तकालय खोले जाने चाहिए ?

९—गाँव की पाठशाला किस प्रकार गाँव का सुधार करने मे सहायक हो सकती है ?

१०—गाँव के लिये कैसे शिक्षक चाहिए ?

११—प्रौढ शिक्षा से तुम क्या समझते हो ?

१२—तालीमी सघ क्या कार्य करता है ?

उन्नीसवाँ अध्याय

मनोरंजन के साधन

मनुष्य के जीवन को सुखमय बनाने के लिए, उसकी कार्य-क्षमता को बढाने के लिए, उसके स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए मनोरजन अत्यन्त आवश्यक है। दिन भर काम करने के उपरान्त मनुष्य का शरीर तथा मस्तिष्क थक जाता है। उस समय थोडा सा मनोरजन उसमे नवीन स्फूर्ति

उत्पन्न कर देता है। यदि मनुष्य सर्वदा कार्य करता रहे, विश्राम करने के अतिरिक्त उसके पास मनोरंजन का कोई साधन न हो, तो उसका जीवन नीरस हो जावेगा और उसकी कार्य-क्षमता घट जावेगी। यह स्वाभाविक है कि मनुष्य प्रतिदिन एक ही प्रकार का जीवन व्यतीत करते करते ऊब जाता है। उदाहरण के लिये यदि कोई व्यक्ति मस्तिष्क का ही कार्य करता है और अधिकतर बैठा ही रहता है तो उसको कभी-कभी पैदल चलने की इच्छा होती है और खेल तथा सगीत से उसे सुख मिलता है। जीवन मे थोडा सा परिवर्तन हर एक को सुखद प्रतीत होता है। इसी कारण मनुष्य समाज ने भिन्न-भिन्न प्रकार के मनोरञ्जन ढूँढ निकाले हैं, जिनसे दैनिक कार्य की नीरसता नष्ट होती है और जीवन अधिक सुखमय और सरस बनता है। मनोरञ्जन की आवश्यकता वृद्ध, प्रौढ, और बालकों, सभी को होती है। हाँ, बालकों को खेलकूद की अधिक रुचि होती है और वह स्वाभाविक भी है।

आज भारत के ग्रामों की ऐसी शोचनीय दशा हो रही है कि गाँव वालों को मनोरञ्जन के साधन भी उपलब्ध नहीं हैं। गाँववालों का जीवन अत्यन्त नीरस बना हुआ है। यही कारण है कि जो युवक थोड़ी सी भी शिक्षा पा जाता है, वह गाँव मे रहना नहीं चाहता। गाँव में खेल तथा मनोरञ्जन के साधनों का इतना अधिक अभाव है कि यदि दो बैल या कुत्ते आपस मे लड़ते हैं, तो उस लड़ाई को देखने के लिये ही भीड़ इकट्ठी हो जाती है। गाँव बहुत ही सुनसान और निर्जन स्थान होता है। यही कारण है कि किसान उदास मनोवृत्ति वाला होता है और उसकी बुद्धि का विकास नही होता, क्योंकि उसको कोई बात देखने-सुनने तथा उस पर विचार करने के लिये नहीं मिलती।

ग्रामीणों की बुद्धि का विकास तथा उनकी निराश मनोवृत्ति का नाश तभी हो सकता है जब कि वे कभी-कभी खेल खेलें, तमाशे, प्रदर्शनियाँ तथा मेले देखें और उन्हे ससार मे क्या हो रहा है इसके समाचार प्रतिदिन मिलते रहे। यही नही सायकाल को जब वे काम से थककर घर पर आवे तो उनके लिये थोड़े से मनोरञ्जन की भी आवश्यकता है जिससे उनका मस्तिष्क और शरीर ताजा हो जावे। प्रौढ़ों के अतिरिक्त गाँव के लड़कों

के लिये तो खेल की और भी अधिक आवश्यकता है जिससे उनमें अनुशासन (Discipline), साहस, फुर्ती तथा सामूहिक भावना का उदय हो।

गाँवो के खेल

आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक गाँव मे खेल के लिये एक मैदान तैयार किया जावे और ऐसे खेलों का प्रचार किया जावे जो कम खर्चीले हों, जिनमे अधिक लोग भाग ले सकें और जिनके द्वारा खेलने वालों मे सामूहिक सगठन तथा अनुशासन का भाव उदय हो। इस दृष्टि से फुटबाल और कबड्डी उपयोगी हैं। अन्य भारतीय खेल जो भिन्न-भिन्न प्रदेशों में प्रचलित हों उनका भी गाँवो मे प्रचार किया जावे।

भारतीय खेल

हमारे देश मे भिन्न-भिन्न प्रदेशों मे बहुत तरह के खेल प्रचलित हैं, जैसे नमक-चोर, रामडडा इत्यादि। इन सब खेलों को इकट्ठा करके उनके नियम इत्यादि बनाकर पुस्तकें प्रकाशित कराई जावें और उन उन खेलों का गाँवों मे प्रचार किया जावे। साथ ही नये खेल प्रचलित किये जावें, जैसे वालीबाल बासकैटबाल इत्यादि।

जरूरत इस बात की है कि एक 'ग्रामीण खेल बोर्ड' स्थापित किया जावे जिस प्रकार से अखिल भारतीय फुटबाल, क्रिकेट तथा हाकी और टेनिस के लिये बोर्ड स्थापित हैं। 'ग्रामीण खेल बोर्ड' भारतीय खेलों का प्रचार गाँवों मे करने और उनकी देखभाल इत्यादि का काम करे। खेल ऐसे हों जो अधिक खर्चीले न हों, जिन्हे अधिक व्यक्ति खेल सकें और जिनसे सगठन, सामूहिक भावना, शारीरिक विकास, स्फूर्ति, साहस, तथा अनुशासन का उदय हो।

गाँव का स्काउट ट्रुप

गाँवों में बालचर आन्दोलन का प्रवेश अवश्य होना चाहिये। इससे गाँवों को बहुत लाभ होगा, गाँव के युवकों में सगठन उत्पन्न होगा, मिलजुल कर कार्य करने की आदत पड़ेगी। गाँव मे जो बहुत सी बुराइयाँ हैं उनके दूर करने मे इन शिक्षित बालचरों से बहुत सहायता मिल सकती है। गाँव मे भ्रातृभाव भी इस आन्दोलन के द्वारा उत्पन्न हो सकता है।

गॉव की सफाई, सड़कों को ठीक रखना, फसल के कीड़ों को नष्ट करना, तथा गॉव में मनोरंजन का साधन उपलब्ध करने मे वालचर बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। गॉव को तो लाभ होगा ही, बालचरो को इसी आन्दोलन के द्वारा स्वयं एक मनोरंजन का साधन प्राप्त हो जावेगा और उनका शारीरिक, मानसिक तथा चरित्र विषयक विकास होगा।

भजन तथा भजन मंडलियाँ

गॉव के लोग भजन बहुत पसन्द करते हैं। यदि प्रत्येक प्रदेश में ऐसे भजनों का संग्रह किया जावे जो ग्रामीण जीवन का दिग्दर्शन कराते हैं, अथवा जिनमे गॉवों की प्रचलित कुरीतियों का विवरण है और जो सरल भाषा मे लिखे गए हों, तो बहुत अच्छा हो। आवश्यकता पडने पर ऐसे भजन योग्य व्यक्तियों से लिखवाये जावे और उनको प्रकाशित कराकर उनका गॉवों में प्रचार कराया जावे। गॉव की पाठशाला के विद्यार्थियों, वालचरों, स्त्रियों और प्रौढो की भजन-मडलियाँ बनाई जावें जो उन्हीं भजनों को उत्सव, त्योहार तथा अन्य अधिवेशनों के समय पर गाया करे। भजनों के प्रचार से दो लाभ होंगे, एक तो प्रचलित कुरीतियों के विरूद्ध वातावरण बनेगा दूसरे मनोरंजन भी होगा। हमारे गॉवों में अत्यन्त प्राचीन कला पूर्ण नृत्य होते हैं उन्हे भी फिर से जीवित करना चाहिये।

नाटक तथा प्रहसन

ग्राम सुधार का कार्य करने वाले गाँव की पाठशाला के अध्यापक की सहायता से प्रत्येक गॉव में यदि मनोरंजन तथा खेलकूद का प्रबन्ध करने वाली सभा बनावे, जिनमें गॉव के प्रमुख लोग भाग लें तो इस दिशा में बहुत कुछ हो सकता है। योग्य लेखकों से प्रत्येक प्रादेशिक भाषा में गाँव की प्रति दिन की समस्याओं से सबन्ध रखने वाले नाटक और प्रहसन लिखवाये जावे और गाँव के युवकों की सहायता से होली, दिवाली, रामलीला, ईद, बडा दिन इत्यादि त्योहारों तथा अन्य उत्सवों पर वर्ष भर में तीन चार बार चाँदनी रात्रि में, स्कूल अथवा किसी चौपाल पर दिखलाये जावे तो गावों में सुरुचिपूर्ण मनोरंजन का एक अच्छा साधन उपलब्ध हो सकता है।

रेडियो

रेडियो, संसार को विज्ञान की अत्यन्त उपयोगी देन है। मनोरंजन, और शिक्षा-प्रचार के लिये रेडियो से अच्छा और कोई दूसरा साधन नहीं है। यदि प्रत्येक गाँव मे अथवा समीपवर्ती दो तीन गाँवों मे एक रेडियो सेट लगा दिया जावे और प्रत्येक प्रदेश में प्रदेशीय ब्राडकास्टिंग स्टेशन स्थापित कर दिये जावे तो ग्रामीणों के लिये प्रत्येक दिन प्रोग्राम रक्खा जा सकता है। सायंकाल गाँव के लोग इकट्ठे होकर बीमारियों को दूर करने, पशुओं के पालन, गल्ले का भाव, खेती के नवीन तरीकों और गाँव की समस्याओं पर विशेषज्ञों द्वारा बताई हुई बातों से अपना मन बहला सकते हैं और जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। यदि रेडियो का ठीक-ठीक उपयोग किया जावे तो अशिक्षित ग्रामीण को संसार में क्या हो रहा है, उनके देश में क्या हो रहा है, गाँव की समस्याओं को कैसे हल किया जा सकेगा इत्यादि विषयों का पूरा ज्ञान कराया जा सकता है। प्रादेशिक सरकार रेडियो सेट दे और गाँव के लोग उसके रखने का व्यय सहन करें तो यह योजना सफल हो सकती है। डिस्ट्रिक्ट बार्ड भी इसमे सहायता दे सकते हैं।

मैजिक लैन्टर्न तथा सिनेमा-शो

प्रत्येक सरकारी विभाग, जिसका सम्बन्ध गाँव से है अपने विभाग से सम्बन्ध रखने वाली समस्याओं के चित्र बनवाये और लैन्टर्न के द्वारा उनका समय-समय पर प्रदर्शन कराया जावे। उदाहरण के लिये स्वास्थ्य विभाग, कृषि विभाग, उद्योग विभाग, सहकारिता विभाग, शिक्षा विभाग तथा पशु-चिकित्सा विभाग अपने-अपने विषय के चित्र तैयार करावे और उनका प्रदर्शन हो। मेलों और उत्सवों के अवसर पर इनका प्रदर्शन विशेष रूप से किया जावे।

ऐसी सिनेमा फिल्म तैयार करना इस समय कठिन दिखलाई देता है जो गाँव वालों के लिये उपयोगी हो, क्योंकि बोलती हुई फिल्म बहुत खर्चीली होती है। साथ ही ग्राम्य जीवन को भली प्रकार चित्रित कर सकने वाले लेखक और उसका प्रदर्शन करने वाले एक्टर्स भी कम हैं। परन्तु प्रत्येक प्रदेश मे वहाँ की बोलचाल की भाषा मे ग्राम्य उपयोगी फिल्म बनवाने

का प्रदेशीय सरकार को अवश्य प्रयत्न करना चाहिये। फिल्म के साथ अच्छे हल, बैल, बीज, बीमारियों, इत्यादि के सम्बन्ध के चित्र भी रहें। घूमने वाला सिनेमा, इन फिल्मो को प्रदेश के गाँवो मे दिखावे और उसके साथ ही प्रचार कार्य भी करे तो गाँवों मे मनोरजन का एक अत्यन्त उत्तम साधन उपलब्ध हो सकता है। परन्तु फिल्म तैयार करवाने मे बड़ी सावधानी करनी होगी। नही तो उसका बुरा प्रभाव भी पड़ सकता है। यह कार्य व्यावसायिक कम्पनियों पर न छोड़ कर सरकार को स्वयं करना चाहिये।

इस प्रकार जब गाँवो मे सुरुचिपूर्ण मनोरजन के साधन उपलब्ध किये जावेगे तथा खेल का प्रबन्ध किया जावेगा तभी ग्रामीण जनता का जीवन सरस बन सकेगा और गाँवों मे आकर्षण उत्पन्न हो सकेगा।

ग्राम-सेवादल

खेलों के सिवाय लडको और युवकों को मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य प्रदान करने के लिए, उनमे सेवा की भावना उत्पन्न करने के लिए ग्राम-सेवादल की बड़ी आवश्यकता है। हर एक गाँव मे एक ग्राम-सेवादल बनाया जावे। ग्राम-सेवादल में गाँव के बड़े लड़के तथा युवक भर्ती किए जावे। उन्हें सेवा का महत्व समझाया जावे जिससे गाँव का हर एक युवक ग्राम सेवा को अपने लिए गौरव समझे। ग्राम-सेवादल नीचे लिखे काम करे:—होली, दिवाली, दशहरा इत्यादि त्योहारों पर गाँव की सफाई करने मे सहायता देना, टिड्डी तथा अन्य फसलों के शत्रुओं (कीड़ों) को मारने मे गाँव वालों की सहायता करना, विशेष अवसरों पर नाटक, प्रहसन, तथा अन्य खेल-तमाशों का आयोजन करके गाँव-गाँव में लोगों का मनोरंजन करना, गाँव के रास्तों को ठीक करना और गाँव में फलों के वृक्ष लगाना। गाँव मे फलों के वृक्ष तो हर एक आदमी को लगाना चाहिये। इससे दो लाभ होंगे। एक तो गाँव की सुन्दरता बढ़ेगी दूसरे फल खाने को मिलेंगे। गाँव के रास्ते ठीक करने और गाँव के गड्ढों को भरने में भी ग्राम-सेवादल गाँव वालों की सहायता कर सकता है।

घरों को अधिक आकर्षक बनाना

जिस प्रकार हमारे गाँवों मे कोई आकर्षण नही है, उसी तरह गाँवों के रहने वालों के घरों मे भी कोई आकर्षण नही रह गया है। जब कभी थका हुआ किसान खेतों पर से आता है तो घर मे उसके लिए ऐसा कोई आकर्षण नहीं होता कि उसका मन बहले। खाली समय मे वह चिलम लेकर किसी चौपाल पर गप्प उडाता है। एक दूसरे की बुराई करना, दूसरों के घरों की आलोचना करना, यही ग्रामीणों का काम रह गया है। इसका फल यह होता है कि एक दूसरे के प्रति ईर्षा, द्वेष और जलन के भाव उत्पन्न होते हैं। पटवारी, मुखिया तथा अन्य व्यक्ति जिनका मुकदमेबाजी तथा लडाई-झगडे से लाभ होता है, इसका लाभ उठाते हैं। यह तभी बन्द हो सकता है जब घरों को आकर्षक बनाया जावे।

घरों को आकर्षक बनाने के लिए वाटिका आन्दोलन अत्यन्त आवश्यक है। फूलों की क्यारियों मे उत्पन्न होने वाले फूल और तरकारी उसके लिए एक आकर्षण की वस्तु होगी। फूलों से घरों को आकर्षक बनाया जा सकता है। लेकिन जहाँ उसके लिए हमे पुष्पवाटिका आन्दोलन चलाना होगा वहाँ गृह-स्वामिनी को भी घरों को अधिक सुन्दर बनाने की शिक्षा देनी होगी। अभी तक ग्राम-सुधार कार्य-कर्त्ताओं ने गृह स्वामिनी की ओर ध्यान ही नहीं दिया है। जब तक गाँवों की स्त्रियाँ ग्रामीण जीवन को मधुर और घरों को अधिक आकर्षक बनाने का काम अपने हाथ मे नही ले लेतीं, तब तक स्थिति ऐसी ही रहेगी।

यह तो स्वास्थ्य और सफाई के परिच्छेद मे ही लिखा जा चुका है कि गृह-वाटिका से दो लाभ होंगे, एक तो उससे फूल और तरकारी मिलेगी, दूसरे, घर के काम मे लाया हुआ पानी जो नाली न होने के कारण सड़ता रहता है और गदगी उत्पन्न करता है, उसका उपयोग हो सकेगा। घर के काम में आने वाले पानी की समस्या को तो पानी सोखने वाले गड्ढों के द्वारा भी हल किया जा सकता है। सडने वाले पानी की समस्या यदि इन गड्ढों (सोकेज पिट) से भी हल किया जावे तो भी गृह-वाटिका तो हर एक घर मे होनी ही चाहिए। प्रकृति ने फूल जैसी सुन्दर चीज उत्पन्न

की है, गाँवों में वह आसानी से उत्पन्न हो सकती है, लेकिन हम उसके आनन्द से वंचित हैं।

इस सम्बन्ध मे एक बात और ध्यान देने योग्य है। गाँवों के कुओं के पास इतना अधिक पानी गिरता है कि दलदल बन जाता है। इस गन्दगी को दूर करने का सहज उपाय यह है कि वहाँ एक छोटी सी वाटिका लगा दी जावे, उससे गदगी तो दूर होगी ही गाँव भी आकर्षक बन जावेगा।

पर्व और त्योहार

पर्व और त्योहार भी मनुष्य जीवन को सरस और सुखी बनाते हैं तथा समाज को जीवन प्रदान करते हैं। अतएव आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने पर्व और त्योहारों को अधिक सजीव बनावें। होली, दिवाली, दशहरा, रक्षाबंधन, भारत के स्वतत्र होने का दिन तथा यदि गाँवो मे मुसलमान और इसाई हों तो ईद और बड़ा दिन सगठित रूप से धूम-धाम से मनाना चाहिये। हाली, दिवाली पर गाँव भर की सफाई का प्रोग्राम रक्खा जा सकता है तथा सुरुचिपूर्ण नाटक, प्रहसन खेलकूद का आयोजन किया जा सकता है। रक्षा-बधन को गाँव वालों को एक स्नेह-सूत्र मे बाँधने का साधन बनाया जा सकता है। दशहरे पर खेल-कूद, व्यायाम, दगल का आयोजन किया जाना चाहिये। ग्राम पंचायत अथवा ग्राम सभा गाँव मे सामूहिक रूप से पर्व और त्योहार मनाने का प्रबन्ध करे तो गाँव के त्योहार और पर्व अधिक सजीव और गाँव के लिए लाभदायक सिद्ध हो सकते हैं। भारत को स्वतंत्रता के दिन को हमे राष्ट्रीय पर्व के अनुरूप मनाना चाहिये। उससे गाँव वालों मे देशभक्ति की भावना उत्पन्न होगी और देश के प्रति उनका क्या कर्तव्य है। उसकी जानकारी होगी। गाँवों के मेलों की भी हमे उन्नति करनी चाहिये।

अभ्यास के प्रश्न

१—हमे मनोरजन और खेल-कूद की आवश्यकता क्यों होती है?

२—मनोरजन और खेल-कूद से मनुष्य के ऊपर कैसा प्रभाव पड़ता है?

३—गाँवों के लिए कैसे खेल-कूद उपयुक्त होंगे?

४—रेडियो के द्वारा गाँवों मे मनोरजन और शिक्षा के कार्य मे कहाँ तक सहायता मिल सकती है?

५—मनोरंजन के साधनों का उपयोग ग्राम-सुधार सम्बन्धी प्रचार कार्य में किस प्रकार किया जा सकता है ?

बीसवाँ अध्याय

स्वास्थ्य-रक्षा के सिद्धान्तों का प्रचार

सर्वसाधारण का यह विचार है कि गाँव स्वास्थ्यप्रद स्थान होते हैं और वहाँ रोग इत्यादि का प्रकोप कम होता है। किन्तु यह धारणा भ्रान्तिमूलक है। भारतीय ग्रामों में रोगों ने स्थायी रूप से अड्डा जमा रक्खा है। प्रतिवर्ष लाखों की सख्या में ग्रामीण इन रोगों के शिकार होते हैं। वर्तमान काल में भारतवासियों की औसत आयु लगभग तेईस वर्ष है जब कि अन्य देशों में चालीस वर्ष या इससे अधिक है। इसी प्रकार यहाँ फी-हजार आदमियों मे से कोई तीस आदमी प्रतिवर्ष मर जाते हैं, जब कि ससार के कितने ही देशों में हजार पीछे केवल दस या ग्यारह ही मरते हैं। इससे स्पष्ट है कि यहाँ स्वास्थ्य सुधार की ओर यथेष्ट ध्यान देने की कितनी आवश्यकता है।

इस सम्बन्ध में आल इंडिया-मेडिकल-रिसर्च-वर्क्स कान्फ्रेंस ने जो प्रस्ताव पास किया है वह ध्यान देने योग्य है। उस प्रस्ताव का आशय निम्न लिखित है—"इस सम्मेलन का विश्वास है कि रोके जा सकने वाले रोगों से भारत में प्रतिवर्ष पचास या साठ लाख मृत्युयें होती हैं और भारत का प्रत्येक व्यक्ति ऐसे रोगों से जिनको रोका जा सकता है, वर्ष में दो सप्ताह से लेकर तीन सप्ताह तक काम करने से बेकार हो जाता है। यही नहीं, सम्मेलन का यह भी विश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति की कार्य-क्षमता इन रोगों से बीस फी सदी घट जाती है। सम्मेलन का अनुमान है कि यदि इन रोगों के द्वारा होने वाली आर्थिक हानि का हिसाब लगाया जावे तो वह अरबों रुपये प्रति-वर्ष होगी।"

स्वास्थ्य रक्षा के लिए निम्नलिखित बातों की आवश्यकता है:—
(१) सफाई, हवा और रोशनी, (२) शुद्ध और पौष्टिक भोजन, (३) परिश्रम अथवा व्यायाम, (४) विश्राम, (५) रोगों से बचने के उपायों की जान-कारी, (६) चिकित्सा का उचित प्रबन्ध। अब हमें यह देखना है

कि भारतीय ग्रामों में ऊपर लिखे स्वास्थ्य-रक्षा के साधन कहाँ तक उपलब्ध हैं।

सफाई, हवा और रोशनी

सफाई, स्वास्थ्य के लिये नितान्त आवश्यक है। यही नहीं, सफाई मनुष्य को आत्मसम्मान, संयम, अनुशासन और मिलजुल कर रहना सिखाती है। सफाई से शारीरिक उन्नति तो होती ही है, मानसिक विकास भी होता है। अतएव ग्राम-सुधार में सफाई का सर्वोच्च स्थान है। केवल शारीरिक सफाई ही यथेष्ट नही समझी जानी चाहिये। कपड़ों, घर, पीने का पानी, गली-गाँव और खेतों, सभी की सफाई आवश्यक है। गाँवो मे सफाई और रोशनी का अभाव है। यह हम 'गाँवों की सफाई" नामक परिच्छेद मे लिख चुके हैं। परन्तु गाँव वालों को अपने शरीर की सफाई के सम्बन्ध मे अधिक सतर्क रहने के लिए; उन्हे इसकी शिक्षा देनी होगी। नियमित रूप से शुद्ध कुएँ अथवा नदी के जल मे प्रतिदिन स्नान करने, कभी-कभी अपने पहिनने के कपडों को साफ करने, दाँतों को प्रतिदिन साफ करने, आँखों को शुद्ध जल से धोने का महत्व उन्हे समझना होगा और ऊपर लिखी स्वास्थ्य प्रदान करने वाली आदतें डलवानी होगी। अभी साधारण किसान इस ओर बहुत ही उदासीन है और इनका महत्व ही नहीं समझता।

इस शारीरिक सफाई की ओर ध्यान न देने के कारण गाँवों में बच्चे, स्त्रियाँ और पुरुष अनेक रोगों से पीड़ित रहते हैं। फोडे-फुन्सी, आँख और दाँत के रोगों का तो सीधा कारण सफाई न करना है। इनमें आँखों का रोग तो गाँव में सर्व-प्रचलित है। गाँव के बच्चों की आँखे देखिये, वे अधिकतर मैली मिलेंगी। आँखों के इन रोगों के कारण बच्चों की आँख खराब हो जाती है। भारत में प्रति हजार अंधो और खराब आँखों वाले स्त्री-पुरुष की संख्या बहुत अधिक है। अधिकांश में बचपन मे ही आँखे खराब हो जाती हैं और आँखें खराब होने का ६० फी सदी कारण गाँव में गन्दगी या असावधानी होती है।

गन्दगी और सड़ी हुई वस्तुओं के विषैले कण हवा से उड़कर गाँव वालों की आँखो में पड़ते हैं। बच्चे गन्दगी के ढेरों के पास खेलते हैं। गन्दे गाँवों में मक्खियाँ बहुत होती हैं और बच्चों की आँखों पर बैठकर उन्हें गन्दा

कर देती हैं। विशेष कर बीमार आँख या गन्दी आँख पर मक्खियाँ और भी अधिक बैठती हैं। जब किसी बच्चे, स्त्री अथवा पुरुष की आँख रोगी होती है तो वे गन्दे हाथों से उसे छूते या मलते हैं। इसका फल यह होता है कि आँख स्थायी रूप से खराब हो जाती है। आँख की बीमारी घर मे तथा क्रमशः गाँव मे फैलती है। यदि ध्यान से देखा जावे तो प्रत्येक गाँव मे ऐसे लोग यथेष्ट सख्या मे मिलेगे जिनकी आँखे स्थायी रूप से खराब हो गई हैं।

इसका केवल एक ही उपाय है, सफाई। गाँव की सफाई, चेहरे और आँखों की सफाई, कपडों की सफाई और शरीर की सफाई ही इस रोग को दूर कर सकती है। जितनी बार भी हो सके, दिन मे उतनी बार आँख साफ की जानी चाहिये, तभी वे रोग मुक्त हो सकती हैं।

शुद्ध और पौष्टिक भोजन

स्वास्थ्य-रक्षा के लिए शुद्ध और पौष्टिक भोजन भी अत्यन्त आवश्यक है किन्तु अधिकाश गाँव वालों को पौष्टिक भोजन तो दूर रहा, भर पेट भोजन भी नही मिलता। जब तक किसान को पूरे पेट भोजन नहीं मिलता, तब तक उसके स्वास्थ्य की उन्नति की आशा करना स्वप्न के तुल्य है। किसान के पास भर पेट अन्न तभी बच सकेगा जब लगान कुछ कम किया जावे, उसके ऋण के बोझ को हल्का किया जावे और किसान वैज्ञानिक ढङ्ग से खेती करके भूमि से अधिक पैदावार उत्पन्न करे। पौष्टिक भोजन की प्राप्ति के लिये किसानों को अपने घरों और खेतों पर अधिक फल और तरकारी उत्पन्न करना, गाय और भैंस पालना चाहिये। शहद की मक्खियों को पालतू बना कर उनसे नियमित रूप से शहद तैयार करवाना और जिन्हे धार्मिक अडचन न हो, उनको मुर्गी पालना चाहिये। किन्तु केवल इतना करने से ही पौष्टिक भोजन की समस्या हल नही हो जावेगी। किसानों की स्त्रियों को पाक-शास्त्र का ज्ञान होना चाहिए। यह तभी हो सकता है जब गाँव की लडकियों को शिक्षा दी जावे। किसान की स्त्री अपने घर, रसोई और बरतनों को बहुत साफ रखती है, यदि वे यह और जान जावें कि मक्खियाँ चूहे तथा अन्य कीड़े-मकोडे मनुष्य को क्या हानि पहुँचाते हैं और जल किस प्रकार दूपित

होता है और उसके पीने से कैसे-कैसे भयंकर रोग उत्पन्न हो सकते हैं तो गाँव बहुत से रोगों से बच जावे।

परिश्रम अथवा व्यायाम

गाँव वालों को व्यायाम कराने की विशेष आवश्यकता नहीं है, खेतों में ही उन्हें यथेष्ट परिश्रम करना पडता है। हाँ अवकाश के समय खेलने से स्वास्थ्य भी बनता है और मनोरंजन भी होता है।

विश्राम

स्वास्थ्य के लिए विश्राम और मनोरंजन की भी आवश्यकता है। यदि किसान अपनी दिनचर्या को ठीक बना ले तो उसे विश्राम भी मिल सकता है।

रोग और उनसे बचने के उपाय की जानकारी

क्षय, प्लेग, हैजा, चेचक, मोतीझरा, मलेरिया, कालाजार तथा हुकवर्म गाँवों के भयंकर रोग हैं। इनके कारण प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में मृत्यु होती है। इन रोगों का मुख्य कारण गाँव का गन्दा होना और गाँव वालों की लापरवाही है।

गाँव की सब प्रकार से, जैसा सफाई के अध्याय में लिखा है, सफाई रखना चाहिए। इतना करने पर इन रोगों का डर कम हो जावेगा। प्रति छः साल बाद चेचक का टीका लगवाने से (यदि चेचक का प्रकोप हो तो उस समय भी टीका लगवाने से) और, रोशनी तथा सफाई का प्रबन्ध रखने से चेचक का भय जाता रहेगा। प्लेग वस्तुतः चूहों का रोग है, अतएव उससे बचने का मुख्य उपाय चूहों को दूर करना है। चूहे रोशनी से घृणा करते हैं, अतएव घरों में रोशनी का पूरा प्रबन्ध करना चाहिए। साथ ही उनके बिलों को बन्द करके, बिल्ली, चूहेदानी तथा जहर का उपयोग करके उनको नष्ट किया जा सकता है। सन्दूक तथा अनाज भरने की चीजों को तनिक ऊँचे पर रखना चाहिए जिससे चूहे उनके नीचे अपने रहने का स्थान न बना लें। जब प्लेग का प्रकोप हो तो हर एक को प्लेग का टीका लगवाना और गांव को छोड़ देना आवश्यक है। हैजा पानी के खराब हो जाने से तथा खराब पानी पीने से होता है। अतएव पीने के पानी को शुद्ध रखना, कुओं की समय-समय पर सफाई करवाना, और उनमें

लाल दवा डालना, भोजन को शुद्ध रखना तथा सफाई रखना ही, उसको रोकने के मुख्य उपाय हैं।

हुकवर्म रोग गाँव वालों के मैदान में शौच जाने से उत्पन्न होता है, अतएव शौचस्थान का प्रबन्ध उसका मुख्य उपाय है। यदि शौचस्थान का प्रबन्ध न हो सके तो गाँव वालों मे पुरानी पद्धति अर्थात् मल को एक फुट गडहे मे दवा देने का प्रचार करना चाहिए। गिनीवर्म नामक रोग दूषित जल पीने से होता है, अतएव शुद्ध जल पीने से इसका भय दूर हो सकता है।

गाँव मे मलेरिया का वहुत प्रकोप होता है और प्रतिवर्ष, वर्षा के उपरान्त गाँव वाले ज्वर से एक सप्ताह से लेकर दो सप्ताह तक पीडित हो जाते हैं। खेती काटने के लिए आदमी नहीं मिलते। उत्तर-प्रदेश मे भी मलेरिया के कारण खेती को वहुत हानि पहुँचती है। मलेरिया की समस्या तनिक कठिन है। मलेरिया एक प्रकार के मच्छरो द्वारा उत्पन्न होती है, अतएव गाँव के आध मील चारों ओर जितने गडहे, खड्ड तथा नाले इत्यादि हों, उन्हे गाँव की पंचायत पटवा दे। जो पाटे नहीं जा सकते उनमे वर्षा के उपरान्त समय-समय पर मिट्टी का तेल छुडवा दिया जावे। यदि कोई तालाब तथा पोखरा ऐसा हो कि जिसका पानी पशुओं के पीने के काम आता हो और उसमे मिट्टी का तेल छुडवाना उचित न समझा जावे, तो उसके चारों ओर वहुत सफाई रक्खी जावे। तालाब के किनारे-किनारे घास, पौधे, कूडा-कर्कट जो भी हो उसको साफ कर दिया जावे। भविष्य में गाँव वालों को तालाब के समीप शौच जाने तथा उसमे कूडा डालने की मनाही कर दी जावे। इतना करने पर मच्छरों का उत्पन्न होना बन्द हो जावेगा और मलेरिया का प्रकोप बहुत कम हो जावेगा। कुनीन और ऐसी आयुर्वेदिक दवाइयों का जो मलेरिया को रोक सकें, गाँव मे खूब प्रचार करना चाहिए। दवाइयाँ सरकार लागत मूल्य पर किसानों को वेचे और जो वहुत निर्धन हैं उन्हे मुफ्त दे।

इन बीमारियो के अतिरिक्त गाँवों मे गन्दी अशिक्षित दाइयों और बच्चा उत्पन्न होने के समय व्यवहार मे लाई जाने वाली गन्दी और हानिकर रस्मों के कारण असंख्य बच्चों तथा माताओं का जीवन नष्ट हो जाता है। अधिकतर

कोई नीच जाति की गदी, वृद्धा स्त्री, जिसको ठीक-ठीक दिखलाई भी नहीं पड़ता और जिसके वस्त्रों तथा नाखून में गन्दगी का विष भरा हुआ है, वह बच्चा उत्पन्न कराने का काम करती है। फिर माता को सबसे गन्दी, अँधेरी कोठरी, जिसमे हवा की गुञ्जाईश ही नहीं हो सकती, बच्चाखाने के लिये दी जाती है। यही नही, घर के सबसे अधिक गदे कपड़े और खाट उसको मिलती है। ऐसी दशा में यदि प्रसव काल मे बहुत सी मातायें अथवा नव-जात बच्चे मर जाते हैं अथवा उसके शरीर में कोई स्थाई खराबी आ जाती है, तो आश्चर्य की बात ही क्या है?

इस समस्या को हल करने का यही एक उपाय है कि गाँव की ऐसी दाइयों को जो ठीक समझी जावें दाई का काम सिखाया जावे और केवल ट्रेन्ड दाइयों को ही प्रसव करने के लिए लाइसेन्स दिया जावे। दाइयों के अतिरिक्त यदि गाँव की अन्य स्त्रियाँ ट्रेनिङ्ग लेना चाहे तो उन्हे भी शिक्षा दी जावे। इनके साथ-साथ प्रचलित गदी रस्मों के विरुद्ध प्रचार किया जावे और गाँव वालों को समझाया जावे कि उनसे उनकी कितनी हानि होती है। ट्रेन्ड दाइयों को पचायत, जिला बोर्ड की सहायता से नौकर रख सकती है। ये ट्रेन्ड दाइयाँ ग्रामीण माताओं को बच्चों के लालन-पालन के सम्बन्ध मे भी उचित परामर्श देंगी।

क्षयरोग या तपेदिक (Tuberculosis)

दुर्भाग्य से पिछले कुछ वर्षों से भारत में क्षयरोग तेजी से फैल रहा है और अब यह रोग गाँव मे भी पहुँच गया है। यह अत्यन्त भयङ्कर छूत का रोग है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि भारत मे केवल इस रोग से ही प्रति वर्ष १५ लाख मनुष्य मर जाते हैं।

सूखी खाँसी आना, सध्याकाल ज्वर सा हो जाना, काम करने में जल्दी थक जाना, नींद न आना, किसी भी काम में जी न लगना, पेट भारी रहना, इसके प्रारम्भिक लक्षण हैं। धीरे-धीरे जब रोग बढ़ने लगता है, तब खाँसी बढ़ती है, शक्ति घटने के साथ शरीर का वजन भी घटने लगता है। सायकाल ज्वर आ जाता है, कफ के साथ खून भी गिरने लगता है। अन्त में आदमी बिलकुल निकम्मा होकर मर जाता है।

यह बीमारी परम्परागत होती है। यदि बाप को हुई है तो लड़के को भी

हो सकती है। इसके कीडे बहुत छोटे होते हैं। एक इञ्च में २५०० कीड़े स्थान पा सकते हैं। यह बीमारी एक के बाद दूसरे को लगती भी बहुत जल्दी है, यहाँ तक कि इस मर्ज के रोगी के थूक से भी हजारों कीड़े फैल जाते हैं। कुटुम्बियों के साथ यह बीमारी प्रेम रखती है। जिस घर में यह एक बार पहुँच जाती है, फिर उस घर से उसका निकलना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो जाता है। यदि यह बीमारी किसी स्त्री को हो गई तो उसके पति और बच्चों का इससे बचना बहुत कठिन होता है।

यह बीमारी उन लोगों को अधिकतर हो जाती है जो गदे घरों में रहते हैं, जहाँ धूप और हवा नहीं पहुँचती। अपनी शक्ति से अधिक कार्य करने, अत्यन्त चिन्ताग्रस्त रहने से भी यह शरीर में बैठ जाती है, और चुपचाप अपना काम करती रहती है। दुर्व्यसन अर्थात् नशा इत्यादि करने, घर की कलह, कर्जदारी के कारण चिन्तित रहने से भी यह बीमारी हो जाती है।

भारत में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में यह रोग बहुत पाया जाता है। स्त्रियों को हवा और रोशनी पूरी तरह से नहीं मिलती। उनको पौष्टिक भोजन भी कम खाने को मिलता है। पर्दे की प्रथा तथा छोटी उमर में विवाह भी इस रोग के मुख्य कारण हैं।

इस रोग से बचने के नीचे लिखे उपाय हैं—

(१) भूख से अधिक कभी न खाओ।

(२) भोजन नियत समय पर करो। यदि भूख न लगी हो तो भोजन न करो। जितना पचा सको उतना खाओ।

(३) अपनी पाचन शक्ति को ठीक रक्खो।

(४) चबा-चबा कर खाओ।

(५) बीच-बीच में उपवास करके पाचन शक्ति को तेज करो।

(६) कुछ पौष्टिक पदार्थ अवश्य लो, जैसे मक्खन, घी, फल इत्यादि।

(७) थूक में क्षय के कीटाणु होते हैं इसलिये घर में फर्श पर, दीवार पर कभी न थूको। कागज, रूमाल या कपडे पर थूक कर उसे जला डालना अच्छा है।

(८) यदि पीकदान में थूको तो उसे गरम जल से साफ रक्खो।

(९) क्षयरोगी को अलग रक्खो, उसके कपडे बर्तन इत्यादि को खौलते पानी में गरम करो और उसे किसी भी काम में न लाओ।

(१०) क्षयरोगी को खुली हवा में रखना चाहिये।

(११) क्षयरोगी को खूब आराम करना चाहिये।

(१२) प्रतिदिन नहाना चाहिये।

(१३) क्षयरोगी को खूब हवादार और खुले मकान मे जहाँ धूप आ सके रहना चाहिये।

(१४) क्षयरोगी के साथ किसी को रहना या खाना न खाना चाहिये।

सरकार ने ऐन्टी ट्यूबरक्लोसिस लीग (Anti Tubeoulosis League) की स्थापना की है, जो इन बातों का प्रचार करती है। किन्तु होना यह चाहिये कि इस रोग को रोकने का पूरा प्रयत्न किया जावे और उसकी चिकित्सा का प्रबन्ध होना चाहिये। इस रोग से देश को भयंकर हानि पहुँच रही है। अब भारत सरकार इस रोग को रोकने के लिए बी० सी० जी० के टीके लगवा रही है।

चिकित्सा का प्रबन्ध

खेद है कि भारतीय ग्रामों मे चिकित्सा का कोई प्रबन्ध नहीं है। ग्रामीण तो राम भरोसे पड़े रहते है। जिला बोर्ड, जिला केन्द्र, तहसीलों और बड़े-बड़े कस्बों में अस्पताल चलता है। किन्तु गाँवों में चिकित्सा का कोई प्रबन्ध नहीं होता। गाँव वाले तहसील तथा जिलों के शफाखानों से बहुत कम लाभ उठा पाते हैं। क्योकि एक तो वे दूर होते हैं, दूसरे वहाँ उनकी कोई सुनवाई नहीं होती। अतएव आवश्यकता इस बात की है कि गाँव में चिकित्सा का समुचित प्रबन्ध किया जावे। किन्तु प्रत्येक गाँव मे चिकित्सा का समुचित प्रबन्ध करना अत्यन्त कठिन है। अतएव जिला बोर्ड पाँच-पाँच या उससे अधिक गाँवो के समूह के बीच एक चिकित्सक रक्खे। प्रादेशिक सरकार इसके लिए जिला बोर्ड को सहायता दे। यदि वैद्य और हकीमों को गाँव में नियुक्त किया जावे तो अधिक अच्छा हो, क्योंकि एक तो वे कम वेतन पर गाँव मे रहना स्वीकार करेंगे, दूसरे देशी दवाइयों का मूल्य बहुत कम होता है। इस कारण ग्राम-वासी उन दवाइयों को खरीद सकेंगे। इन ग्रामीण चिकित्सकों को प्राइवेट प्रैक्टिस करने की आज्ञा न होनी चाहिये। प्रत्येक गाँव में एक स्वास्थ्य-रक्षक समिति बनाई जावे। प्रत्येक गाँव वाले को उसका सदस्य बनाया जावे। सदस्यों से कुछ फीस ली जावे (दो आना प्रति मास)।

चिकित्सक बीच के गॉव मे रहे और एक दिन मे प्रातःकाल ७ से १० तक एक गॉव मे, और सायकाल को दूसरे गॉव मे निश्चित स्थान पर गॉव के मरीजों को देखे। इस प्रकार चिकित्सक एक सप्ताह मे दो बार प्रत्येक गॉव मे चिकित्सा के लिए जावेगा और महीने मे एक बार वह स्वास्थ्य-रक्षा के सिद्धान्तों का प्रत्येक गॉव मे प्रचार करेगा। दवाइयों का मूल्य प्रत्येक गॉव की स्वास्थ्य समिति घर पीछे लगाई हुई फीस से देगी। दवाइयों का मूल्य गॉव वाले ही दें और चिकित्सक का वेतन सरकार तथा जिला बोर्ड दे तो प्रत्येक गॉव मे चिकित्सा का प्रबन्ध अवश्य होगा।

उत्तर प्रदेश की सरकार ने गॉवों में लगभग दो हजार चिकित्सालय खोलने का प्रबन्ध किया था। यह अत्यन्त प्रशसनीय कार्य है। अन्य प्रादेशिक सरकारों का ध्यान भी अब गॉवों की ओर आकर्षित हुआ है। आशा है कि भविष्य मे ग्रामों में चिकित्सा का कुछ प्रबन्ध अवश्य होगा।

अभ्यास के प्रश्न

१—भारत मे साधारण मनुष्यों का स्वास्थ्य अच्छा नहीं है और मृत्यु-सख्या भी यहॉ अन्य देशों से अधिक है, इसका क्या कारण है?

२—स्वास्थ्य रक्षा के लिए जिन चीजों की आवश्यकता है, उनका उल्लेख कीजिये?

३—सफाई का स्वास्थ्य पर कैसा प्रभाव पडता है? यह भी बतलाइये कि गॉव मे सफाई कैसी होती है?

४—शारीरिक सफाई का मनुष्य के स्वास्थ्य पर कैसा प्रभाव पडता है? गॉव के रहने वाले शारीरिक सफाई का कितना ध्यान रखते हैं?

५—साधारण गॉव के रहने वालों का दैनिक भोजन क्या होता है? क्या वह भोजन उसके स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए काफी है?

६—उन रोगों का उल्लेख कीजिये, जिनसे गॉवों मे लोग अधिक सख्या में मरते हैं?

७—चेचक, हैजा, प्लेग और मलेरिया क्यो और कैसे होते हैं? इन रोगों से बचने के उपाय क्या हैं?

८—गन्दी और अशिक्षित दाइयों से बच्चे पैदा करवाने से क्या हानि होती है?

९—गाँवों मे यदि कोई बीमार हो जाता है तो वह अपनी दवा किससे करवाता है ? गाँव मे चिकित्सा का क्या प्रबन्ध है ?

१०—गाँव मे कम खर्च से चिकित्सा का उचित प्रबन्ध किस प्रकार किया जा सकता है ?

११—क्षयरोग से बचने के लिए क्या करना चाहिये ?

इक्कीसवाँ अध्याय

पशु-पालन

गाँव मे गाय और बैल का महत्व

इसमे तनिक भी अतिशयोक्ति नही है कि भारतीय किसान खेती के कार्य के लिए बैल पर निर्भर है। यदि किसान के बैल अच्छे हैं कमजोर नही हैं तभी वह अच्छी फसल पैदा कर सकता है। कमजोर बैलों से अच्छी फसल पैदा हो ही नही सकती। भूमि की जुताई से लेकर फसल को बाजार मे बेचने जाने तक जितनी भी खेती मे क्रियाएँ हैं, उन सब में बैल की सहायता की आवश्यकता पड़ती है। गाय किसान को तथा उसके बच्चों को शुद्ध दूध देती है। अतएव अच्छी गाय और बैलों का किसान के पास होना किसान की आर्थिक स्थिति तथा अच्छे स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है। भारत मे खेती बिलकुल गो-वंश पर निर्भर है। इसी कारण हिन्दुओं मे गाय की इतनी प्रतिष्ठा है। किसान की सबसे मूल्यवान पूँजी, उसके बैलों की जोड़ी होती है, बिना बैलों के वह कुछ कर ही नहीं सकता।

आज भारत मे ससार के एक चौथाई गाय-बैल निवास करते हैं और उनसे उत्पन्न होने वाले धन का मूल्य खेती की पैदावार का मूल्य के लगभग आधा होता है। अस्तु, खेती के उपरान्त देश मे यही धधा सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इसी से गाय और बैलों का महत्व स्पष्ट हो जाता है।

गो-वंश की अत्यन्त हीन दशा

भारत के लिये खेती सबसे महत्वपूर्ण राष्ट्रीय धन्धा है जिस पर देश की तीन चौथाई जनसंख्या निर्भर है। उस धन्धे का आधार गो-वश

हीन दशा में हो, यह आश्चर्य की बात है। किन्तु बात सच्ची है। गो-वंश की दशा आज अत्यन्त शोचनीय है, यदि जमुना पार के मथुरा इत्यादि जिले, पंजाब के हिसार, हरियाना तथा काठियावाड़ की गायों को छोड़ दिया जावे तो अन्य प्रदेशों की गायों की नस्ल इतनी गिर गई है कि वह दूध देने वाला जानवर ही नहीं रह गया। उसके स्थान को भैंस ने ले लिया। साधारणतः ये गाये सेर या डेढ़ सेर दूध देती हैं। जब कि यूरोप तथा अन्य देशों में यदि कोई गाय पन्द्रह या सोलह सेर से कम दूध देती है तो वह पालने योग्य नहीं समझी जाती, माँस बनाने के कारखाने को भेज दी जाती है।

यही दशा बैलों की भी है। खेती पर काम करते हुये बैलों को देखिए। अधिकतर निर्बल, नाटे, और दुबले-पतले बैल दिखाई देंगे। भला इन निर्बल बैलों से अच्छी खेती कैसे सम्भव हो सकती है। किसान को अच्छा हल या गन्ना पेरने का कोल्हू दीजिये तो वह उसकी उपयोगिता को समझते हुए भी उसे इस कारण नहीं लेता क्योंकि उसके निर्बल बैल उसे चला न सकेंगे। बैलों की नस्ल बिगड़ गई है; फिर भी भारत के कुछ भागों में अच्छी नस्ल के बैल पाये जाते हैं। जिनकी नस्ल अभी नहीं बिगड़ी है। उनमें 'शाहिवाल' और 'हरियाना' पंजाब के, 'काकरेज' गुजरात का, 'गिर' काठियावाड़ का, 'औन्गाल' मदरास का, 'पँवार' उत्तर प्रदेश का, 'गोर्ला' मध्य प्रदेश का, और 'मालवी' मध्य भारत का मुख्य है।

गो-वंश की हीन दशा के कारण

गो-वंश की इस शोचनीय दशा के तीन मुख्य कारण हैं। (१) अच्छे चारे का अकाल (२) पशु रोगों और बीमारियों से बहुसंख्या गाय और बैलों का नाश (३) गाय-बैलों की नस्ल को अच्छा बनाने के उचित प्रबन्ध का न होना।

आवश्यकता से अधिक बैल

चारे के सम्बन्ध में लिखने से पूर्व एक बात समझ लेने की है। एक निर्बल और अशक्त बैल जो एक अच्छे बैल की तुलना में एक तिहाई काम करता है, अच्छे बैल से कुछ ही कम खाता है। अतएव यदि अच्छे

गाय या बैल रक्खे जावें तो सब काम क़म गाय बैलों से चल जावेगा और कम चारे की आवश्यकता होगी। परन्तु यदि खराब गाय-बैल रक्खे जावेंगे तो सख्या मे अधिक रखने पड़ेंगे और चारा अधिक खिलाना पड़ेगा। अच्छे बैल को रखने का खर्चा एक रद्दी बैल के रखने से कुछ ही अधिक पड़ता है। परन्तु काम को देखते हुये अच्छा बैल सस्ता बैठता है। सन् १६२६ में भारतीय शाही कृषि कमीशन की सम्मति मे भारत मे प्रति एकड़ और दूसरे देशों से कहीं अधिक बैल हैं। उसका मत है कि यदि ये बैल अच्छे होते तो इतने अधिक बैलों को न रखना पड़ता। भारत मे एक अजीब परिस्थिति उत्पन्न हो गई है। किसी भी प्रदेश मे गाय और बैलों की सख्या खेती के योग्य बैलों पर निर्भर है। बैलों को पालने के लिए जितनी खराब दशा किसी प्रदेश की होगी, उतने ही अधिक गाय और बैल उस प्रदेश मे इस आशा से पाले जावेंगे कि इनमे से खेती योग्य यथेष्ट बैल मिल जावेंगे। इसका फल यह होता है कि चारे की उस प्रदेश में और भी कमी हो जाती है; गाये कम बच्चे देने लगती हैं। और उनसे बछड़े छोटे होने लगते हैं, जिनसे किसान का काम नहीं चलता। किसान उपयोगी और अच्छे बैलों को प्राप्त करने के लिए अधिक से अधिक बछड़ों को उत्पन्न करवाता और पालता है। जैसे-जैसे सख्या बढती जाती है, बैलों की साइज छोटा होती जाती है, वैसे ही वैसे चारे की कमी बढ़ती जाती है।

इनमें से अधिकाश निर्बल बैल खेती के लिए उपयुक्त ही नहीं होते। गो-वश की नस्ल इस समय इतनी खराब हो गई है कि देश के सामने यह एक बड़ी समस्या के रूप मे खडी हो गई है। अब हम इन तीनों कारणों की विस्तृत आलोचना करेगे, जिनके कारण गो-वंश की दशा इतनी शोचनीय हो गई है, और यह भी बतलावेगे कि गाय और बैलों की नस्ल को अच्छा कैसे बनाया जा सकता है।

चारे की कमी (Fodder)

भारत मे जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ती गई, वैसे-वैसे खेती के लिए अधिक भूमि की आवश्यकता होती गई। कारण यह था कि खेती के अतिरिक्त और कोई धंधा ही नहीं था, जिसमें बढ़ी हुई जनसंख्या लग सकती। इसका फल यह हुआ कि चरागाहों को खेतों में परिणत कर दिया

गया। गोचर-भूमि के कम हो जाने से चारे की कमी हो गई। चरागाह तो कम हो गए किन्तु किसान ने गाय और बैलों के पालने का ढंग वही पुराना रक्खा। भारतीय किसान का अपने पशु को पालने का ढग यह है कि गाय जब दूध देती है तब तो उसको घर पर सानी (भूसा-करबी, तथा घास इत्यादि) यथेष्ट दी जाती है परन्तु जब वह सूख जाती है तब उसको बहुत कम खाने को मिलता है। केवल वह मैदानों पर चर कर पेट भरती हैं। किन्तु चरागाह की कमी के कारण तथा मार्च, अप्रैल, मई, जून में घास के जल जाने के कारण गाये प्रायः भूखी रहती हैं। क्रमशः वह दुर्वल होती जाती है। बैलों को जब कि काम करते हैं, उन दिनों उन्हे किसान घर पर अधिक सानी देता है, किन्तु जिन दिनों खेतों पर काम कम होता है, उन्हे भी मैदानों पर चरने को छोड दिया जाता है।

अस्तु, चारे की समस्या को हल करने के दो ही ढग हैं, या तो चरागाहों को बढाया जावे अथवा इसी भूमि पर अधिक से अधिक चारा उत्पन्न किया जावे। कृषि कमीशन की राय में तथा अन्य कृषि-शास्त्रियो की राय मे अब गोचर-भूमि बढाई नहीं जा सकती। अतएव इसी भूमि पर तथा खेतों पर अधिक से अधिक चारा उत्पन्न करने का प्रयत्न करना चाहिए। अधिक चारा उत्पन्न करने के लिये निम्नलिखित उपाय करने होगे। गॉव के चारों ओर मैदानों और खेतों मे जो भी गडहे तथा ऊबड-खाबड भूमि हो, उसको चौरस कर दिया जावे जिससे कि वर्षा का पानी गिरते ही तुरन्त न बह जावे परन्तु धीरे-धीरे बहे और भूमि उसको सोखे। इससे केवल अधिक घास ही नहीं उत्पन्न होगी वरन् खेती भी अच्छी होगी। चरागाह मे गाय और बैलों के चरने पर गॉव की पचायत का नियन्त्रण होना चाहिये। यदि चरागाह का एक हिस्सा एक वर्ष पशुओं के चरने के लिए रक्खा जावे तो दूसरे हिस्से पर घास खूब बढने दी जावे और उसको काट कर साइलो (Silo)* में भर कर साइलेज (Silage) बना ली जावे या काट-काट कर खिलाई जावे।†

---

*साइलो (Silo)—घास अथवा चारे को अच्छी दशा में सुरक्षित रखने वाला गड्हा।

†साइलेज (Silage)—साइलो में रक्खी हुई घास अथवा अन्य चारा साइलेज कहलाती है। साइलेज बनाने मे चारे के सारे पौष्टिक अश सुरक्षित रहते हैं।

चरागाह पर पशुओं को चराने से घास नष्ट हो जाती है, बढती ही नहीं है। अतएव घास काट कर खिलाने से चरागाहो से अधिक चारा मिल सकता है। घास का ठीक उपयोग करने के अतिरिक्त ज्वार, बाजरा तथा अन्य प्रकार की करबी की भी साइलेज बनाने से चारा स्वास्थ्यवर्धक तथा अच्छा बना रहता है। सुखा देने से बहुत सा चारा नष्ट हो जाता है और उसके गुण जाते रहते हैं। इसके अतिरिक्त जहाँ सिचाई के लिए पानी आसानी से उपलब्ध हो, वहाँ किसानों को चारे की फसल उत्पन्न करने को उत्साहित करना चाहिये। यदि क्लोवर (Clover) नाम की एक प्रकार की घास तथा अन्य चारे की फसल जो बहुत जल्दी तैयार हो सकती है और जिन्हे किसान बिना अपनी मुख्य फसलों का त्याग किए काट सकता है, उत्पन्न की जावे तो किसान के पास यथेष्ट चारा हो सकता है। कृषि-विभाग को चाहिये कि वह अन्य चारे की फसलों की खोज करे जो कि शीघ्र तैयार हो सके।

भारत में जङ्गलों में बहुत अधिक घास बेकार सूख जाती है। यदि वह घास काट कर चारे के रूप में परिणत की जा सके और रेल घास को बहुत सस्ते किराये पर देश मे एक कोने से दूसरे कोने तक पहुँचा सके तो जो यह अनन्त राशि मे चारा नष्ट होता है और पशु भूखे मरते हैं यह अवस्था दूर हो सकती है।

प्रत्येक गाँव में जो ऊसर अथवा बजर भूमि है उसका उपयोग भी जगल उत्पन्न करने में करना चाहिये। जङ्गल विभाग शीघ्र उत्पन्न होनेवाले वृक्षों का जङ्गल उस भूमि पर गाँव वालों की सहायता से लगवावे और उस जङ्गल से गाँव के लोग चारा और ईंधन अपनी आवश्यकतानुसार ले लिया करें। उस जङ्गल की देख भाल गाँव की पंचायत करे।

साइलेज (Silage) बनाने के उपाय

सूखे चारे को सुरक्षित रखने का सब से उत्तम साधन साइलेज बनाना है। किसान एक गड्हा जो ऊपर आठ फुट चौड़ा हो और तले पर सात फुट चौडा हो, और जिसकी गहराई आठ से दस फुट तक हो, खोदे। ज्वार, बाजरा, मक्का तथा अन्य प्रकार की करबी के टुकड़े करके घास,

पेड़ों की पत्तियों तथा अन्य पौधों, सवों को काटने के उपरान्त तुरन्त ही ठूँस-ठूँस कर और जहाँ तक हो सके, दाब-दाब कर भर दे। ऊपर से पत्थर ईंटे तथा भारी चीजे रख दे। बहुत अच्छा और स्वास्थ्यवर्धक चारा तैयार हो जावेगा।

पशुओं के रोग (Cattle diseases)

भारत में प्रतिवर्ष लाखों की सख्या में पशु रिन्डरपैस्ट (Rinder-pest) जानवरों के प्लेग, सैप्टीसीमिया (Septiceamia) तथा मुँह और पैर की बीमारियों से मरते हैं। इनमें रिंडरपैस्ट अत्यन्त भयङ्कर रोग है जिससे प्रतिवर्ष असख्य गाय, बैल तथा अन्य पशु मर जाते हैं। यह छूत का रोग है। जब फैलता है तो अग्नि की तरह फैलता है और बेचारा किसान अपने बैलों से हाथ धो बैठता है। पशु-चिकित्सा-विभाग सिरम (Serum) का टीका लगाकर पशुओं की रक्षा करता है। किन्तु पशु-चिकित्सालय अधिकतर जिलों और तहसीलों में ही होते हैं। किसान अपने बीमार बैलों को भला वहाँ कैसे ले जा सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि पशु-चिकित्सकों की सख्या बढाई जावे और वे गश्त करते रहे। सरकार का तो यह कर्तव्य है ही कि वह अधिक से अधिक पशु-चिकित्सा की सुविधाएँ प्रदान करे। किन्तु किसानों का भी यह कर्तव्य है कि वे जब मेलों तथा पैठों से बैल मोल लावें तो उसे एक सप्ताह तक अलग बाँध कर खिलावें। जानवरों मे न मिलने दें। जब कभी कोई पशु बीमार हो जावे तो उसे अन्य जानवरों से अलाहदा कर दें। और अपने जानवरों को ताल तथा पोखरों का सडा हुआ गदा पानी न पिलावे। तभी किसानों के जानवर बीमारी से बच सकते हैं। यह ध्यान मे रखने की बात है कि जब तक बैलों की बीमारियों से रक्षा न की जा सकेगी तब तक किसान बढ़िया बैल नहीं खरीदेगा क्योंकि उसको उसकी बीमारी से मर जाने का बराबर भय रहेगा। ऐसी दशा में वह सस्ता से सस्ता बैल खरीदना ही पसन्द करेगा।

रिन्डरपैस्ट (पशुओं का प्लेग) भयङ्कर छूत का रोग है। जब यह रोग फैलता है तो गाँव के गाँव साफ हो जाते हैं। प्रतिवर्ष भारत में लाखों की संख्या में पशु इस रोग से मर जाते हैं।

जब पशु बीमार होता है तो खाना छोड देता है और सुस्त रहने

लगता है फिर उसको तेज बुखार चढ़ता है तथा तीन-चार दिन में मर जाता है। यदि एक पशु को यह बीमारी लग गई तो यह गाँव भर में फैल जाती है।

पशु-चिकित्सा विभाग ने इसकी दवा तो निकाल ली है। जब बीमारी फैली हो और पशु को दवा (सिरम) का टीका लगवा दिया जाय तो पशु पर बीमारी का असर नहीं होता, किन्तु देश के लगभग पाँच लाख गाँवों में सिरम का टीका लगाने का कोई प्रबन्ध नहीं किया गया है। पशुओं के डाक्टर बड़े कस्बे या शहरों में रहते हैं। गाँव के लोग उनसे कोई लाभ नहीं उठा सकते।

आवश्यकता इस बात की है कि बहुत ज्यादा "सिरम" तैयार कराया जावे और गाँव के मुखिया, पटवारी, गाँव की पाठशाला के अध्यापक, तथा अन्य कर्मचारियों को टीका लगाना सिखा कर दवा उन्हे दे दी जावे। इस प्रकार पशुओं की इस रोग से रक्षा हो सकती है।

गाय-बैलों की नस्ल सुधारना (Cattle-breeding)

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि गाय और बैलों की नस्ल बिगड़ गई है। इसका मुख्य कारण यह है कि गाँव तथा कस्बों मे अच्छे साँड़ों की कमी है। हिन्दुओं मे प्राचीनकाल से यह प्रथा थी कि किसी वृद्ध के मरने पर उसके वंशज एक अच्छी नस्ल के अच्छे बछड़े को साँड़ बनाते थे। साँड़ बनाने के लिए बहुत अच्छा बछड़ा छाँटा जाता था। किन्तु अब लोग पुण्य तो कमाना चाहते हैं और इस कारण किसी रद्दी बछड़े को साँड़ बना देते हैं। इसका फल यह हो रहा है कि वे धार्मिक-साँड़ (जो कि खराब नस्ल के हैं) हजारो लाखों की संख्या मे छूटे फिरते हैं और गाय-बैलों की नस्ल को खराब करते हैं। यही नहीं, बूढ़े और अशक्त साँड़ भी वंशोत्पत्ति करते रहते हैं। जब कि बछड़े पैदा करने का प्रबन्ध इतना खराब है, फिर नस्ल कैसे अच्छी बन सकती है।

अच्छी नस्ल पैदा करने के लिए सबसे पहले यह आवश्यक है कि इन रद्दी साँड़ों को दूर किया जावे। कुछ विशेषज्ञों का तो यह कहना है कि इन साँड़ों को मरवा दिया जावे। किन्तु हिन्दू इसको सहन न कर सकेंगे, अतएव इन रद्दी साँड़ों को नपुन्सक करवा दिया जावे, जिससे वे सन्तानोत्पत्ति के योग्य

न रहे। भविष्य में इस प्रकार साँड़ बनाकर छोड़ने के विरुद्ध नियम बना दिया जावे। केवल अच्छी नस्ल के बछड़ों को ही साँड बनाया जावे। भारत के प्रत्येक देश में कुछ सरकारी साँड़ फार्म हैं जहाँ अच्छी जाति के साँड़ तैयार किये जाते हैं। उत्तर प्रदेश में भी दो ऐसे सरकारी फार्म हैं जहाँ अच्छी नस्ल के साँड तैयार किये जाते हैं। किन्तु इनमें इतने साँड प्रति वर्ष नहीं दिये जा सकते जितनी गाँवों को आवश्यकता है। साधारणतः सौ गायों के लिए एक अच्छे साँड़ की आवश्यकता है।

गाय और बैल की नस्ल तभी सुधर सकती है कि जब गाँव-गाँव में अच्छे साँड़ पहुँचा दिये जावे। इसके लिये केवल सरकार पर अवलम्बित रहना ठीक नहीं है। सरकार कभी भी यथेष्ट सख्या में साँड़ बाँट न सकेगी। इसके लिये डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड, गाँव वालों की पंचायतों, जमींदारों, कोर्ट्स-आव-वार्ड्स, गऊशालाओं और पिंजरापोलों, गाँव की सहकारी समितियों तथा अन्य गाँव के धनी व्यक्तियों को साँड़ों को पालना चाहिए और नस्ल को अच्छा बनाने का प्रयत्न करना चाहिये।

भारत का विभाजन और पशुधन

१९४५ की पशु गणना के अनुसार अविभाजित भारत में ढोरों की सख्या २० करोड़ ६० लाख थी। विभाजन के उपरान्त भारत में १७ करोड़ ६० लाख ढोर रह गये। इनमें १३ करोड़ ६० लाख गाय, बैल हैं और ४ करोड़ भैंस हैं। आज भी संसार के लगभग २५ प्रतिशत ढोर भारत में हैं।

परन्तु विभाजन के फलस्वरूप जहाँ तक अच्छी नस्ल का प्रश्न है भारत को बहुत हानि हुई, शाईवाल, मांटगोमरी, सिंधी, थार पारकर जैसी दुधारू नस्लें तथा थारी, मगनारी, और धन्नी जाति की नस्ले जो खेती के लिए उत्तम बैल उत्पन्न करती थीं वे सभी पाकिस्तान में रह गईं।

ढोरों की उत्तम नस्ले पाकिस्तान में रह जाने के कारण भारत सरकार उन नस्लों को भारत में उत्पन्न करने का प्रयत्न कर रही है। नस्ल की उन्नति करने में सबसे बडी कठिनाई यह है कि देश को प्रतिवर्ष दो लाख उत्तम जाति के साँड चाहिए जबकि सरकारी बुलफार्मों से प्रतिवर्ष केवल ७५० उत्तम जाति के साँड़ ही तैयार होते हैं। इस कठिनाई को दूर करने के

लिए सरकार ने "की-विलेज-स्कीम" को अपनाया है। इस योजना के अन्तर्गत कुछ गाँवों को उत्तम जाति के साँड़ दिये जावेंगे और उनसे जो भी बछड़े उत्पन्न होंगे वे सरकारी बुलफार्मों पर पाले जाकर उत्तम साँड़ बनाये जावेंगे। और फिर वे गाँवों को दे दिए जावेंगे। भारत सरकार ने १६०० नस्ल-सुधार-केन्द्र स्थापित करने की योजना बनाई है पशु विभाग कृत्रिम रूप से गायों से सन्तानोत्पत्ति कराने का प्रयोग कर रहा है जिसमे सफलता प्राप्त हुई है।

इस योजना से भविष्य मे भारत में गोवंश की उन्नति होने की आशा है।

जिला-बोर्ड (डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड) द्वारा सहायता

प्रत्येक जिला (डिस्ट्रिक्ट) बोर्ड को अपने जिले की गाय और बैलों की जाँच करना चाहिये और उसके उपरान्त यह निश्चय करना चाहिए कि कौन सी नस्ल का साँड़ उस जिले के लिए उपयुक्त रहेगा। जहाँ-जहाँ पशु-चिकित्सालय हों वहाँ-वहाँ डिस्ट्रिक्ट बोर्ड साँड़ रक्खे। ये समीपवर्त्ती गाँवों के उपयोग के लिए हों। जो भी पंचायत, गऊशाला अथवा अन्य संस्था नस्ल अच्छी करने के लिए साँड़ मोल ले, उसे बोर्ड आर्थिक सहायता प्रदान करे। गाय और बैलों की नुमाइश कराई जावे। मेलों, नुमाइशो तथा पैठों मे प्रचारकों को भेजकर इस बात का प्रचार कराया जाय कि अच्छी नस्ल किस प्रकार उत्पन्न की जा सकती है। साथ ही अच्छे साँड़ तथा उनसे उत्पन्न गाय और बैलों का प्रदर्शन कराया जावे। जो किसान अच्छे गाय और बैल उत्पन्न करें, उनको इनाम दिया जावे।

सरकार पंचायतों तथा सहकारी समितियों को उत्साहित करे कि वे साँड़ खरीदें और अपने क्षेत्रों में गाय और बैलो की नस्ल को सुधारने के लिये अपना-अपना प्रयत्न करें। यदि गाँव के लोग सामूहिक रूप से संगठित होकर साँड़ रक्खें तो गाय को गाभिन कराने की थोड़ी सी फीस ली जा सकती है, जिनसे साँड़ का पालन हो सकता है।

सहकारी नस्ल-सुधारक समितियाँ
(Co-operative Cattle-breeding Societies)

गाँव वालों को भी अपने गाय-बैलों की नस्ल सुधारने के लिये प्रयत्नशील होना चाहिये। इसके लिए उन्हे एक सहकारी समिति गाय-बैलों की

नस्ल सुधारने के लिए स्थापित करना चाहिये। पूर्वी पंजाब तथा अन्य प्रदेशों में ये सहकारी नस्ल-सुधार समितियाँ स्थापित की गई हैं। ये समितियाँ अच्छे साँड रखती हैं। रद्दी और खराब नस्ल के साँड़ों को गाँव से हटा देती हैं। गाँव की गायों का रजिस्टर रखती हैं। गायों के गाभिन होने तथा उनके ब्याने का लेखा रखती हैं। गाय तथा उनसे उत्पन्न सन्तान पर निशान डालती हैं। (यह निशान मिटते नहीं। इनसे यह ज्ञात होता है कि नस्ल में कितनी उन्नति हुई।) अच्छी नस्ल के सॉड़ और गाँव की छुटी हुई गायों के ससर्ग से जो गाये उत्पन्न हों, उनके दूध का लेखा रखती हैं, जिससे यह ज्ञात हो सके कि वे कितना दूध देती हैं। गाँव के गाय और बैलों की बीमारी से रक्षा करने के लिए उनको टीका लगवाती हैं। नस्ल-सुधार समिति अपना खर्च चलाने के लिए सदस्यो से प्रवेश-फीस लेती है। सदस्यो से गायों की गाभिन कराई की जो फीस ली जावे, गैर सदस्यों की गाय बच्चा पैदा करे तब नाम-मात्र की फीस ली जावे, तथा सदस्यों द्वारा गाय अथवा बैल बेचे जाने पर भी थोड़ी सी फीस ली जावे।

ग्राम-सुधार विभाग

ग्राम-सुधार विभाग को भी इस कार्य में सहयोग देना चाहिये। जो गाँव कैटिल-ब्रीडिंग सोसायटी स्थापित करे और अच्छी नस्ल का साँड़ मोल लें उन्हे ग्राम सुधार विभाग, साँड का २५ प्रतिशत से ५० प्रतिशत मूल्य दे। इसके अतिरिक्त वह इस सम्बन्ध में प्रचार कार्य करे।

गऊशाला

गऊशालाएँ भी गाय और बैल की नस्ल अच्छा बनाने मे बहुत कुछ कार्य कर सकती हैं। इस समय तो भारत भर में हजारो गऊशालाओं पर हिन्दू करोडो रुपये व्यय करते हैं, किन्तु वह बूढे तथा रोगी गाय और बैलों को रखने के अतिरिक्त और कुछ नही करते। यदि इन गऊशालाओं को गाय-बैलों की नस्ल के सुधारने का केन्द्र बना दिया जावे तो बहुत कुछ काम हो सकता है।

पशुओं और विशेष कर गाय और बैलों की नस्ल तभी सुधर सकती है जब कि जनता, सार्वजनिक संस्थाएँ, तथा सरकार सभी इस ओर प्रयत्नशील हों।

हिन्दू गाय को अत्यन्त पवित्र मान कर उसकी पूजा करते हैं किन्तु गऊशालायें जिन पर हिन्दुओं का करोड़ों रुपये व्यय होता है गाय की उन्नति के लिए कुछ नहीं करतीं। हमें यह न भूल जाना चाहिये कि जब तक हम गाय की नस्ल की उन्नति करके उसको लाभदायक पशु नहीं बना देते तब तक उसके प्राणों की रक्षा नहीं हो सकती।

होना यह चाहिये कि प्रत्येक गऊशाला एक या अधिक अच्छी जाति का साँड़ रक्खे, जिससे कि उस इलाके में नस्ल अच्छी बने। जहाँ गऊशाला बहुत धनवान हो वहाँ अच्छे साँड़ तैयार किये जावें और दूसरी गऊशालाओं को दिये जावें। गायों के पालन, चारे की व्यवस्था, साइलेज बनाने, पशुओं के रोगों की जानकारी कराने, पशुओं की चिकित्सा का प्रबन्ध करने का गऊशाला-केन्द्र होना चाहिए।

वर्ष मे एक बार समीपवर्ती प्रदेश की गायों पर पारितोषिक दिया जावे, अच्छे बछड़े और गायों पर पारितोषिक दिया जावे। इस प्रकार देश की गऊशालायें गो-वंश की उन्नति का प्रधान साधन बन सकती हैं, आज तो वे बूढ़े पशुओं को रखने का स्थान मात्र हैं।

गो-सेवा संघ

कई वर्ष हुए महात्मा गाँधी के नेतृत्व मे गो-सेवा संघ की स्थापना हुई है। इसका मुख्य उद्देश्य गाय की नस्ल की उन्नति करना और इस सम्बध मे वैज्ञानिक अनुसधान करना है। इस सघ का सदस्य वही व्यक्ति हो सकता है जो इस बात का व्रत ले अर्थात् प्रतिज्ञा करे कि वह आजीवन गाय का ही दूध, और उसके ही दूध से बने हुए घी, दही, मक्खन इत्यादि का उपयोग करेगा।

गो-सेवा-सघ ने वर्धा मे गौपुरी नामक स्थान बनाया है, जहाँ गाय की नस्ल का सुधार करने, दूध को बढ़ाने, चारे इत्यादि की व्यवस्था करने और पशुओं के रोगों को रोकने तथा अन्य सभी आवश्यक समस्याओं पर अनुसंधान हो रहा है

ग [illegible] ा-सघ का ५० [illegible]

पालने और दूध तथा घी के लिए भैंस पालने की परिपाटी चल पडी है, यह हानिकारक है। इसमे हमें एक पशु के स्थान पर दो पशुओं को रखना पड़ता है और चारे की समस्या और भी विकट रूप धारण कर लेती है। अतएव गो-सेवा-सघ का कहना यह है कि हमें गाय की ऐसी नस्ल उत्पन्न करनी चाहिये जो कि खेती के लिए उत्तम वैल भी दे और दूध भी खूब दे जिससे कि भैंस रखने की आवश्यकता न रहे। यही कारण है कि सघ जनता से गाय के दूध घी इत्यादि को काम मे लाने का आग्रह करता है।

आज तो स्थिति यह है कि गाय वैल उत्पन्न करने के लिए पाली जाती है, दूध तो वह नाम-मात्र को ही देती है। भैंसा खेती के काम नही देता इसलिए गाय पालना जरूरी है। लेकिन गाय के दूध न देने के कारण भैंस पालनी पडती है। इससे बहुत हानि होती है। इसलिए अगर ऐसी गाय की नस्ल तैयार की जावे जो दूध भी खूब दे और खेती के लिए उत्तम वैल भी पैदा करे तो हानि वच सकती है। गो-सेवा-सघ इसी प्रकार की दोहरे काम वाली गाय की नस्ल को उत्पन्न करने पर जोर देता है।

भारत का विभाजन हो जाने से जहाँ तक गोधन का प्रश्न है भारत की स्थित पहले से बहुत खराब हो गई है। अविभाजित भारत में २० करोड ६० लाख गोवश भारत में रहा और ३ करोड़ पाकिस्तान में चला गया। जहाँ तक सख्या का प्रश्न है भारत में संख्या यथेष्ट है परन्तु अधिकाश गोवंश की अच्छी नस्ले पाकिस्तान में रह गई जो अच्छे वैल उत्पन्न करती हैं और दूध अधिक मात्रा में देती हैं। शाईवाल, माटगोमरी, सिधी, थार पारकर, इत्यादि अच्छी नस्लें पाकिस्तान में रह गईं। भारत में इतनी अच्छी नस्लें नहीं हैं।

यही कारण है कि भारत में केन्द्रीय सरकार गोवश की नस्ल को सुधारने की ओर अधिक प्रयत्नशील है। अतएव सरकार ने एक योजना बनाई है। देश भर में उत्तम जाति के सॉड़ उत्पन्न करने के लिए ५४० बुलफार्म स्थापित किए जावेंगे जिनसे प्रतिवर्ष दस हजार उत्तम जाति के सॉड तैयार होंगे जो कि गोवश की नस्ल को उन्नत करेंगे।

अभ्यास के प्रश्न

१—गाय किसान के लिए क्यो उपयोगी जानवर है ?

२—खेती में बैलों का किन-किन कार्यों मे उपयोग होता है ?

३—भारत मे किन प्रदेशों की गायें अधिक दूध देती हैं और बैलों की कौन सी अच्छी नस्ले मिलती हैं।

४—भारत मे गाय और बैलों की नस्ले खराब हो गईं हैं, इसका क्या कारण है ?

५—क्या भारत मे बैल जरूरत से ज्यादा हैं ? यदि हैं, तो इसका कारण बतलाइये।

६—गाँवों मे चारे की कमी को पूरा करने के लिए क्या उपाय काम मे लाना चाहिये ?

७—साइलेज किसे कहते हैं, वह कैसे तैयार होती है और उससे क्या लाभ होता है ?

८—पशुओं की कौन-कौन सी भयंकर बीमारियाँ गाँव में फैलती हैं ? उनसे पशुओं की रक्षा किस प्रकार की जा सकती है ?

९—गाय और बैलों की नस्ल को सुधारने के लिए कौन से उपाय काम मे लाना चाहिए ?

१०—जिला बोर्ड (डिस्ट्रिक्टबोर्ड) तथा कैटिल-ब्रीडिग सोसाइटी गाय-बैलों की नस्ल को सुधारने मे किस प्रकार सहायक हो सकती हैं।

११—गो-सेवा-सघ गो-वश की उन्नति के लिए क्या कर रहा है ?

बाईसवाँ अध्याय

खेती की उन्नति के उपाय

(Agriculture Improvement)

कृषि की गिरी हुई दशा

भारत कृषि प्रधान देश है। देश की लगभग तीन-चौथाई जन-सख्या खेती पर ही निर्भर है। खेती का देश के आर्थिक सगठन में सर्वोच्च स्थान होने पर भी खेती की दशा अत्यन्त गिरी हुई है, यह आश्चर्य की बात है। देश की निर्धनता को दूर करने के लिए जहाँ देश की औद्योगिक उन्नति करने की आवश्यकता है वहाँ उससे भी अधिक आवश्यक यह है कि भूमि की उपज बढाई जावे। जैसा कि हम किसी पिछले अध्याय में बतला आए हैं, अन्य देशों की तुलना मे भारत की प्रति एकड उपज सब से कम है। भारत में प्रति एकड कपास की पैदावार पच्चीस पौंड है जब कि मिश्र की ४०० पौंड तथा सयुक्तराज्य अमरीका की २५० पौंड है। भारत में एक एकड में जितना गन्ना उत्पन्न होता है उससे चौगुना जावा और छः गुना क्यूबा में उत्पन्न होता है। भारत में प्रति एकड इंगलैंड का एक चौथाई गेहूँ उत्पन्न होता है। यद्यपि इन देशों और भारत की खेती बारी के ढङ्ग में बहुत अन्तर है। वहाँ खाद, यन्त्र और शक्ति के द्वारा बडे-बडे खेतों पर आधुनिक वैज्ञानिक ढङ्ग से खेती होती है। अतएव यह कहना कि भारत भी प्रति एकड़ इतनी ही पैदावार उत्पन्न कर सकता है, ठीक न होगा। परन्तु फिर भी यह तो स्पष्ट ही है कि यदि खेती-बारी अधिक सावधानी से की जावे तथा आवश्यक सम्भव सुधार कर दिये जावे तो उपज बहुत कुछ बढ़ाई जा सकती है।

अब हम उन साधनों का वर्णन करते हं कि जिनकी कृषि में आवश्यकता होती है और साथ ही यह बतलाने का भी प्रयत्न करते हैं कि किस प्रकार पैदावार बढाई जा सकती है।

कृषि के आवश्यक साधन

उत्पादन कार्य में चार साधन आवश्यक हैं:—१. भूमि (Land)

२. पूँजी (Capital), ३. श्रम (Labour), ४. संगठन (Organisation) और साहस (Enterprise) ।

भूमि

भूमि के अंतर्गत हमे निम्नलिखित समस्याओं का अध्ययन करना है :— छोटे-छोटे बिखरे हुए खेतों की समस्या । खाद की समस्या ।

पूँजी

पूँजी के अन्तर्गत पशुधन, खेती के यन्त्र, बीज, सिचाई, साख की समस्याये आती हैं ।

श्रम तथा संगठन

श्रम तथा संगठन के अन्तर्गत किसानों का स्वास्थ्य, उनकी शिक्षा, फसलों के शत्रु तथा पैदावार को वेचने की समस्याओं का अध्ययन करना होगा ।

छोटे-छोटे बिखरे हुए खेतों की समस्या

यह तो पहले ही बताया जा चुका है कि भारतीय किसानों के पास भी थोडी सी भूमि होती है । वह भी छोटे-छोटे टुकडों मे बिखरी होती है । यह सर्वमान्य बात है कि जब तक किसान छोटे-छोटे अनेक खेतों पर खेती करने का प्रयत्न करता है, जो एक दूसरे से बहुत दूरी पर बिखरे हुए हैं, तब तक खेती की उन्नति होना सम्भव नहीं है । खेती की उन्नति के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि खेत एक चक मे हों ।

किसी-किसी प्रदेश मे तो खेतों के ऐसे छोटे-छोटे टुकड़े हो गये हैं और इतनी दूरी पर बिखरे हैं कि उन पर खेती करने से कोई लाभ हो ही नहीं सकता । भूमि के छोटे-छोटे टुकड़ों मे विभाजित होने का खेती पर बहुत बुरा असर पड़ता है । औसत किसान अपनी शक्ति और साधन का उचित उपयोग नही कर सकता । एक टुकडे से दूसरे टुकड़े तक उसे जाने मे बहुत समय नष्ट करना पड़ता है । इन बिखरे हुए टुकड़ों की ठीक तरह से देख-भाल भी नही हो सकती, बहुत सी जमीन मेड बनाने मे व्यर्थ चली जाती है । किसानों के खेत एक जगह न होकर बिखरे होने के कारण उसे दूसरों के खेतों मे से होकर जाना पड़ता है जिससे झगड़ा होता है और

मुकदमेवाजी की नौबत आती है। सिंचाई के मामले में भी अड़चन होती है। किसान अपने सब टुकडों पर तो कुआँ बना ही नहीं सकता। और एक कुएँ से दूर-दूर के खेतों को पानी ले जाने में दूसरों के खेतों में से पानी ले जाना पडता है। बिखरे हुये खेतों के कारण अच्छे यन्त्र और औजार काम में लाये नही जा सकते, क्योंकि वे भारी होते हैं और किसान उन्हे अपने कधों पर रख कर एक टुकड़े से दूसरे टुकडे पर नहीं ले जा सकता। न खेत पर वह और कोई सुधार ही कर सकता है। छोटे-छोटे खेतों में बाड लगाने का खर्च भी बहुत पड़ता है इसलिए बिना बाड़ की खेती करनी होती है। किसान के पास सारी भूमि एक चक में न होने के कारण वह अन्य देशों के किसानों की तरह अपने खेत पर मकान बना कर नहीं रहता बरन् खेतों से दूर बस्ती में रहता है। वैज्ञानिक ढग की खेती करने के लिए किसान को खेत पर ही रहना चाहिये, क्योंकि उस दशा में वह हर एक वक्त खेतों की देख-भाल कर सकेगा उसकी स्त्री तथा बच्चे पूर्ण रूप से सहायक हो सकेंगे, तथा खाद इत्यादि का पूरा उपयोग हो सकेगा। सारांश यह है कि भूमि का छोटे-छोटे टुकड़ों में बिखरे होना खेती की उन्नति मे बहुत बाधक है। इसमें सुधार अत्यन्त आवश्यक और पहली बात है।

यह तभी हो सकता है कि जब हर एक किसान को उसकी जमीन (जो अभी अलग-अलग टुकड़ों में बॅटी है) के बराबर का एक ही बडा खेत दे दिया जावे और आगे इस बात का प्रबन्ध कर दिया जाय कि एक निश्चित क्षेत्रफल के बाद जमीन के टुकड़े नहीं किये जा सकेंगे। पहला प्रश्न जमीन के बिखरे हुए टुकड़ों की चकबन्दी का है और दूसरा भविष्य मे जमीन के बटवारे को रोकने का है।

चकबन्दी दो तरह से की जा सकती है—सहकारी चकबन्दी समितियों द्वारा और कानून के द्वारा। (देखो चकबंदी समितियाँ)। चकबंदी का अर्थ यह है कि जमीन का इस प्रकार बॅटवारा किया जावे कि किसान की जितनी कुल जमीन है वह एक चक में आ जावे। मान लो 'अ' किसान के एक टुकड़े के पास 'क' 'ख' और 'ग' के टुकड़े हैं। चकबंदी की योजना के अनुसार 'अ' को 'क' 'ख' 'ग' के टुकडे दे दिये जावेंगे जो उन खेतों के

सहकारी चकबंदी समिति की स्थापना तभी हो सकती है कि जब सब लोग नये बँटवारे को माने। किन्तु कानून बना कर जो चकबंदी की जाती है उसमे यदि अधिक लोग नये बँटवारे को मान लेते हैं तो वह चकबंदी की योजना गाँव भर मे लागू कर दी जाती है।

खेतों के बिखरे होने का मुख्य कारण यह है कि भारत में खेती योग्य भूमि का अकाल पड़ गया है। बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए उदर-पूर्ति का दूसरा कोई साधन नहीं रहा। गृह-उद्योग-धंधे (Cottage-industries) मर चुके हैं और आधुनिक कारखानों मे देश की केवल एक प्रतिशत जन-सख्या काम पा सकी है। इसका परिणाम यह हुआ है कि खेती पर जरूरत से ज्यादा लोग निर्भर हैं। दूसरे शब्दो में भूमि पर जन-संख्या का भार बेहद बढ गया है। भारत मे आज हालत यह है कि फी किसान पीछे केवल अढाई एकड़ भूमि का औसत पड़ता है।

खेती की सफलता के लिए किसान के पास इतनी जमीन का होना नितान्त आवश्यक है कि जिस पर उसके श्रम और साधनो का पूरा-पूरा उपयोग होने की पूर्ण सभावना हो। भारत मे एक किसान को कम से कम एक जोड़ी बैल तो रखने ही पड़ते हैं, इनके सिवाय एक औसत कुटुम्ब में पाँच प्राणी होते हैं; ऐसी हालत मे खेती मे पूर्ण सफलता प्राप्त करने के लिये एक किसान के पास इतनी भूमि होना आवश्यक है कि जिस पर एक जोड़ी बैल और कुटुम्ब के सब व्यक्तियों के श्रम का पूरा उपयोग हो सके। इतनी भूमि को 'आर्थिकजोत' (Economic holding) कहते हैं।

भारतीय किसान के पास इससे बहुत कम जमीन है और वह भी एक जगह (चक) में नहीं, छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटी रहती है और दूर-दूर बिखरी होती है।

जनसंख्या के बढ़ने और उद्योग-धन्धों में जनसंख्या को काम न मिलने से प्रत्येक व्यक्ति को भूमि पर निर्भर होना पड़ा, जिससे भूमि का बँटवारा जरूरी हो गया। संयुक्त कुटुम्ब की सस्था के टूटने से भी बँटवारा जरूरी हो गया।

उदाहरण के लिए हम एक सम्पन्न किसान को लेते हैं जिसके पास दस-दस एकड़ के चार खेत हैं और उसके चार लड़के हैं। उसके मरने पर हर एक लड़का प्रत्येक खेत का एक चौथाई भाग लेगा। क्योंकि चारों

खेतों की जमीन एक सी नहीं होती। इस प्रकार किसान के मरने पर १६ टुकड़े हो जावेंगे। और आगे चलकर इनके और भी अधिक टुकडे हो सकते हैं!

अतएव हमारे सामने भूमि-सम्बन्धी दो समस्यायें हैं। एक तो प्रति किसान भूमि का बहुत कम होना जिस पर लाभदायक खेती नहीं हो सकती, दूसरी खेतों के बिखरे होने की समस्या। पहली समस्या तो तभी हल होगी जब कि देश मे उद्योग-धन्धो की उन्नति हो और खेतों मे लगे हुए जरूरत से ज्यादा लोग उनमे काम पा सकें। बिखरे हुए खेतों की समस्या चकबन्दी से हल हो सकती है। लेकिन चकबन्दी हो जाने से उस भूमि का आगे विभाजन नहीं होगा यह कोई ठीक नही। यदि एक बार चकबन्दी कर देने पर भूमि का फिर विभाजन हो जावे तो फिर किया-धरा सब नष्ट हो जावेगा। इसलिये जरूरत इस बात की है कि एक ऐसा कानून बना दिया जावे कि एक सीमा के बाद भूमि का बँटवारा नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए यदि १० एकड भूमि को 'आर्थिक जोत' (Economic Holding) माना जावे तो यदि किसी के पास केवल १० एकड भूमि है तो उसके मरने के बाद उसका बँटवारा न हो सके। लेकिन यह सब तभी हो सकता है जब कि देश मे उद्योग-धन्धों की उन्नति हो और जरूरत से ज्यादा खेतों मे लगी हुई जनसंख्या उनमे काम पा सके।

सामूहिक सरकारी खेती

बिखरे हुए खेतों की समस्या को हल करने तथा वैज्ञानिक ढग की खेती की सुविधा प्रदान करने का दूसरा व्यावहारिक तरीका सहकारी या सामूहिक खेती है। रूस और पैलेस्टाइन मे सहकारी खेती के द्वारा आश्चर्यजनक सफलता मिली है अतएव भारत मे भी लोगों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है। सहकारी खेती मे सब किसान अपनी भूमि, श्रम और औजारों को मिलाकर एक बडे फार्म के रूप मे खेती करते हैं।

यह हम एक दूसरे स्थान पर लिख आये हैं कि उत्तर प्रदेश, मध्यभारत, पूर्वी पंजाब, मध्यप्रदेश में केन्द्रीय सरकार का ट्रैक्टर विभाग बजर भूमि को तोड़कर उसे खेती योग्य बना रहा है। उस भूमि पर सहकारी खेती की जा रही है। उत्तर प्रदेश में गगा, खादिर तथा नैनीताल की तराई में सहकारी

खेती का आरम्भ किया गया है इसके अतिरिक्त झाँसी जिले के नैनवारा तथा दारौना गाँवों मे सहकारी खेतो का आरम्भ किया गया है। किन्तु सदस्य अभी तक सहकारी खेती के लिए उत्साह नही दिखलाते वे व्यक्तिगत खेती करना चाहते हैं। उत्तर प्रदेश के अतिरिक्त बम्बई और बिहार में भी सहकारी खेती के प्रयोग हो रहे हैं।

पञ्च-वर्षीय योजना

भारत सरकार ने जो प्लैनिग कमीशन बिठाया था उसका स्पष्ट मत है कि अन्ततः कृषि का नवीन सङ्गठन करने के लिए भारत को **"सहकारी ग्राम व्यवस्था"** को अपनाना चाहिये।

समस्त गाँव की भूमि एक बड़ा फार्म या खेत होगी। उसकी व्यवस्था सहकारिता के आधार पर होगी। जो लोग उस गाँव की भूमि के स्वामी होंगे उन्हे भूमि के स्वामी होने के कारण प्रत्येक फसल पर **"स्वामित्व लाभ"** जो भी निश्चित कर दिया जवोगा मिल जाया करेगा। परन्तु प्रत्येक व्यक्ति को अपनी भूमि को सहकारी फार्म मे मिलाना होगा और सामूहिक खेती करनी होगी। खेत पर भूमि के स्वामी तथा खेत-मजदूर सभी कार्य करेंगे प्रत्येक व्यक्ति को उसकी कार्यक्षमता के अनुसार मजदूरी दी जावेगी। भूमि के मालिकों को मजदूरी के अलावा "स्वामित्व लाभ" और मिलेगा।

सहकारी ग्राम-व्यवस्था उस गाँव में लागू कर दी जावेगी जिसमें कम से कम दो तिहाई भूमि के स्वामी जिनके पास कम से कम गाँव की दो तिहाई भूमि हो इस व्यवस्था के पक्ष मे हों।

खाद की समस्या (Manure)

फसल उत्पन्न करने से भूमि कमजोर पड़ जाती है। यदि खाद डालकर भूमि की उर्वरा शक्ति को बनाये न रक्खा जावे तो कुछ समय के बाद भूमि अनुत्पादक हो जावेगी। खाद का उपयोग केवल भूमि की उर्वरा शक्ति को बनाये रखने के ही लिए नहीं किया जाता वरन् भूमि से अधिक से अधिक पैदावार प्राप्त करने के लिए भी किया जाता है। गाँव मे जितना भी कूड़ा, मैला, पशुओं का गोबर, पेशाब, घास, पेड़ों के पत्ते, बचा हुआ चारा हो, सब खाद के रूप में परिणत किया जा सकता है। परन्तु गाँवों में जो खाद की सामग्री उपलब्ध है वह अधिकतर या तो फेक दी जाती है या नष्ट हो

जाती है। पशुओं का गोबर तथा पेशाब बहुत बढ़िया खाद मे परिणत की जा सकती है। वास्तव मे यदि देखा जाये तो गोवर और पेशाव किसान के पास यथेष्ट मात्रा मे होती है और यदि थोड़ा सा परिश्रम करके खाद तैयार करले तो उसके खेतों की पैदावार बहुत बढ सकती है। परन्तु यह अत्यन्त मूल्यवान् खाद या तो कडे (उपली) बनाकर किसान अपने घर में ही जला डालता है अथवा बाजार और शहरों में बेचकर कुछ पैसा कमाता है। किसानों की स्त्रियाँ गोबर के कडे न बनावे तो जहाँ वे उसके द्वारा कुछ पैसों की बचत करती है उसके एवज मे उन्हे अधिक फसल के रूप में कई गुना अधिक लाभ हो सकता है। वर्षा में जब कडा बन ही नहीं सकते तब किसान गोबर का उपयोग खाद बनाने मे करता है और शेष आठ महीने वह कडे बनाकर जलाता है, यदि खेती की पैदावार को बढ़ाना है तो किसान को पशुओं का गोबर खेतों में डालना होगा। केवल गोबर ही नष्ट होता हो यही बात नहीं है। कूडा, चारा, पेड की पत्तियाँ तथा अन्य वस्तुएँ जिनकी खाद बनाई जा सकती हैं, वे भी गाँवों मे नष्ट हो जाती हैं और उनकी खाद नहीं बनाई जाती। हवा, पानी तथा पशु इस मूल्यवान् खाद को नष्ट कर देते हैं। किसान जो भी खाद इस समय तैयार करता है वह ढेर लगा कर करता है। हवा कुछ खाद को उड़ा ले जाती है, वर्षा के दिनों में बहुत सा कूडा इत्यादि बह जाता है और पशु तथा मनुष्यों के पैरों से खाद इधर-उधर बिखरती है। साथ ही ढेर लगाकर अच्छी खाद तैयार नही होती है। खाद को तैयार करने का सबसे अच्छा उपाय गड़हों में खाद तैयार करना है। इससे तीन बडे लाभ होंगे। गाँव का कूड़ा, गोबर, पेशाब, चारा या घास पत्ती कुछ भी खराब नहीं जावेगा, एक बार वह गडहे मे डाल दिए जाने पर सुरक्षित रहेगा। दूसरे, गाँव में गंदगी नहीं रहेगी। तीसरे, खाद अच्छी तैयार होगी।

खाद की समस्या को हल करने का सबसे उत्तम उपाय यह है कि किसान को गोबर जहाँ तक हो सके न जलाने के लिए कहा जावे और खाद के गड़हों (Manure Pits) में खाद तैयार करने,के लिए कहा जावे। लेकिन गाँव में ईंधन की बहुत कमी है। गाँव वालों से यह आशा करना कि वे ईंधन को मोल लेकर जलावेंगे, भूल होगी। फिर जब गाँव में ईंधन के

लिए लकड़ी की कमी है तो यदि कडे (उपले) जलाना बन्द कर दिया जावेगा तो फिर ईंधन का प्रबन्ध कैसे होगा। अतएव जब तक गाँवों में अधिक लकड़ी उत्पन्न नही कर दी जाती तब तक गोबर का जलाना बन्द नही होगा। जरूरत इस बात की है कि हर गाँव मे ऊसर तथा बंजर भूमि पर जङ्गल का मुहकमा ऐसे वृक्ष उत्पन्न करे जो जल्दी बडे होते हों और गाँव की पचायत उस छोटे से जङ्गल के टुकड़े की देख भाल करे। उस जङ्गल के टुकड़े में जो घास और लकड़ी पैदा होगी, हर गाँव वाले को उसमें से अपने काम के लिए लकड़ी काटने और घास छीलने का अधिकार हो। उसमे कोई अपने पशु न चरा सके। इससे गाँव में ईंधन और चारे की समस्या हल हो सकती है और तभी गोबर खाद के लिए बचाया जा सकता है।

मल की खाद

स्वास्थ्य के परिच्छेद में कहा जा चुका है कि यदि गाँव में एक और सार्वजनिक शौच कूप (Pit Latrines) बना दिया जावे तो गाँव गन्दगी से भी बच सकता है। साथ ही कुछ खाद भी मिल सकती है। कुछ लोग मल की खाद को छूने से हिचकते हैं और उसे काम में नहीं लाते, किन्तु प्रचार करने से यह कठिनाई दूर हो सकती है। बड़े-बडे नगरो मे वैज्ञानिक क्रियाओं द्वारा मल को दुर्गन्ध रहित और सूखा बनाया जा सकता है क्योंकि वहाँ बहुत राशि में मल होता है।

हरी खाद (Green Manure)

किसान यदि चाहे तो जहाँ वर्षा अधिक होती हो अथवा जहाँ पानी आसानी से मिल सकता हो वहाँ हरी खाद का भी उपयोग कर सकता है। ढैचा, सन, मूँगफली, गवार तथा कुछ दूसरी फसलें ऐसी हैं जिन्हे पैदा करके जोत देने में खेत उर्वर हो जाता है किन्तु यह खाद तभी उपयोगी हो सकती है जब कि भूमि में खूब नमी हो, बिना पानी के खाद देना हानिकारक है।

अन्य प्रकार की खाद

पशुओ का मूत्र भी बहुमूल्य खाद है, किन्तु भारतीय किसान उसका तनिक भी उपयोग नहीं करता है। उसको चाहिये कि वह अपने पशुओं को

खेत पर ही बाँधे, यदि हो सके तो वह पशुओं के बाँधने के स्थान पर मिट्टी बिछा दिया करे और उस मिट्टी को खेत मे डाले।

यही नही घास-फूस, सूखी पत्तियाँ इत्यादि सभी को खाद में परिणत किया जा सकता है।

सिधरी (विहार) का कारखाना

भारत मे भूमि की उपजाऊ शक्ति को वढ़ाने के लिए खाद की वहुत अधिक आवश्यकता है। इसी उद्देश्य से भारत सरकार ने विदेशी विशेषज्ञों के परामर्श से विहार में सिंदरी नामक स्थान में कृत्रिम खाद बनाने का एक बहुत बडा कारखाना स्थापित किया है। इसको बनाने में ३८ करोड रुपए व्यय हुआ है। अब यह कारखाना लाखों टन खाद तैयार करने लगा है जो सस्ते दामों पर खेती के लिए दी जा रही है।

भूमि की उपजाऊ शक्ति को बनाये रखने के दूसरे साधन

फसलों का हेर-फेर (Rotation of Crops)

फसल उत्पन्न करने से भूमि के कुछ तत्व कम हो जाते हैं तो फसल कुछ अन्य तत्वों को भूमि मे वढा भी देती है। अस्तु, अनुभवी किसान फसलों को इस प्रकार उत्पन्न करता है कि जिससे जो तत्व एक फसल के कारण कम हो गये हैं वह दूसरी फसल पूरी कर दे। इसको फसलों का हेर-फेर कहते हैं। भारतीय किसान फसलों के हेर-फेर के सिद्धान्त को प्राचीनकाल से जानता है। लेकिन केवल फसलों के हेर-फेर से ही भूमि की उपजाऊ शक्ति को बनाये नही रक्खा जा सकता। हाँ भूमि की उपजाऊ शक्ति को तेजी से घटने से रोका जा सकता है। यही कारण है कि किसान एक खेत पर लगातार एक सी फसल कई वर्ष तक नहीं पैदा करता। यह वदलता रहता है।

भूमि को आराम देने से भी भूमि की उपजाऊ शक्ति वढ़ती है क्योंकि भूमि वायु से नाइट्रोजन इत्यादि तत्वों को ले लेती है। लेकिन इस देश मे घनी आबादी के लिए भोजन इत्यादि उत्पन्न करने के कारण भूमि को यथेष्ट आराम नहीं दिया जा सकता।

युद्ध के उपरान्त देश में जो भोजन का अकाल पडा है उससे सरकार

तथा जनता सभी का ध्यान पैदावार बढ़ाने की ओर गया है और सरकार ने विशेषज्ञों को बुलाकर खाद के सम्बन्ध में जाँच करवाई है। अब सरकार के प्रोत्साहन से ऐसे कारखाने स्थापित करने का प्रयत्न हो रहा है जो नाइट्रोजन से खाद उत्पन्न करेंगे। इस प्रकार देश में खाद की समस्या को हल करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

फिर भी जब तक हम किसान को अपने पशुओं के गोबर, घर के कूड़े, बचा हुआ घास-फूस तथा पशुओं के मूत्र से बढ़िया खाद बनाने के लिये उत्साहित नहीं करते तब तक खाद की समस्या हल नहीं हो सकती।

पशुधन (Cattle)

किसान की सबसे महत्वपूर्ण पूँजी उसके गाय और बैल हैं। जब तक किसान के बैल कमजोर हैं और गाय यथेष्ट दूध नहीं देती तब तक खेती बारी की दशा सुधर नहीं सकती। गाय और बैलों की उन्नति कैसे हो सकती है, यह हम पिछले अध्याय मे ही लिख चुके हैं।

खेती के यन्त्र (Agricultural Machinery)

भारत के छोटे खेतों में ट्रैक्टर* तथा अन्य बड़े-बड़े यन्त्र काम नहीं दे सकते, अतएव भारत में इनका अधिक प्रचार नही हो सकता। कारण यह है कि छोटे-छोटे खेतों पर बड़े-बड़े यन्त्र न तो लाभदायक ही सिद्ध होंगे और न किसान उन्हे रख ही सकता है। जो सैकड़ों वर्षों से भारतीय किसान अपना देशी हल तथा अन्य यन्त्र काम मे ला रहा है उसका मुख्य कारण यह है कि देशी औजार उसकी स्थिति को देखते हुए अधिक उपयोगी है। देशी हल तथा औजारों मे निम्नलिखित गुण हैं। १—वे बहुत सस्ते हैं, निर्धन किसान हल तथा अन्य औजारों पर अधिक व्यय नही कर सकता २— वे बहुत हलके होते हैं। किसान देशी हल को अपने कंधे पर उठा कर एक खेत से दूसरे खेत पर ले जा सकता है। ३—देशी हल तथा औजार बहुत सादे होते हैं। किसान को उनके उपयोग करने मे कोई कठिनाई नही होती। ४—गाँव के बढ़ई और लोहार देशी हल और औजारों की मरम्मत

---

*ट्रैक्टर—भूमि को जोतने के लिये भाप या तेल से चलने वाली बड़ी मशीन।

भली-भाँति कर लेते हैं। परन्तु आधुनिक यन्त्रों की मरम्मत गाँव के बढ़ई और लोहार न कर सकेंगे। ५—देशी हल हलके होने के कारण किसान के कमजोर बैलों से खिच जाते हैं परन्तु बहुत भारी हल या कोल्हू इन निर्बल बैलों से खिच ही नहीं सकते।

यही कारण है कि आरम्भ मे जब कृषि-विभाग ने विदेशी हलों और यन्त्रों का भारत मे प्रचार करना चाहा तो वे सफल नहीं हुए। किन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिये कि देशी हलों, औजारों मे तनिक भी सुधार की आवश्यकता नहीं। सुधार की आवश्यकता है, किन्तु ऊपर लिखी हुई बातों को ध्यान में रखकर ही सुधार करने से सफलता प्राप्त हो सकती है। आवश्यकता इस बात की है कि कृषि विभाग का इजिनियरिंग विभाग ऐसे हलों और औजारों का निर्माण करे जो सस्ते हों, हलके हों और सादे हो। इस प्रकार के हलों और औजारों का आविष्कार करके जो ऊपर लिखी शर्तों को पूरा करे और भूमि को देखते हुए उपयोगी सिद्ध हों उन्हे अधिक संख्या मे बनाने के लिए कारखाने खोले जावें, जिससे कि वे सस्ते से सस्ते दामों पर बेचे जा सकें। कृषि-विभाग ने अपनी पुरानी नीति को छोड कर अब यह नीति बनाई है, किन्तु इस दिशा मे अधिक काम नहीं हुआ है। मैस्टन, हिन्दुस्तान, हिसार, राजा इत्यादि कुछ हल हैं जिनका कृषि-विभाग प्रचार कर रहे हैं। परन्तु अभी इन हलों मे भी सुधार की आवश्यकता है। कोल्हू, गुड तथा शक्कर बनाने के यन्त्र, चारा काटने के औजार, तथा अन्य प्रकार के औजार भी तैयार किए गये है, जिनका अधिकाधिक प्रचार करने की आवश्यकता है। हाँ, जब सहकारी फार्म (Cooperative Farm) स्थापित हों, तब बडे यन्त्र काम दे सकते हैं।

सरकार का केन्द्रीय ट्रैक्टर विभाग

भारत सरकार ने अन्तर्राष्ट्रीय बैंक से ऋण लेकर बहुत बड़ी संख्या मे ट्रैक्टर तथा अन्य कृषि यन्त्र मँगवाये हैं। यह विभाग प्रत्येक प्रादेशिक सरकार को यह यंत्र वहाँ बंजर भूमि खेती योग्य बनाने के लिए देता है। उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान और मध्यभारत मे इन ट्रैक्टरों की सहायता से बंजर भूमि को खेती योग्य बनाया जा रहा है। उसके अतिरिक्त भारत मे

जमींदारों ने ट्रैक्टरों का खेती मे अधिकाधिक उपयोग करना आरम्भ कर दिया है।

बीज (Seed)

यह तो सभी जानते हैं कि कि किसान खेत में जैसा बीज डालेगा, वैसी फसल तैयार होगी। खराब बीज डालकर कोई अच्छी फसल उत्पन्न नहीं कर सकता। इस समय अधिकतर किसान, महाजन अथवा गॉव के जमींदार से सवाए ड्योढ़े पर बीज लेकर खेत में बोते हैं। महाजन खत्तियों में भरा हुआ रद्दी और घुना बीज किसान को उधार देता है। खराब बीज के कारण किसान की फसल भी अच्छी नही होती। बीज को समस्या को हल करने के लिये दो बाते मुख्य हैं। प्रथम अच्छा बीज उत्पन्न करना, दूसरे उस बीज को किसानो को देना। भिन्न-भिन्न प्रदेशों के कृषि-विभागों ने मूल्यवान तथा महत्वपूर्ण फसलों के बीज की लगातार अनुसधान करने के उपरान्त आशातीत उन्नति की है। प्रदेशों के कृषि-विभागों ने कपास, गेहूँ, गन्ना, चावल तथा जूट के बीजों मे आश्चर्यजनक उन्नति की है किन्तु अभी मोटे अनाज (मक्का, ज्वार, बाजरा, जौ तथा भिन्न-भिन्न दालों) तथा सन इत्यादि के उत्तम बीज तैयार नही किये गये हैं। उत्तम बीज तैयार करने का कार्य विशेषज्ञों का है, और आशा है कि धीरे-धीरे कृषि-विभाग ऊपर लिखी हुई फसलों के लिये उत्तम बीज उत्पन्न करेगा। परन्तु बीज की सबसे कठिन समस्या बीज का किसानों को देना है। यद्यपि कृषि-विभाग सीड-डिपो (बीज भडार) खोल कर गॉव वालों को उत्तम बीज देने का कार्य कर रहा है। परन्तु यह सर्वमान्य बात है कि बीज देने का कार्य कृषि-विभाग पूरी तरह नहीं कर सकता। इस समय कृषि-विभाग अपने फार्मों पर, जमींदारों तथा किसानों के खेतों पर, अपनी देख-रेख में उत्तम बीज को उत्पन्न करवा कर, अपने बीज-भडारो के द्वारा उसे किसानों को बेच देता है। सहकारी समितियॉ तथा ग्राम-सुधार के कार्यकर्त्ता भी इस कार्य मे कृषि-विभाग की सहायता करते हैं। परन्तु यह निश्चित है कि कृषि-विभाग प्रतिवर्ष असख्य किसानों को उत्तम बीज यथेष्ट मात्रा मे नहीं दे सकता ! अतएव प्रत्येक किसान को एक बार उत्तम बीज कृषि-विभाग से लेकर स्वयं प्रतिवर्ष अपना बीज तैयार करना चाहिये। जिस खेत पर बीज तैयार करना हो उसे अच्छी तरह से जोतना तथा

उस पर खाद डालना चाहिये। यदि प्रत्येक गाँव मे किसान अपने लिये बीज तैयार कर ले तो अच्छे बीज की समस्या हल हो सकती है। परन्तु कुछ समय के उपरान्त उत्तम बीज भी खराब होने लगता है, अतएव चतुर किसानों को सतर्कतापूर्वक यह देखते रहना चाहिये कि उनका बीज खराब तो नहीं होता जा रहा है। यदि उन्हे बीज के खराब होने के चिह्न दृष्टिगोचर हों तो कृषि-विभाग से दूसरा उत्तम बीज लेकर फिर कुछ वर्षों तक उसे अपने खेतों पर पैदा करके प्रतिवर्ष बोते रहना चाहिये। किसान को अपने बीज को शुद्ध बनाने का सदा प्रयत्न करना चाहिये।

कृषि-विभाग द्वारा दिया हुआ बीज कुछ अधिक कीमती होता है। किसान को इसकी चिन्ता न करनी चाहिये। बीज का थोडा अधिक मूल्य देकर भी उत्तम बीज खरीदना चाहिये। फिर वह स्वयं प्रति वर्ष बीज - बचा कर रख सकता है, या किसी ऐसे पड़ोसी से वह उत्तम बीज ले सकता है कि जिसने उसको बोया हो। जो कुछ भी हो किसान को बीज अच्छा ही डालना चाहिये।

सिंचाई (Irrigation)

भारत के अधिकांश प्रदेशों में खेती के लिये सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि वर्षा यथेष्ट नहीं होती और यदि वर्षा होती है, तो वह वर्षा के केवल तीन या चार महीनों मे, अतएव रबी की फसल बिना सिंचाई के हो ही नहीं सकती। आसाम, पूर्वी बगाल तथा पश्चिमीघाट के समुद्रतट के मैदान को छोड़ कर किसी भी प्रदेश मे खेती सिचाई के बिना नहीं हो सकती। अधिकतर प्रदेशों मे तो पानी का अकाल रहता है, परन्तु फिर भी किसान वर्षा से जितना लाभ उठाया जाना चाहिये, नही उठाता।

वर्षा का जल (Rain-water)

गाँवों में भूमि बहुत ऊबड़-खाबड होती है, कहीं-कहीं बडे गहरे नाले बन जाते हैं और कहीं भूमि अधिक ऊँची और अधिक नीची होती है। इसका फल यह होता है कि वर्षा का जल भूमि पर गिरते ही बडी तेजी से बहता है। उन प्राकृतिक नालों तथा निचली भूमि के कारण उसकी तेजी और भी बढ जाती है। जहाँ ऊबड़-खावड़ जमीन अधिक होती है वहाँ वर्षा के दिनो मे ऐसा प्रतीत होता है कि मानों कोई बडी नदी तेजी से बहती हो। उस क्षेत्र

का सारा जल शीघ्रतापूर्वक बह जाता है और साथ ही वह भूमि के ऊपर की उपजाऊ मिट्टी भी बहा ले जाता है। पानी उस क्षेत्र पर अधिक देर तक नहीं ठहरता, अतएव भूमि वर्षा के जल को सोखने मे असमर्थ रहती है। भूमि के अन्दर यथेष्ट जल न जाने से भूगर्भ मे बहने वाला जल-स्रोत सूखता है, और अधिक गहराई पर चला जाता है जिसके कारण कुएँ बेकार हो जाते हैं। प्रदेश के ऊबड़-खाबड़ होने से केवल इतनी ही हानि नहीं होती। इससे भी भयंकर हानि यह होती है कि शीघ्रतापूर्वक बहने के कारण जल कटाव करता है, अर्थात् भूमि को काटता है (Erosion of soil)। धीरे-धीरे और अधिक नाले बन जाते हैं और जल का उपद्रव और भी अधिक हो जाता है। कुछ समय के उपरान्त वह सारा प्रदेश उबड़-खाबड़ भूमि का रूप धारण कर लेता है और खेती के अयोग्य बन जाता है। जल के कटाव से भूमि की रक्षा करने का एकमात्र साधन यह है कि उस ऊबड़-खाबड़ प्रदेश मे वृक्ष लगाये जावे और इस प्रकार जल को भूमि नष्ट करने से रोका जावे। इसके अतिरिक्त यदि गाँव की भूमि को समतल तथा चौरस करा दिया जावे और चारों ओर ऊँची मेड़ बना दी जावें तो वर्षा का जल बहुत देर तक पृथ्वी पर रहने के कारण भूमि उसे अधिक सोख ले। परन्तु यह तभी हो सकता है, जब कि सारा गाँव संगठन के रूप मे इस कार्य को करे। इससे तीन बड़े लाभ होंगे, एक तो भूमि यथेष्ट जल पी लेगी जिससे सिंचाई की कम आवश्यकता होगी, दूसरे उस क्षेत्र के कुओं में सिंचाई के लिए यथेष्ट जल रहेगा, तीसरे भूमि का नाश नही होगा।

कुओं के द्वारा सिंचाई (Well Irrigation)

भारत मे कुएँ सिंचाई के मुख्य आधार हैं। यद्यपि नहरों के द्वारा भी यथेष्ट सिचाई होती है परन्तु कुओं का महत्व इस कारण है कि उनके द्वारा किसान सिंचाई के लिये स्वतत्र हो जाता है। वह जब चाहे सिंचाई कर सकता है। कुओं का पानी नहर के पानी से फसल के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होता है। अतएव जब किसी भी प्रदेश में मीठा पानी साधारण दूरी पर मिलता है वहाँ कुओं के द्वारा ही सिचाई होनी चाहिये।

जहाँ नहरें हैं वहाँ भी कुएँ खोदे जाने चाहिए जिससे किसान हर समय पानी पा सके।

कुएँ से पानी निकालने के लिये भारत मे रँहट तथा चरसा दो साधनों का उपयोग होता है। रँहट (Persian Wheel) से एक लाभ यह है कि एक ही आदमी रँहट चला सकता है यहाँ तक कि एक छोटा लड़का भी रँहट को चला सकता है। रँहट मे लडके को केवल बैलों को हाँकने का ही काम होता है। परन्तु चरसा में दो आदमियों की आवश्यकता होती है। एक बैलों को हाँकता है, दूसरा चरसा (पुर) को लेता है। राजस्थान तथा मध्यभारत मे चरसा (पुर) के निचले भाग में चमड़े का एक मोटा नल और जुडा रहता है, उस नल का मुँह एक पतली डोरी से बँधा रहता है। डोरी का सिरा बैल हाँकने वाले के हाथ मे रहता है। जब पुर कुएँ के ऊपर आ जाता है तो बैल हाँकने वाला उस डोरी को ढीला कर देता है और पुर का पानी उस चमडे के नल द्वारा गिर पड़ता है। इस प्रकार पुर को लेने वाले मनुष्य की आवश्यकता नहीं पड़ती। फिर जो कुएँ बहुत गहरे नही हैं उन पर रँहट लगाना ही अधिक सुविधाजनक होता है।

उत्तर प्रदेश में ट्यूब वेल (Tube Wells in U. P.)

उत्तर प्रदेशीय सरकार ने लगभग दो करोड रुपये व्यय करके १६५० ट्यूब-वेल खुदवाये हैं और भी खोदे दे जा रहे हैं। बदायूँ, मुजफ्फरनगर, बिजनौर, मेरठ, बुलन्दशहर, अलीगढ तथा मुरादाबाद जिलों मे बहुत बड़ी संख्या में ट्यूब-वेल खोदे जा रहे हैं और गंगा जी की नहर के जल से तैयार की हुई बिजली के द्वारा यह ट्यूब-वेल चलते हैं। ट्यूब-वेल लगभग एक हजार एकड़ भूमि को सींच सकता है। ट्यूब-वेल के द्वारा सिंचाई करने मे दो लाभ हैं। प्रथम तो किसान को जब वह चाहे तब सिंचाई के लिए पानी मिल सकता है। नहर की भाँति वह इस आशा में बैठा नहीं रहता कि जब नहर मे जल आवेगा तब सिंचाई हो सकेगी। इसका फल यह होता है कि जब नहर मे पानी आता है तो किसान आवश्यकता से अधिक पानी खेत मे देता है जिससे फसल को हानि पहुँचती है। क्योंकि किसान को यह ज्ञान नहीं होता है कि अब नहर मे कब पानी आवेगा। नहर का पानी अनिश्चित है और ट्यूब-वेल का पानी निश्चित है। ट्यूब-वेल के द्वारा सिंचाई करने

पर जितना भी किसान लेता है सबका उपयोग हो जाता है, इस कारण किसान पानी को किफायत से खर्च करता है। ट्यूबवेल से एक बहुत बडा लाभ यह होगा कि गॉवो मे जहॉ पीने के लिए शुद्ध जल की कमी है वहॉ शुद्ध जल मिल सकेगा। यदि प्रत्येक ट्यूब-वेल पर रेडियो लगा दिया जावे तो गॉवों के नीरस जीवन मे मनोरजन तथा ज्ञानवर्धन का एक अच्छा साधन उपलब्ध हो सकता है। ट्यूब-वेल के द्वारा एक लाभ और भी है— अर्थात् जिन जिलों मे होकर नहरे गई हैं उनमे नहरों के दोनों ओर ट्यूब-वेल बना पानी नहरों मे डाल दिया जाता है जिसमे नहरों मे प्रदेश के पश्चिमी जिलों के लिए यथेष्ट पानी हो जाता है। पश्चिमी जिलों मे वर्षा कम होती है और साधारणत: नहरों में भी वहाँ के लिए यथेष्ट जल नहीं रहता। बात यह है कि पूर्वी जिलों मे ही नहर का जल बहुत कुछ समाप्त हो जाता है। जब पश्चिमी जिलों मे नहरे पहुॅचती हैं तो उनमें यथेष्ट जल नहीं रहता। अब और जिलों मे ट्यूब-वेल खोदे जावेंगे। प्रादेशिक सरकार अब इस योजना को पूर्वी जिलों में चला रही है।

नहर के द्वारा सिंचाई (Canal Irrigation)

नहरो के द्वारा सिचाई उत्तर के प्रदेशों मे बहुत होती है। पू० पजाब तथा उत्तर प्रदेश बहुत कुछ नहरों पर ही अवलम्बित है। किसान नहर के पानी का कभी-कभी दुरुपयोग करते हैं, आवश्यकता से अधिक पानी खेत मे दे देते हैं। कुऍ के पानी को किसान बहुत सावधानी तथा सतर्कता से खर्च करते हैं, किन्तु नहर के पानी के प्रति वे उदासीन रहते हैं। इसका मुख्य कारण यह है, कि प्रत्येक फसल के लिए प्रति बीघा आबपाशी की दर निश्चित कर दी गई है। उदाहरण के लिए यदि एक किसान ईख की सिचाई करता है और प्रति बीघा कम पानी खर्च करता है तो उसकी आबपाशी प्रति बीघा उतनी ही देनी होगी जितनी कि एक दूसरा किसान देता है यद्यपि वह पहले किसान से कहीं अधिक पानी खर्च करता है। अतएव प्रत्येक किसान को यही लालच होता है कि वह अधिक से अधिक पानी खर्च करे इससे भूमि की हानि होती है। अनुमान किया जाता है कि उत्तर प्रदेश तथा पू० पंजाब मे जितनी भी नहरे निकल सकती थीं निकाल दी गईं।

तालाब (Tanks)

पहाडी प्रदेशों में अधिकतर बाँध बनवाकर वर्षा के जल को रोक लिया जाता है और उससे सिचाई की जाती है। राजपूताने के दक्षिणी भाग, मालवा, मध्य भारत तथा दक्षिण भारत में अधिकतर तालाबों से ही सिचाई होती है, क्योंकि नहरें वहाँ निकाली ही नहीं जा सकतीं। कुओं से सिचाई अवश्य होती है परन्तु कुओं को खोदना तथा उनको बनाना इन पहाडी प्रदेशों मे असाध्य है। राजस्थान तथा मध्य भारत मे जहाँ राज्यों ने बडे-बडे बाँध और तालाब सिचाई के लिए बनवाये हैं वहाँ गाँव वालों ने सामूहिक रूप से भी छोटे-छोटे बाँध बनाकर सिचाई के साधन उपलब्ध कर लिये हैं। इन तालाबों की मरम्मत भी गाँव वाले मिल कर स्वय करते हैं। साधारणतः यह नियम होता है कि गाँव के प्रत्येक व्यक्ति को एक घन फुट मिट्टी बाँध पर डालनी पडती है। दक्षिण मे ब्रिटिश शासन से पूर्व इस प्रकार के हजारों छोटे-छोटे बाँध (पट बँधा) गाँव वाले बना लेते थे किन्तु ब्रिटिश शासन काल मे वे तालाब नष्ट हो गये। प्रयत्न करना चाहिये कि किसान इस प्रकार सामूहिक रूप से वर्षा के जल का जितना भी उपयोग कर सके उतना करें।

यदि कहीं भूमि बहुत ऊँची है और नदी, तालाब अथवा नहर बहुत नीचे पर हैं, वहाँ बिजली, आयल ऐंजिन अथवा रहँट जो भी सुविधाजनक तथा प्राप्त हो, उसका उपयोग पानी को ऊपर उठाने मे किया जा सकता है। बिजली का उपयोग तो उसी क्षेत्र मे किया जा सकता है। जहाँ वह सस्ते दामों पर उत्पन्न की जाती हो। यह कार्य केवल सरकार कर सकती है। आएल ऐंजिन जमींदार तथा समृद्धिशाली किसान लगा सकते हैं। रँहट का उपयोग प्रत्येक किसान कर सकता है।

यह अति आवश्यक है कि देश में खाद्य-पदार्थों की उपज बढाई जाय। हमारे यहाँ खेती की एक मुख्य कठिनाई सिचाई भी है। नहरों और बाँधों की व्यवस्था करने में कई वर्ष लगेंगे। अतः इस बीच मे तालाबों की ओर ध्यान देना अति आवश्यक है। सन् १६४८ से उत्तर प्रदेश तथा अन्य प्रदेशों की सरकारों ने तालाब खुदाई आन्दोलन आरम्भ किया है। पिछली कई

शताब्दियों से हमारे तालाबों की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है। अतः तालाब मिट्टी से भर गये हैं और टूटी-फूटी अवस्था मे हैं। प्रादेशिक सरकार इन तालाबों की पुनः खुदाई और मरम्मत तथा नए तालाबों की खुदाई के लिये प्रयत्नशील है। वह देहातियों के सहयोग से इस कार्य को आगे बढ़ा रही है।

देश मे उद्योग धंधो तथा खेती की उन्नति करने के लिए सरकार ने बड़ी बड़ी नदी-योजनाओं को हाथ मे लिया है जिनसे प्रचुर मात्रा मे सिचाई होगी तथा जलविद्युत् उत्पन्न होगी। इनमें दामोदर घाटी योजना (बिहार में), हीराकुंड योजना (उड़ीसा मे), कोसी योजना (बिहार और नैपाल में), नायर बांध और रिहाड बॉध (उत्तर प्रदेश में), भाखरा तथा नानगल बॉध पूर्वी पञ्जाब में तथा तु गभद्रा योजना (मदरास और हैदराबाद में) मुख्य हैं। इनका विस्तृत विवरण भारत का आर्थिक भूगोल मे देखिये। इनके बन कर तैयार हो जाने पर लाखों एकड़ भूमि सींची जा सकेगी और खेती का विकास होगा। सिंचाई के अतिरिक्त इनके द्वारा जलविद्युत् गॉव-गॉव पहुॅचा दी जावेगी।

साख (Credit)

प्रत्येक धन्धे मे साख की आवश्यकता पड़ती है। उत्पादन-कार्य (Production) मे लगे हुये प्रत्येक व्यक्ति को पूॅजी (Capital) की आवश्यकता होती है। किसान को खेती के लिए ऋण लेना पड़ता है। परन्तु भारत मे किसान इतना गरीब है कि उसे अनुत्पादक (Unproductive) तथा उत्पादक (Productive) सभी कार्यों के लिये महाजन से ऋण लेना पड़ता है। महाजन किसान की गरीवी का अनुचित लाभ उठा कर उससे बहुत अधिक सूद लेता है। ऋण इस लिए लिया जाता है कि उससे खेती की जावे और खेती के लाभ से सूद सहित ऋण चुका दिया जावे। परन्तु यदि सूद इतना अधिक हो जितना कि खेती से लाभ हो ही न सके तब तो ऐसा ऋण किसान को सदा के लिये ऋणी बना देता है। यही अवस्था भारतीय किसान की है। ग्रामीण ऋण के सम्बन्ध मे 'ग्रामीण ऋण तथा उसके कारण' शीर्षक अध्याय में विस्तारपूर्वक लिखा जायगा।

अतएव किसानों को साख का प्रबन्ध करने के लिये अपने-अपने गाँव मे 'कृषि-सहकारी-साख-समिति, (Co-operative Credit Society) की स्थापना करना चाहिये। "कृषि-सहकारी-साख-समिति" के विषय में एक पृथक् अध्याय मे विस्तार-पूर्वक लिखा जायगा।

श्रम और सगठन (Labour aud Organisation)

श्रम और सगठन के अन्तर्गत किसानों का स्वास्थ्य, उनकी शिक्षा, फसलों के शत्रु तथा पैदावार को बेचने की समस्याओं का वर्णन होगा। ग्रामीण जनता के स्वास्थ्य तथा उनकी शिक्षा के सम्बन्ध में हम पूर्व ही लिख चुके हैं। जब तक किसानों का स्वास्थ्य अच्छा न होगा और उन्हे शिक्षित नहीं बनाया जावेगा तब तक वे अच्छे खेतिहर नहीं बन सकेंगे।

फसलों के शत्रु (Enemies of crops)

केवल अच्छे बीज, खाद और हल-बैल से ही खेती-बारी की उन्नति नहीं हो जावेगी। यदि एक ओर फसलों को अच्छा बनाने का प्रयत्न किया जावे और दूसरी ओर फसलों के शत्रु उसे नष्ट कर दे तो सारा प्रयत्न निष्फल हो जावेगा। अतएव फसलों को उनके शत्रुओं से बचाने की बहुत आवश्यकता है। फसलों के दो प्रकार के शत्रु होते हैं। एक तो फसलों के कीडे जो फसल को नष्ट कर देते हैं दूसरे वे जङ्गली तथा पालतू पशु और पक्षी जो फसलों को खा जाते हैं।

फसलों के कीडे बहुत भयंकर होते हैं। प्रत्येक फसल का कोई कीड़ा होता है। जिस क्षेत्र में भी कीडा लग जाता है उस क्षेत्र की फसल को वह नष्ट कर डालता है। फिर कोई खेत उससे बच नहीं सकता। कभी-कभी तो फसल के कीड़ों का ऐसा भयंकर प्रकोप हो जाता है कि साधारण प्रयत्न से वह जाता ही नहीं। तब कृषि-विभाग को ऐसे बीज उत्पन्न करना पड़ता है जिसमे वह कीड़ा नहीं लग सकता। भारत में ही केवल यह समस्या हो ऐसी बात नहीं है—जर्मनी और अमेरिका जैसे देश मे भी फसल के कीडों की समस्या उठ खड़ी होती है।

फसल के कीड़े विदेशों से भी आ सकते हैं। इस कारण प्रत्येक देश ने ऐसे कानून बना दिये हैं कि जिससे ऐसी कोई खेती की पैदावार जिसमें बीमारी अथवा कीड़े लगे हों देश मे आने से रोकी जा सकती है। सन् १९१४ में भारत मे भी एक कानून बना दिया गया जिसके अनुसार यदि बन्दरगाह के अधिकारी किसी खेती की पैदावार को कीड़ों से युक्त पावे तो उसको देश के अन्दर न आने देवें। इस कानून के द्वारा विदेशों से कीड़ों का भारत में आने का भय तो नही रहा, किन्तु देश के अन्दर फसलों के कोड़े तथा बीमारियो की कमी नहीं है।

फसल के कीडों को नष्ट करने अथवा उन्हे उत्पन्न ही न होने देने के लिए यह आवश्यक है कि कृषि विभाग तथा किसानों का पूरा सहयोग हो। यही नहीं; आवश्यकता पड़ने पर सारे गाँव को संगठित रूप में कीड़ों को नष्ट करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। यह ध्यान में रखने की बात है कि यदि इस वर्ष कुछ खेतों में कीड़ा है तो अगले वर्ष वह अन्य खेतो पर भी आक्रमण करेगा। टीड़ी और फसल के कीड़ों को कृषि विभाग के बतलाये हुए उपायों के अनुसार सामूहिक रूप से ही नष्ट किया जा सकता है। इस कार्य मे सम्पूर्ण गाँव के सहयोग की आवश्यकता होती है।

साधारणत: फसल में बीमारी अथवा कीड़े लगने के वे ही कारण हैं जो कि मनुष्य के शरीर में रोग की उत्पत्ति के कारण हैं। जो खेत ठीक तरह से जोते नही जाते, जिनमें कम खाद डाली जाती है अथवा कम सड़ी खाद डाल दी जाती है, जिस खेत मे निराई नहीं होती, आवश्यकता से अधिक अथवा बहुत कम पानी दिया जाता है, उस खेत मे फसल निर्बल होती है और उस पर बीमारी तथा कीड़ों का आक्रमण शीघ्र होता है। किसान को निरन्तर फसल पर अपनी दृष्टि रखनी चाहिये और जैसे ही उसे ज्ञात होता हो कि फसल में बीमारी या कीड़ा लग रहा है उसे तुरन्त कृषि-विभाग से सलाह लेकर उसका इलाज करना चाहिये।

फसल मे कीड़ों के लगने का एक मुख्य कारण यह है कि किसान अथवा वे महाजन और जमींदार जो कि खत्तियों और कोठारों मे बीज के लिए अनाज भरते हैं, बीज की सफाई का ध्यान नही रखते और उन खत्तियों या

कोठारों को ही साफ करते हैं। इसका फल यह होता है कि बीज खराब हो जाता है, उसमें कीड़ा लग जाता है, और जब फसल तैयार होती है तो कीडा करोड़ों की सख्या मे बढकर फसल को नष्ट करता है। बीज तथा बीज-भंडार को कीडों से मुक्त करने का यह एक सरल तथा सफल उपाय है कि जहाँ बीज रक्खा जाता है उसे हर बार जब उसमें बीज भरा जावे साफ कर लिया जावें और बीज को भी साफ कर लिया जावे। इसके उपरान्त उस कोठार को चारो ओर से गीली मिट्टी से बन्द करके अंगीठी में जलते हुए कोयलों पर गधक डाल कर उसे कोठार में रख दिया जावे। जब खूब धुआँ भर जावे तो कोठार का दरवाजा बन्द कर दिया जावे। दो दिन बन्द रखकर कोठार को साफ किया जावे तब उसमें बीज भरा जावे।

परन्तु इतने पर भी यदि किसी के खेत में अथवा अधिक खेतों में कीडे लग जावें तो उस समय से पूर्व जब कि वे अपनी वंश-वृद्धि करते हैं उनको नष्ट कर दिया जाना चाहिये। उनके अडे तथा नर और मादाओं जिस प्रकार कृषि विभाग बतलाए अवश्य नष्ट कर डालना चाहिये। इन कीड़ों को नष्ट करने तथा टिड्डी के अंडों और असख्य टीड्डियों को भूमि मे खोद कर निकालने तथा उन्हे खाइयों में दबा कर मार डालने के लिए बहुत से व्यक्तियों की आवश्यकता होगी। कृषि-विभाग को भिन्न-भिन्न फसलों के कीडों को कब और कैसे नष्ट किया जाना चाहिए इसका प्रचार करना चाहिए और गॉव के लोगों को मिलाकर कीड़ों के विरुद्ध युद्ध करना चाहिए। इस कार्य मे गॉव के स्काउट (बालचर) तथा गॉव की पाठशाला के विद्यार्थियों से खूब सहायता मिल सकती है। गॉव के बालचरों और स्कूल के विद्यार्थियों को यह बतलाया जाना चाहिए कि इन कीडों को नष्ट करना गॉव की सबसे बड़ी सेवा है।

जिस खेत में कीड़ा लग चुका हो उसकी फसल काट लेने के उपरान्त उस खेत मे आग लगा देनी चाहिए और दूसरे साल नया और अच्छा बीज मोल लेकर खेत में डालना चाहिये। इतना करने पर ही कीडे को समूल नष्ट किया जा सकता है।

परन्तु जब कोई कीड़ा बहुत बडे क्षेत्र मे बहुत दिनो तक पनपता रहता

है तब इस प्रकार सारे प्रयत्न करने पर भी वह दूर नहीं होता। उस दशा मे कृषि-विभाग को ऐसा बीज उत्पन्न करना चाहिये कि जिसमे वह कीड़ा न लग सके।

कीड़ों के अतिरिक्त जंगली पशु भी खेती का नुकसान करते हैं। बम्बई प्रदेश मे इस समस्या पर विचार करने के लिये एक कमेटी बिठलाई गई थी। उसका अनुमान था कि केवल बम्बई प्रदेश मे प्रतिवर्ष जगली पशुओ के द्वारा सत्तर लाख रुपये की खेती की हानि होती है। सुअर, गीदड़, चूर, जगली बिलाव, बन्दर तथा अन्य जगली पशु खेती को नष्ट कर डालते हैं। जगली पशुओ से फसल की रक्षा करने के दो उपाय हैं। (१) खेतों के चारों ओर काँटेदार झाड़ी अथवा मिट्टी की ऊँची बाढ़ बनाई जावे जिससे कि जंगली जानवर फसल को नष्ट न कर सके। (२) गाँव वालों को ऐसे जानवरों को मारने के लिए बन्दूक के लायसेंस दे दिये जावें। किन्तु बाढ़ बनाना अथवा कोई काँटेदार झाड़ी खेतों के चारों ओर लगाना श्रमसाध्य तथा खर्चीला है। यदि खेत बिखरे हुए न हों, एक चक मे हों तो किसान बाढ़ अथवा काँटेदार झाड़ी लगा सकता है।

खेती की पैदावार बेचने की समस्या
(Marketing of Agricultural Produce)

किसान के लिए केवल यही आवश्यक नहीं है कि वह खेत मे अधिक पैदावार उत्पन्न करे। अच्छी फसल उत्पन्न करने के साथ ही यह भी आवश्यक है कि वह अपनी पैदावार का अधिक से अधिक मूल्य भी प्राप्त करे। यदि किसान खेत में अधिक पैदावार उत्पन्न कर भी ले किन्तु उसको अपनी पैदावार का कम मूल्य मिले तो उसका परिश्रम और व्यय व्यर्थ जावेगा। अतएव किसान को अपनी पैदावार का अधिक से अधिक मूल्य मिलना चाहिये। परन्तु आज कल जैसी अवस्था है उसके कारण किसान को अपनी पैदावार को सस्ते दामो पर बेच देना पड़ता है जैसा कि क्रय-विक्रय सहकारी समितियों की आवश्यकता बतलाते हुये पहिले कहा जा चुका है।

किसान की निर्धनता उसको सस्ते दामों पर अपनी पैदावार बेचने के लिए विवश करती है। यदि वह किसी महाजन अथवा व्यापारी का ऋणी

है तो उसको उस व्यापारी अथवा महाजन के हाथ पैदावार वेचनी होती है। कहीं-कहीं ऋण लेते समय यह वात तय हो जाती है, कि किसान फसल सस्ते दामों पर अपने महाजन को देगा। यदि किसान अपने महाजन को वेचने के लिये वँधा नहीं हो तो भी उसे लगान, आवपाशी तथा ऋण चुकाने के लिए फसल तैयार होते ही वाजार में वेचनी पड़ती है। उस समय भाव गिरा हुआ होता है। अतएव किसान को सहकारी विक्रय समितियों के द्वारा ही अपनी फसल वेचना चाहिये तभी उसको अपनी पैदावार का अच्छा मूल्य मिल सकता है।

गाँवों की सड़के (Village Roads)

इस सम्बन्ध में एक वात और ध्यान देने योग्य है। गाँवों में पक्की सड़कें तो हैं ही नहीं, अधिकांश गाँवों की कच्ची सड़के भी इतनी खराव होती हैं कि गाँव से पैदावार का गाड़ियों में भरकर मंडियों तक लाना वहुत कठिन होता है। वरसात में तो वे दलदल के अतिरिक्त और कुछ नहीं होतीं, गाँव की सड़के खराव होने के कारण गाँव में गमनागमन के साधनों का नितान्त अभाव होता है। यह ध्यान में रखने की वात है कि जव तक गाँवों की सड़कों का सुधार नहीं होता तव तक गाँवों की आर्थिक दशा भी नहीं सुधर सकती। परन्तु गाँव की सड़कों को सुधारने का काम इतना खर्चीला है कि जव तक किसान और जमींदार कुछ स्वयं करने को तैयार न हों तव तक सरकार भी कुछ नहीं कर सकती। किन्तु सड़कों को सुधारने के लिए सारे गाँव को संगठित रूप में प्रयत्न करना होगा। कहीं-कहीं एक से अधिक गाँवों के सहयोग की आवश्यकता होगी। सडक सुधर जाने पर वैलों की टाँगे और गाड़ियों के पहिये नहीं टूटा करेंगे।

मंडियों का पुनर्संगठन (Market Reorganisation)

मंडियों में किसान को कई तरह से लूटा जाता है जैसा कि पहले वताया जा चुका है। दलाल अधिकतर व्यापारी को लाभ कराने का प्रयत्न करते हैं। किसान के दामों में से वहुत सा धर्मादा (गऊशाला, पाठशाला, मन्दिर, प्याऊ, धर्मशाला इत्यादि के लिये) तथा मनमाने खर्च काट लिये जाते हैं।

बहुत से स्थानो पर बॉट भारी रख लिए जाते हैं और तौलने में किसानों को धोखा दिया जाता है। कभी-कभी भाव तय हो जाने पर जब किसान गाड़ी खाली कर देता है और तौल शुरू हो जाती है तब यह कह कर कि अन्दर माल खराब निकला उसको मूल्य कम लेने पर विवश किया जाता है। इस प्रकार के अनेक दोष मंडियों मे हैं। शाही कृषि कमीशन ने यह सिफारिश की है कि प्रत्येक प्रदेश मे मडी कानून (Market Act) बना कर इन दोषों को दूर कर दिया जावे। परन्तु इन दोषों के दूर हो जाने पर भी किसान को तो अपनी पैदावार को सहकारी विक्रय समिति के द्वारा ही बेचना चाहिये।

किसान को सतर्क तथा परिश्रमी होना चाहिये

खेती मे सफलता तभी मिल सकती है जब कि किसान उन सब बातो को अपनावे जिनसे अच्छी फसल उत्पन्न होने की सम्भावना हो और लगकर खेत पर परिश्रम करे। भारत मे यद्यपि अधिकांश खेतिहर जातियॉ परिश्रमी हैं किन्तु हिन्दुओं की ऊँची कही जाने वाली जातियो के लोग अच्छे किसान नहीं होते। खेती एक बहुत महत्वपूर्ण धन्धा है। उसको नीचा नहीं समझना चाहिये। किसान को परिश्रम के अतिरिक्त बुद्धि से काम लेना चाहिये। उसे अपनी भूमि की उपजाऊ शक्ति को ध्यान मे रखकर वही फसल बोनी चाहिये जिससे उसे अधिक लाभ हो। बाजार की मॉग (Demand) को भी उसे ध्यान मे रखना चाहिये। केवल उसे इसलिए कपास नही बोना चाहिये कि वह पहले भी कपास बोता था। उसे कपास की मॉग और उसके मूल्य को देखकर ही उसे बोना चाहिये। फसलों के हेर-फेर (Rotation of Crops) का उसे पूरा ध्यान रखना चाहिये, जिससे कि भूमि की उपजाऊ शक्ति घटने न पावे।

अभ्यास के प्रश्न

१—भारत में खेती की दशा खराब क्यों है ?

२—बिखरे हुए छोटे-छोटे खेतों से क्या हानि होती है ?

३—खेतों की चकबन्दी से क्या लाभ हैं ?

४—किसान गोबर की खाद क्यों नहीं बनाता ? गडहों मे खाद तैयार करने से क्या लाभ होगा ?

५—किसान खेती के बडे-बड़े यन्त्रों और आधुनिक औजारों को काम मे क्यों नहीं लाता ?

६—भारत मे किसान की जरूरतों को देखते हुये कैसे खेती के औजार और यन्त्र उपयुक्त होंगे ?

७—किसान ज्यादातर कैसे बीज खेत में डालता है ? किसान को अच्छा बीज कहाँ से और कैसे प्राप्त हो सकता है ?

८—वर्षा के जल से भूमि का कटाव (Erosion of Soil) क्या होता है और उससे क्या हानि होती है ?

९—ट्यूबवेल द्वारा सिंचाई से क्या-क्या लाभ हैं ? उत्तर प्रदेश के किन-किन जिलों मे ट्यूबवेल हैं ?

१०—नहर के पानी से जमीन कमजोर क्यों हो जाती है ?

११—फसलों के कौन से शत्रु हैं और उनसे क्या हानि होती है ?

१२—फसलों को उसके शत्रुओ से कैसे बचाया जा सकता है ?

१३—फसलों मे कीडे कैसे लग जाते हैं ?

१४—किसान अपनी पैदावार का अधिक से अधिक मूल्य क्यों नहीं पाता ?

१५—भारत मे मंडियों के वर्तमान प्रबन्ध से किसान को क्या हानि है ?

१६—भारत में खेती की उन्नति किस प्रकार हो सकती है। समझा कर लिखिये ।

तेइसवाँ अध्याय

मुकदमेबाजी (Litigation)

आज भारत के ग्रामों मे ईर्ष्या, द्वेष, कलह का साम्राज्य है। साधारण सी बातों पर फौजदारी हो जाना, लम्बे मुकदमों के कारण घर के घर तबाह हो जाना गाँवों में आये दिन की बात हो गई है। मुकदमेबाजी ग्रामीण के ऋणी होने का एक मुख्य कारण है। भारतीय न्यायालयों मे किसानो को किस प्रकार लूटा जाता है यह किसी से छिपा नहीं है। मुकदमेबाजी एक ऐसा भयकर रोग है कि जिसके कारण गाँवों के लोग दिवालिये होते जा रहे हैं। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री, श्री एम० एल० डार्लिङ्ग का तो यहाँ तक कहना है "जिस प्रकार अगरेजों का जातीय खेल क्रिकेट है उसी प्रकार मुकदमेबाजी भारतीयों का जातीय खेल प्रतीत होता है।" इसमे तनिक भी सन्देह नहीं कि यह रोग यहाँ बुरी तरह फैला हुआ है।

यह तो सर्वमान्य बात है कि जुर्म करने की भावना का उदय सामाजिक विषमता अथवा समाज की गिरी हुई दशा के कारण होता है। यदि मनुष्य जिस वातावरण में रहता है वह अच्छा नहीं है तो वह मनुष्य भी अच्छा नही बन सकता। भारतीय ग्रामीण जिस प्रकार का जीवन व्यतीत करता है उसका परिणाम इसके अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है कि आपस में लडे और आपस मे मुकदमेबाजी करे। भारतीय ग्रामीण अधिकाश मे अशिक्षित, ऋण के बोझ से दबा हुआ, अस्वस्थ, निर्धन, फिजूलखर्ची, खराब रस्मों को माननेवाला, कही-कही नशा पीने वाला, आलसी, मनोरजन के साधनों से हीन, तथा अत्यन्त गन्दे स्थानों पर रहता है। इस प्रकार के वातावरण मे रहकर उसका हमेशा शान्तिप्रिय रहना कठिन है। यही कारण है कि कृषक जो स्वभावत: शान्तिप्रिय होता है कभी-कभी कलहप्रिय हो उठता है और अपना सर्वनाश कर देता है। कुछ विद्वानों का तो यहाँ तक कहना है कि गाँवो मे मनोरंजन के तथा खेलने के साधन न होने के कारण उसका लड़ने तथा झगड़ने में भी कुछ मन बहलाव होता है, इसी कारण सीधा-सादा किसान कभी-कभी लड़ बैठता है। यदि गाँवों में मनोरंजन के साधन उपलब्ध

हो जावे और गाँवों की दशा मे सुधार हो जाये तो लड़ाई-झगड़े तथा मुक़दमे-बाजी मे बहुत कमी हो सकती है ।

लड़ाई-झगडे को दूर करने के लिए निम्नलिखित बाते आवश्यक हैं :—

(१) लाभदायक कार्य, सुरुचिपूर्ण मनोरजन तथा खेल, (२) आकर्षक घर, और (३) सगठित गॉव ।

खेती का सुधार होने के अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि किसान को ग्राम उद्योग धन्धे सिखाये जावे जिससे कि वह बेकारी के समय उन धंधों से कुछ कमा ले । इससे यह लाभ होगा कि वह काम मे लगा रहेगा और जो साल में चार-पॉच महीने वह बेकार रहता है, वह न रहेगा । इसके अतिरिक्त मनोरज़न तथा खेल-कूद के साधन भी उसको मिलने चाहिये ।

आकर्षक गृह (Attractive Homes)

केवल इतने से ही काम न चलेगा, हमको गाँव मे रहने वालों के घरों को अधिक सुन्दर तथा आकर्षक बना देना चाहिये । जब मनुष्य का घर मे मन नही लगता है, उसकी स्त्री गृहस्थी को बनाना नहीं जानती, खाना पकाना, घर को सुन्दर और साफ रखना तथा बच्चों का लालन-पालन करना नहीं जानती तथा पति के साथ सहयोग नहीं करती तो पुरुषों मे लडाई-झगड़े की मनोवृत्ति उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है । यदि घर सुन्दर और आकर्षक हो, गृह स्वामिनी घर का संचालन सभी प्रकार करती हो और गृहस्थी सुखमय हो तो कौन अपने स्वर्ग सदृश घर को छोड कर शराब पीने वाले अथवा लड़ाई-झगडा करने वालों मे सम्मिलित होगा । सुखमय घर जुर्म तथा लडाई-झगडे को कम करने का मुख्य साधन है ।

इसके अतिरिक्त दो बाते और हैं, गाँव वालों मे आत्मसंयम (Self-Control) तथा स्वाभिमान लेश-मात्र भी नहीं रहा है । किसी भी जाति में यह दो गुण मिल-जुल कर रहने के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं । परन्तु यह गुण गाँववालों में तभी आ सकते हैं जब कि गॉव की स्त्रियॉ बच्चों का लालन-पालन करना जानती हों तथा वे शिक्षित हों, जिससे कि आरम्भ में ही

गाँव के बच्चों में आत्मसंयम, इत्यादि आवश्यक गुण उत्पन्न हो सकें। इस दृष्टि से ग्रामीण स्त्रियों के सुधार की अत्यन्त आवश्यकता है।

घरों को अधिक सुन्दर बनाने के लिये भारत मे गृह-वाटिका (Home Garden Plot) आन्दोलन चलना चाहिये। प्रत्येक घर के साथ एक छोटी सी वाटिका हो। उसमें तरकारी, फूल और फल के वृक्ष लगाये जावें। घर भर के लोग उसमे अवकाश के समय काम करें। गृह-वाटिका से घर अधिक सुन्दर बनेगा साथ ही मन बहलाव भी होगा।

पंचायत अदालत

इस समय भारतीय ग्राम अत्यन्त गिरी हुई दशा में हैं। प्रत्येक सभ्य देश में गाँवों का एक संगठन होता है जो गाँव के सम्बन्ध की देखभाल करता है। भारत में ब्रिटिश शासन के पूर्व गाँव की पंचायत एक जीवित संस्था थी। तब गाँवों की दशा ऐसी खराब नहीं थी। आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक चार-पाँच गाँवों में एक पंचायत अदालत स्थापित की जाय जो गाँव मे लड़ाई-झगड़ों तथा मुकदमेबाजी को रोके और कोई झगड़ा हो भी जावे तो उसका निपटारा करे। यदि पंचायत अदालत ठीक तरह से काम करे तो गाँवों की दशा सुधर जाय और उनमे बहुत कम झगड़े हों और उनमें से भी अधिकाश का पचायत ही निर्णय कर दे। निर्धन ग्रामीण उस लम्बी मुकदमेबाजी से बच जावें जो कि उनको तबाह कर देती है।

उत्तर प्रदेश मे प्रत्येक पचायत से पंचायत-अदालत के लिये पाँच पंच चुन लिये जाते हैं। जब कोई झगड़ा उठ खड़ा हो तो पहले तो पंच दोनों पक्षों में समझौता कराने की कोशिश करते हैं और यदि समझौता न हो सके तो फिर पंचायत फैसला कर देती है। पंचायतों में वकीलों को आने की आज्ञा नहीं है।

अभी तक जो पंचायतें देश मे स्थापित की गई उनके पंचो को सरकार नामजद करती थी और उनको १० रुपये से अधिक जुर्माना करने का अधिकार नहीं था इस कारण वे अधिक सफल नहीं हुईं। अब पंचायत अदालत को एक सौ रुपये जुर्माना करने का अधिकार दे दिया गया है। हर्ष की बात है कि अब उत्तर प्रदेश के गाँव में हजारों पंचायत अदालतें स्थापित हो गई हैं। इनका कार्य अच्छी तरह से चल रहा है।

अभ्यास के प्रश्न

१—भारत के गाँवों में लड़ाई-झगड़े बहुत होते हैं। इसका क्या कारण है?

२—मुकदमेबाजी से गाँव वालों की क्या हानियाँ हैं और उनको कम करने का क्या उपाय है?

३—गाँवों और गाँवों के रहने वालों की गिरी हुई दशा का लड़ाई-झगडे और मुकदमेबाजी से क्या सम्बन्ध है?

४—यदि गाँव में एक ऐसी पंचायत हो जिसमें सबकी श्रद्धा हो तो उसका क्या प्रभाव पड़ेगा?

५—शराबबन्दी में गाँवों में लड़ाई-झगड़े कहाँ तक बन्द हो सकते हैं?

६—यदि किसानों के घर अधिक आकर्षक बन जावें तो उसका किसानों पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

७—गाँवों में घरों को अधिक आकर्षक बनाने के लिए किन बातों की जरूरत है?

चौबीसवाँ अध्याय

ग्रामवासियों को ऋणमुक्त करना

भारत में ग्रामीण ऋण की समस्या अत्यन्त भयंकर हो उठी है और आज सरकार, राजनीतिज्ञ और जनता सभी का ध्यान इस महत्वपूर्ण समस्या की ओर आकर्षित हो गया है। भारत के गाँवों में रहने वाले किसान कर्ज के भयंकर बोझ से इस बुरी तरह से दबे हुए हैं कि साधारण रूप से उनके छुटकारे की कोई आशा नहीं हो सकती। ऋणी होने के कारण किसानों का राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा चरित्र विषयक पतन हो रहा है। कहीं-कहीं तो उनकी दशा अपने महाजन के मोल लिए हुए दास जैसी हो गई है। यह निर्विवाद है कि देश की आर्थिक दशा सुधारने लिए इस समस्या को हल करना आवश्यक है। जब कि जनसंख्या का

एक बहुत बड़ा भाग दासता का जीवन व्यतीत करता हो तब देश की आर्थिक उन्नति का प्रयत्न करना निष्फल है।

सन् १६३० में जो केन्द्रीय बैंकिंग जाँच कमेटी बैठाई गई थी उसने ब्रिटिश भारत के समस्त प्रदेशों के ग्रामीण ऋण का अनुमान लगाया है। उक्त कमेटी के हिसाब से समस्त ब्रिटिश भारत का ग्रामीण ऋण उस समय ६०० करोड रुपये था। किन्तु सन् १६३० से ही खेती की पैदावार का मूल्य बहुत घटगया और उसी अनुपात में ऋण का बोझा बढ गया। अर्थशास्त्र के विद्वानों का मत है कि सन् १६३६ में ग्रामीण ऋण उस समय से लगभग दुगुना अर्थात् १८०० करोड रुपये के लगभग होगा। ध्यान में रखने की बात है कि इन अंकों में देशी राज्यों के ग्रामीण ऋण के अङ्क सम्मिलित नहीं हैं। सन् १६१० में उत्तर प्रदेशीय बैंकिंग जाँच कमेटी के अनुसार उत्तर प्रदेश का ग्रामीण ऋण लगभग १४४ करोड रुपये था।

सन् १६३६ में महायुद्ध आरम्भ हो गया जिसके फलस्वरूप खेती की पैदावार का मूल्य बेहद बढ गया। इससे कर्जे का बोझ कुछ हलका जरूर हुआ। अगर इस अवसर का लाभ उठाया जाता और सरकार इस तरफ ध्यान देती तो किसान का सारा कर्जा चुकाया जा सकता था। लेकिन किसान ने उस रुपये का उपयोग चाँदी खरीदने, कपडे तथा अन्य वस्तुओं को मोल लेने, तीर्थ यात्रा, विवाह और भोजों में किया और कर्ज पैसे का वैसा ही बना रहा।

कितने लोग कर्जदार हैं। कुछ अर्थशास्त्र के विद्वानों का मत है कि ६० से सत्तर प्रतिशत ग्राम निवासी कर्जदार हैं।

महायुद्ध और ऋण

सन् १६३६ के उपरान्त जब से द्वितीय महायुद्ध आरम्भ हुआ तब से खेती की पैदावार का मूल्य बहुत बढ़ गया है और कुछ अर्थशास्त्री यह मानने लग गये हैं कि किसान ऋण मुक्त हो गये हैं। परन्तु, हम जैसा ऊपर कह आये हैं, ऐसा नहीं हुआ है। फिर भी यह मानना होगा कि ऋण का भार कुछ हलका अवश्य हुआ है। अभी कुछ दिन हुये मद्रास सरकार ने इस सम्बन्ध में एक जाँच करवाई थी। उससे यह ज्ञात हुआ कि २० प्रतिशत ऋण कम हुआ है और बड़े किसानों के ही ऋण में कमी हुई है छोटे किसानों की दशा वैसी ही है। हा, यदि इस समय सरकार ऋण की जाँच करवा कर उसे कानून बना कर घटा दे और उसकी अदायगी का कुछ प्रबन्ध करे तब समस्या हल हो सकती है। परन्तु यदि ऐसा कुछ न हुआ, किसान की आज की खुशहाली शादियों, सोना-चादी, तीर्थ-यात्रा, मेलों, तमाशों पर कम हो गई और आगे चल कर खेती की पैदावार का मूल्य कम हो गया तो फिर किसान कर्जे के बोझ से ऐसा दब जावेगा कि उसका बचना कठिन होगा।

कर्जदार होने के कारण

१—पैतृक ऋण

किसान को कर्जदार बनाने में उसके बाप के समय का कर्ज बहुत सहायक होता है। बाप का ऋण चुकाना एक धार्मिक कर्तव्य समझा जाता है। बाप के मरने पर महाजन पुत्र से पुराने कर्जे के लिये नया कागज लिखवा लेता है।

२—महाजन के लेन-देन करने का ढंग

महाजन इतना अधिक सूद लेता है कि यदि कोई किसान एक बार महाजन के चगुल मे फॅस गया तो फिर उसका ऋण-मुक्त होना असम्भव हो जाता है। गाँवों में भिन्न-भिन्न प्रदेशो में सूद की दर भिन्न है, परन्तु फिर भी साधारणतः यह कहा जा सकता है कि किसान को २५ से ७५ प्रतिशत सूद देना होता है। इतना अधिक सूद किसान कैसे दे सकता है ? फल

यह होता है कि ऋण बढता जाता है। किसान जो कुछ देता है वह सूद मे ही कट जाता है और किसान कभी भी ऋण से मुक्त नहीं हो पाता। किसान अशिक्षित होता है इस कारण कभी-कभी महाजन हिसाब मे गड़बड़ कर देता है और किसान को धोखा दे देता है।

३—किसान के पास खेती के लिये यथेष्ट-भूमि का न होना

साधारण किसान के पास इतनी भूमि नही कि वह उस पर खेती करके अपने कुटुम्ब का पालन कर सके। देश मे उद्योग-धन्धे कम होने के कारण आवश्यकता से अधिक जनसंख्या खेती बारी पर अवलम्बित है। इस कारण खेती के योग्य भूमि की बहुत कमी है। केवल यही खराबी नहीं है, जो कुछ भी भूमि किसान के पास है वह भी एक स्थान पर न होकर दूर-दूर छोटे-छोटे टुकड़ों में बिखरी होती है (Fragmented Land holdings)। इन बिखरे हुये खेतों के कारण वैज्ञानिक ढङ्ग से न खेती हो सकती है और न खेती में लाभ हो सकता है।

अनिश्चित खेती

भारत मे खेती अत्यन्त अनिश्चित है, किसी साल वर्षा कम होने से, अथवा वर्षा अधिक होने से, ओला या पाला पडने से, या फसल के कीड़े लग जाने से अथवा अन्य किसी कारण से जब फसल मारी जाती है तो किसान को कर्ज लेना पड़ता है।

बैलों की मृत्यु

पशुओं की महामारी (प्लेग आदि) फैलने से भारत मे प्रतिवर्ष लाखों पशु मरते हैं। किसान के बैल मर जाने पर उसे कर्ज लेकर नए बैल मोल लेने पडते हैं।

सामाजिक तथा धार्मिक कृत्यों में अधिक व्यय करना

भारतीय ग्रामीण विवाह, मृत्यु, जन्म तथा अन्य धार्मिक और सामाजिक कृत्यों पर कर्ज लेकर अधिक व्यय कर देता है। कुछ लोग इसको अत्यधिक कर्जदार होने का मुख्य कारण बतलाते हैं परन्तु इसमे अतिशयोक्ति है।

मुकदमेबाजी

मुकदमेबाजी किसान के ऋणी होने का मुख्य कारण है। किसान

कर्ज लेकर मुकदमे लडता है। भारत मे मुकदमेबाजी का रोग ऐसी बुरी तरह फैला हुआ है कि इसके कारण लाखों परिवारों का सर्वनाश हो गया है। वकील, अदालतों के कर्मचारी तथा खर्चीला न्याय किसान को कर्जदार बना देता है।

लगान और मालगुजारी

मालगुजारी उचित से अधिक है, क्योंकि खेती से लाभ बहुत कम है। जब कभी फसलें नष्ट हो जाती हैं अथवा खेती की पैदावार की कीमत कम हो जाती है तो किसान को लगान देना कठिन हो जाता है। यद्यपि ऐसे समय कुछ छूट दी जाती है, परन्तु वह आवश्यकता से बहुत कम होती है। निर्धन किसान को महाजन से कर्ज लेकर लगान या मालगुजारी देनी होती है। क्योंकि जमीदार तथा सरकारी कर्मचारी उसे बहुत सख्ती से वसूल करते रहे हैं। भूमि की कमी होने के कारण कभी-कभी किसान लम्बे पट्टे लेता है और उसके लिए बहुत अधिक लगान देना स्वीकार करता है। कभी-कभी कर्ज लेकर वह भूमि मोल ले लेता है।

किसान फसल बोने के समय महाजन से सवाये अथवा ड्योढ़े पर बीज लाता है। महाजन पुराना सडा बीज दे देता है। खाद इत्यादि डालने के लिये भी यह कर्ज लेता है। फसल तैयार होने पर उसे अपनी पैदावार तुरन्त बेचनी पडती है क्योंकि लगान, सरकारी आबपाशी तथा महाजन अपने कर्ज के लिये जल्दी मचाते हैं। उस समय बाजार भाव मन्दा होता है। महाजन बाजार भाव से भी बहुत सस्ते दामों पर किसान की पैदावार मोल ले लेता है। किसान थोडे दिनों ठहर सके तो उसे अपनी पैदावार का अधिक मूल्य मिल सकता है। जूट, गन्ना और कपास इत्यादि की फसलों में तो कारखाने वाले किसान को कुछ रुपये पेशगी कर्ज दे देते हैं और बहुत सस्ते दामों पर फसल को पहले से ही मोल ले लेते हैं।

अधिकतर किसानों की स्थिति यह है कि फसल काटने के उपरान्त सब लेनदारों का रुपया चुकाने पर उसके पास केवल आठ महीने का भोजन ही बच रहता है। पिछले चार महीनों मे किसान को महाजन से सवाये या ड्योढे पर अनाज उधार लेना पड़ता है। कहीं-कहीं तो कर्जदारों की स्थिति मोल लिये हुये दासों से भी गई बीती हो जाती है।

सरकार द्वारा ऋण की समस्या को हल करने का प्रयत्न

उन्नीसवी शताब्दी के अन्त मे दक्षिण भारत, अजमेर, मेरवाड़ प्रदेश तथा बिहार प्रदेश के छोटा नागपुर डिवीजन में किसान विद्रोही हो उठे। उन्होंने बहुत से महाजनों के घर जला दिये और उन्हे मार डाला। सरकार ने एक कमाशन बिठाया। कमीशन ने इन उत्पातों का मुख्य कारण किसानों की भयकर कर्जदारी बतलाया। सरकार ने किसानों की रक्षा के लिए देशी कानून मे सुधार किये और एक कानून बनाया जिससे अदालतों को यह अधिकार दे दिया कि वे किसी भी नालिश के मुकदमे में उचित सूद की ही डिगरी दे, फिर किसान ने महाजन को चाहे जितने अधिक सूद देने का वादा क्यों न किया हो। किन्तु इस कानून से कोई लाभ न हुआ क्योंकि अदालतो का न्याय खर्चीला है और किसान निर्धन है।

भारतीय सरकार ने किसानों मे मितव्यियता का भाव उत्पन्न करने के लिए पोस्ट आफिस सेविग बैंक खोले। अशिक्षित किसान पोस्ट आफिस सेविग बैंक से अधिक लाभ न उठा सका। सरकार ने कई बार सिविल ला मे इस दृष्टि से सुधार किए कि किसानों को कुछ सुविधा दी जाये किन्तु कानून द्वारा सरकार किसानों का कुछ भी सहायता न कर सकी।

सरकार ने देखा कि किसान को खेती-बारी का धन्धा करने के लिए साख (कर्ज) की आवश्यकता होती है। किसान को दो तरह की साख चाहिये—थोडे समय के लिए और अधिक समय के लिए। अस्तु, भारतीय सरकार ने दो कानून बना कर प्रान्तीय सरकारों को यह अधिकार दे दिया कि वे किसान की दोनों प्रकार की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए तकावी दे सकती हैं। किन्तु तकावी से भी यह समस्या हल नहीं हुई और न किसानों ने तकावी का अधिक उपयोग ही किया। कारण यह है कि किसानों को तकावी पटवारी, कानूनगो तथा नायब तहसीलदार की सिफारिश से मिलती है इस कारण किसान को रुपया समय पर नहीं मिल पाता। आवश्यकता के समय तकावी न मिलने तथा वसूली मे कड़ाई होने से तकावी का अधिक प्रचार नहीं हुआ।

कर्जदार होने के कारण किसानों के हाथ से भूमि निकल कर महाजनों के पास चली जाती थी और किसान उन पर मजदूरों की भाँति कार्य करता

था। पंजाब मे इस समस्या को हल करने के लिए "पजाब लैंड एलीनेशन ऐक्ट" पास करके गैर खेतिहर जातियों को खेती की भूमि लेने से वञ्चित कर दिया गया। उत्तर प्रदेश के बुन्देलखड तथा मध्य प्रदेश के कुछ भागों मे इसी प्रकार का कानून लागू कर दिया गया है।

यह सब कुछ हुआ, परन्तु ग्रामीण ऋण की समस्या पूर्ववत् ही बनी रही। इसी बीच मे इटली और जर्मनी की सहकारी साख समितियों को आश्चर्यजनक सफलता से भारत सरकार का ध्यान सहकारी साख आन्दोलन की ओर आकर्षित हुआ और सन् १९०४ से भारत मे भी सहकारिता आन्दोलन का श्रीगणेश किया गया। सहकारी साख आन्दोलन कहाँ तक सफल हुआ है यह तो अगले अध्यायों मे लिखा जावेगा, किन्तु इतने वर्षों के अनुभव से यह तो सिद्ध हो ही गया है कि सहकारी साख समितियाँ किसान के पुराने कर्जे को अदा नहीं कर सकती। थोड़े समय के लिए खेती-बारी मे जो ऋण की आवश्यकता होती है उसका प्रबन्ध ये साख समितियाँ सफलतापूर्वक कर सकती हैं। जब तक किसान पुराना ऋण नहीं चुकाता तब तक वह महाजन के चगुल से मुक्त नही हो सकता।

पुराने ऋण को चुकाने के लिए तथा अन्य कार्यों के लिए अधिक समय तक का ऋण देने के लिए भूमि बधक बैङ्क (Land mortgage banks) अधिक उपयुक्त हैं। ये बैङ्क किसान अथवा जमींदारों की भूमि को गिरवी रख उन्हे बीस या तीस वर्ष तक के लिये ऋण देते हैं और किस्तों में वसूल कर लेते हैं। ऋण देने के लिए बहुत पूँजी की आवश्यकता होती है। वह बैंक बधक रखी हुई भूमि की जमानत पर डिबेंचर (ऋण-पत्र) बेच कर इकट्ठी करते हैं। अभी भारत में थोडे से ही भूमि बधक बैङ्क स्थापित हुए हैं। परन्तु वे बैङ्क उन्हीं किसानों को ऋण दे सकेगे जो कि भूमि बधक रख सकेंगे। बहुत से प्रदेशों मे किसान का भूमि पर स्वामित्व ही नहीं है। वहाँ ये बैङ्क किसानों की सहायता न कर सकेंगे।

ऋण-परिशोध

केन्द्रीय बैंकिंग जाँच कमेटी की सम्मति मे सरकार को निम्नलिखित योजना के अनुसार कार्य करना चाहिए।

प्रादेशिक सरकार इस कार्य के लिए विशेष कर्मचारी नियुक्त करे जो

गाँवों में दौरा करके पता लगावे कि किसानों पर कितना ऋण है। इसके लिए एक कानून बनाकर महाजनों को विवश किया जावे कि वे किसान के ऋण का पूरा हिसाब बतावे तदुपरान्त वह कर्मचारी ऋण को चुकाने के लिए महाजन को कम से कम रुपया लेकर किसान को ऋणमुक्त करने के लिये राजी करे। जब यह निश्चय हो जावे कि महाजन कम से कम कितना रुपया लेकर किसान को ऋणमुक्त कर देगा, तब किसान को साख समिति का सदस्य बनवा दिया जाये। साख समिति किसान का कर्जा एक मुश्त अथवा किश्तों में चुका दे, तथा खेती-बारी के लिये किसान को आवश्यक साख (कर्ज) देती रहे।

यदि महाजन किश्तों में रुपया लेना स्वीकार करे तो किसान जितना स्वयं दे सके उतना चुका दे और शेष किश्तों को देने की जिम्मेदारी साख समिति ले ले। समिति किसान से किश्ते वसूल करती रहे। यदि महाजन एक मुश्त रुपया माँगे तो सरकार को उतना रुपया समिति को उधार दे देना चाहिए। साख समिति किसान से वार्षिक किश्तें लेकर सरकार का कर्ज चुका देगी।

यह भी सम्भव है कि महाजन कर्ज के इस प्रकार चुकाये जाने के लिये तैयार न हों और समझौता न करे। ऐसी परिस्थिति में कानून बना कर उन्हें विवश किया जावे।

कतिपय प्रदेशों में ऋण समझौता बोर्ड (Debt Conciliation Board) तथा भूमि बंधक बैङ्क (Land Mortgage Banks) साथ-साथ स्थापित किये गये हैं। ऋण समझौता बोर्ड सदस्य के ऋण के विषय में महाजन से समझौता करके रकम को कम से कम करने का प्रयत्न करता है और भूमि बंधक-बैङ्क सदस्य की भूमि को बंधक रख कर उस रकम को चुका देता है। तदुपरान्त किश्तों में सूद सहित सदस्य से रुपया वसूल कर लेता है। अभी ये संस्थाएँ बहुत कम संख्या में हैं और इन्हें कार्य करते अधिक दिन नहीं हुये हैं।

अभी कुछ वर्ष हुए हैं कि भिन्न-भिन्न प्रदेशों में कुछ कानून किसानों की रक्षा के लिए बनाए गए हैं। उत्तर प्रदेश में भी कुछ कानून इस सम्बन्ध में बनाये गए हैं। इन कानूनों के द्वारा ऋण के लिए भूमि कुर्क नहीं कराई जा सकती। अदालत सूद की दर निश्चित

करके किश्त बाँध देती है किन्तु इन कानूनों से किसानों का अधिक लाभ नहीं हुआ।

ग्रामीण ऋण की समस्या इतनी गम्भीर और महत्वपूर्ण है, साथ ही इतनी कठिन भी है कि वह साधारण प्रयत्नों से हल न होगी। इसके लिए कोई क्रान्तिकारी तथा साहसी प्रयोग करना होगा। इस दृष्टि से भावनगर के तत्कालीन दीवान सर प्रभाशंकर पट्टनी ने राज्य भर के किसानों के ऋण की जाँच करवाई तो ज्ञात हुआ कि राज्य के किसानों पर छियासी लाख से कुछ अधिक ऋण है। उन्होंने राज्य भर के महाजनों को बुलवाया और उनसे बीस लाख रुपये लेकर किसानों को ऋणमुक्त कर देने को कहा। पहिले तो महाजन तैयार नहीं होते थे किन्तु जब उन्होंने देखा कि समझौता न करने पर राज्य ऐसे कानून बना देगा कि जिनके कारण किसानों से रुपया वसूल न हो सकेगा तो वे बीस लाख रुपये लेकर किसानों को ऋणमुक्त करने को तैयार हो गये राज्य ने एक मुश्त बीस लाख रुपये देकर किसानों को महाजनों के ऋण से मुक्त कर दिया। ध्यान रहे किसान प्रतिवर्ष लगभग पच्चीस लाख रुपये तो केवल सूद में दे देते थे। राज्य अब किश्तों में वह रुपया लगान के साथ किसान से वसूल करता है। राज्य में सहकारी साख समितियाँ स्थापित की जा रही हैं और राज्य तकावी देता है जिससे कि किसान फिर महाजनों के ऋणी न हो जावें। इस प्रकार ऋण मुक्त होने का फल भावनगर में यह हुआ कि किसान स्वयं वैज्ञानिक ढंग की खेती करने लगे हैं। अच्छे हल, बैल, खाद तथा बीज का उपयोग किया जा रहा है और गाँव समृद्धिशाली बनते जा रहे हैं। शेष भारत में भी जब इसी प्रकार की कोई क्रान्तिकारी योजना काम में लाई जावेगी तभी ग्रामीण ऋणमुक्त हो सकेंगे। जब तक किसान ऋणमुक्त नहीं होते तब तक उनकी स्थिति में सुधार होना सम्भव नहीं है।

यद्यपि भावनगर राज्य की भांति कोई क्रान्तिकारी योजना और प्रदेशों में काम में नहीं लाई गई परन्तु पिछले वर्षों में भी कुछ कानून बनाए गए हैं जिनसे कर्जदारों को बहुत लाभ और सुविधा हो गई है। इनमें नीचे लिखे मुख्य हैं :—

महाजन लायसेंस कानून (Money-Lenders Act)—पश्चिमी बंगाल, आसाम, मध्यप्रदेश, बिहार, बम्बई, पूर्वी पंजाब में महाजन पर नियन्त्रण रखने के उद्देश्य से कानून बनाये गये हैं। इन कानूनों की मुख्य बातें एकसी हैं।

कानून के अनुसार प्रत्येक महाजन को सरकार से एक लायसेंस लेना होगा। प्रत्येक लायसेंसदार महाजन को नियमानुसार हिसाब रखना होगा और प्रत्येक कर्जदार को निश्चित समय पर उसका हिसाब लिखा कर देना होगा। जब कभी कर्जदार कुछ रुपया महाजन को दे तो महाजन को उसको रसीद देनी होगी।

इन कानूनों के साथ ही प्रादेशिक सरकारों ने सूद की दर भी कानून से निश्चित कर दी है। यद्यपि भिन्न-भिन्न प्रदेशों में सूद की दर भिन्न है। फिर भी पहले से सूद की दर बहुत कम हो गई है।

मद्रास और मध्यप्रदेश में कानून बना कर किसान के कर्ज को कुछ प्रतिशत कम कर दिया गया है। कुछ प्रदेशों में ऋण समझौता बोर्ड स्थापित करके किसान के ऋण की रकम को घटाने का प्रयत्न किया गया है।

किन्तु इन सुविधाओं से ऋण की समस्या हल नहीं हुई। आवश्यकता इस बात की है कि भावनगर राज्य की तरह ही सरकार इस समस्या को हल करने के लिये एक योजना तैयार करे और उसको शीघ्र ही लागू कर दे।

आवश्यकता इस बात की है कि सरकार इस समय ग्रामीण ऋण की जाँच करवाए। कानून बनाकर उसे उचित मात्रा में कम कर दे। कम करने में यह ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि महाजन ने बहुत अधिक सूद लेकर अपनी रकम को बढ़ा तो नहीं लिया है। अस्तु कर्ज की रकम को सभी बातों को ध्यान में रखकर कम कर दिया जावे। जिन किसानों के बारे में यह प्रतीत हो कि वे दस वर्ष में भी घटी हुई रकम को अदा नहीं कर सकते क्योंकि उनके पास कुछ भी बचत नहीं होगी, उनको 'ग्रामीण दिवालिया कानून' (Rural Insolvencdy Act) बना कर दिवालिया करार दे दिया जावे और उन्हें फिर से नये सिरे से कार्य आरम्भ करने की इजाजत दी जावे। भूमि, बैलों की जोड़ी, खेती के औजार, बीज, ६ महीने के खाने के अन्न को छोड़कर जो भी उनके पास हो उसको महाजनों में बाँट दिया

जावे और किसान को ऋणमुक्त कर दिया जावे। शेष किसानों की कम की हुई रकम सरकारी बाडों के रूप में किसानों के महाजनों को दे दी जाय। इसका मतलब यह हुआ कि सरकार उन महाजनों की कर्जदार हो गई और जब तक सरकार महाजनों का कर्जा न चुका सके तब तक उस पर २ प्रतिशत सूद देती रहे। सरकार यह रकम किसान से सूद सहित किश्तों में वसूल कर ले। इस प्रकार ऋण की समस्या को हल किया जा सकता है।

महायुद्ध और ग्रामीण ऋण :—महायुद्ध के फलस्वरूप खेती की पैदावार का मूल्य आकाश छूने लगा और किसान की आर्थिक स्थिति अच्छी प्रतीत होने लगी। इससे अर्थशास्त्रियों की यह धारणा होने लगी कि या तो गाँव वालों का ऋण बिलकुल ही चुक गया होगा अथवा बहुत कम शेष रह गया होगा। परन्तु इस सम्बन्ध में सही आँकडे उपलब्ध नहीं थे। केवल मद्रास में तथा अन्य स्थानों पर इस सम्बन्ध में कुछ जाँच की गई। उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि ग्रामीण ऋण २० प्रतिशत कम हो गया है। किन्तु कमी केवल बडे किसानों और जमींदारों के ऋण में हुई वरन् किसी किसी दशा में छोटे किसानों और खेत मजदूरों का ऋण बढ गया है।

अभ्यास के प्रश्न

१—गाँवों मे किसान किन आदमियों और संस्थाओं से ऋण लेता है ?

२—भारत में ग्रामीण ऋण की समस्या इतनी महत्वपूर्ण क्यों हो उठी है ?

३—किसान के कर्जदार होने के मुख्य कारण क्या हैं ?

४—क्या ऋण लेना हर हालत में हानिकारक होता है ? भारतीय किसान किन-किन कार्यो के लिये ऋण लेता है ?

५—क्या यह सच है कि भारतीय किसान ऋण ही में जन्म लेता है और ऋण ही में मरता है ? इस भयंकर कर्जदारी का उसके जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

६—किसान के ऋणी होने से उसकी क्या हानि होती है ?

७—भारतीय किसान का जो निराशावादी दृष्टिकोण बन गया है उस पर उसके कर्जदार होने का क्या असर पडता है ?

८—"तकावी" क्या है और उससे किसान को कहाँ तक सहायता मिलती है ?

९—केन्द्रीय बैंकिंग जाँच कमेटी ने ऋण की समस्या को हल करने के लिये क्या उपाय बतलाया है ?

१०—भावनगर राज्य में ऋण की समस्या को कैसे हल किया गया और उसका फल क्या हुआ ?

११—भूमि बन्धक बैंक किसे कहते हैं ? वह क्या कार्य करता है ?

पच्चीसवाँ अध्याय

गाँव में आय के साधन और गमनागमन

गाँवों में खेती के सिवाय आय के दूसरे साधन नहीं के बराबर हैं। जन-सख्या के बढ़ने और भूमि की कमी के कारण प्रति किसान पीछे भूमि इतनी कम (ढाई एकड़) है कि एक परिवार का उस पर पालन होना साधारण समय में भी असम्भव है। फिर भारत में हर तीसरे चौथे साल फसल नष्ट हो जाती है। सूखा, बाढ, अतिवर्षा, टीडी, ओला, फसलों के रोग, पाला इत्यादि दैवी कारणों से फसले नष्ट हो जाती हैं और कहीं-कहीं तो भीषण अकाल पड़ जाता है। ऐसे समय में किसान की दशा अत्यन्त दयनीय हो जाती है। यह तो हुई उन सालों की बात जब कि फसल खराब हो जाती है। जब फसल ठीक होती है तब भी किसान के पास इतना नहीं होता कि वह परिवार का पालन-पोषण ठीक तरह से कर सके। इसलिए यह आवश्यक है कि खेती के अलावा किसान के पास आय के दूसरे भी साधन हों।

ग्रामीण धन्धे

भारत का साधारणतः किसान वर्ष में ४ से ६ महीने बेकार रहता है कारण खेती का धन्धा ऐसा है कि इसमें वर्ष भर लगातार काम नहीं रहता। किन्हीं दिनों उसे बहुत अधिक काम करना पड़ता है, किन्हीं दिनों कम, और कभी वह बिल्कुल बेकार रहता है। गाँव के मजदूरों को तो वर्ष में ४ या ५ महीने से अधिक काम मिलता ही नहीं। यह मानी हुई बात है कि कोई ६ महीने काम करके १२ महीने का भोजन नहीं पा सकता।

योरोप तथा अमेरिका जैसे देशों में जहाँ किसान के पास बडे-बड़े फार्म हैं किसान केवल खेती पर ही अवलम्बित नहीं रहता। वह ग्राम उद्योगों के द्वारा अपनी आय बढ़ाता है। ऐसी दशा में भारत मे जहाँ भूमि का अकाल हैं किसान बिना ग्रामीण धन्धों के कैसे जीवित रह सकता है? ग्रामीण धन्धों में निम्नलिखित गुण होने चाहिये :—

१—धन्धा ऐसा होना चाहिए जो खेती के काम मे बाधक न हो अर्थात् जब खेतों पर अधिक काम हो तब उसको बिना हानि के छोडा जा सके।

२—धन्धा ऐसा हो जिसमे अधिक कुशलता प्राप्त करने की जरूरत न हो। नहीं तो किसान के लिए उस धन्धे को शिक्षा की समस्या उठ खडी होगी।

३—धन्धे में कच्चे पदार्थ की जो आवश्यकता हो वह गाँव से ही पूरी हो सके।

४—धन्धे की चीज ऐसी होनी चाहिये कि जिसकी माँग सब जगह हो और जिससे माल के बेचने मे कठिनाई न हो।

५—धन्धा ऐसा होना चाहिये जिसके चलाने में अधिक पूँजी की जरूरत न हो।

६—जहाँ तक हो ग्रामीण धन्धे ऐसे चुने जावे जिनकी होड़ मिलों में बने माल से न हो।

ऊपर दिये हुये गुणों को ध्यान मे रखते हुये नीचे लिखे धन्धे गाँव के लिये उपयुक्त हो सकते हैं।

(१) दूध, घी, मक्खन का धन्धा, (२) मुर्गी पालने का धन्धा, (३) फलों का धन्धा, (४) तरकारी पैदा करना, (५) शहद उत्पन्न करना, (६) सूत कातने का धन्धा, (७) रेशम के कीड़े पालने का धन्धा, (८) भेडे पालने का धन्धा, (९) गुड बनाना, चावल कूटना, रस्सी बटना, डालियाँ तैयार करना, (१०) गाडी चलाना, तेल पेरना इत्यादि।

ग्राम उद्योग सघ

महात्मा गाँधी के नेतृत्व मे ग्राम उद्योग सघ की स्थापना हुई थी जो ग्रामीण धन्धों की उन्नति के लिये प्रयत्न कर रही है। आशा है कि इससे

गाँव वालों को आय का एक अच्छा साधन मिल जावेगा। सरकार का औद्योगिक विभाग भी इस ओर ध्यान दे रहा है।

गाँवों में आय के अन्य साधन

खेती की उन्नति तथा ग्रामीण धंधों के विकास से खेती में लगे हुए किसानों की आर्थिक स्थिति में कुछ सुधार हो सकता है। परन्तु गाँवों की स्थिति मे पर्याप्त सुधार तभी होगा जबकि वहाँ गृह-उद्योग-धंधे (Cottage industries) जैसे हाथ कर्घे से कपडे बनाने का धंधा, बढईगीरी, लुहारी, पीतल के बरतन, मिट्टी के बरतन बनाने तथा अन्य धंधों की उन्नति की जावे। इसके लिए पूँजी (Capital), हल्के यन्त्रों, जल विद्युत् तथा अच्छे मार्गों की आवश्यकता होगी। यदि ऊपर लिखी सुविधाएँ सरकार गाँवों को प्रदान कर दे तथा इनका सहकारी समितियों के द्वारा सगठन किया जावे तो गाँवों में गृह-उद्योग धंधे पनप सकते हैं और गाँवों के रहने वाले कारीगरों तथा अन्य व्यक्तियों की आय का एक अच्छा साधन प्राप्त हो सकता है।

गांव में एक वर्ग और है जो खेत-मजदूर कहलाता है। इनके पास खेती नहीं होती। ये लोग दूसरों के खेतों पर मजदूरी करके अपना पेट पालते हैं। इनकी दशा अत्यन्त दयनीय होती है, वे अत्यन्त निर्धन होते हैं। उनकी दशा को तभी सुधारा जा सकता है कि जब इन्हे गृह-उद्योग धंधों में लगाया जावे या कानून से उन्हे उचित मजदूरी दिलवाई जावे।

गाँव मे जाने की असुविधा

किन्तु केवल सडकों से ही काम नहीं चलेगा। डाक, तार, तथा रेडियो की भी सुविधा गाँवो को मिलनी चाहिये जिससे वे दुनिया की हलचलों से परिचित हो सके।

अभ्यास के प्रश्न

१—किसानों को खेती के सिवाय दूसरे आय के साधनों की क्यों जरूरत है?

२—ग्रामीण धधों में कौन सा विशेष गुण होना चाहिये?

३—सड़कों की उन्नति से गाँव के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ेगा?

४—कौन से ग्रामीण धधे तुम अपने गाँव में चलाना चाहोगे। उनके सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक लिखो।

छब्बीसवाँ अध्याय

कृषि-विभाग के कार्य तथा खाद्य समस्या

सर्वप्रथम उत्तर प्रदेश में कृषि-विभाग की स्थापना सन् १८७५ ईसवी में हुई। तत्कालीन लैफ्टीनेन्ट गवर्नर सर जान स्ट्रैचे ने प्रयत्न करके प्रदेश में एक डायरेक्टर आफ एग्रीकल्चर और कामर्स की नियुक्ति करने की आज्ञा प्राप्त कर ली। डायरेक्टर आफ एग्रीकल्चर को इस आशय की आज्ञा दी गई कि वह प्रदेश के किसानों को नये तरीके से खेती करने के लाभ बतलाये और ऐसी फसलों और छोटे-छोटे धधों की उन्नति करने के लिये प्रयोग करे कि जिनके द्वारा किसानों को अधिक काम हो। आरम्भ में रेशम के कीडे पालने तथा रेशम उत्पन्न करने के धधे, सन, तथा तम्बाकू की ओर अधिक ध्यान दिया गया। उससे पूर्व ही प्रदेश में तीन माडल फार्म थे जो कि नव निर्मित कृषि विभाग ने ले लिये। रेशम के कीडे का एक फार्म देहरादून में खोला गया तम्बाकू का फार्म गाजीपूर में और फलों का फार्म कुमायूँ की पहाड़ियों पर खोला गया। तम्बाकू और रेशम के फार्म असफल रहे किन्तु कुमायूँ का फार्म बहुत सफल हुआ। प्रदेश मे आलू और फलों के व्यापार की जो आशातीत उन्नति हुई है उसका मुख्य कारण कुमायूँ का फार्म है।

उत्तर प्रदेश के कृषि-विभाग को प्रदेश की सड़कों के किनारे पेड़ लगाने का भी कार्य सौंपा गया था जो कि आज तक कृषि-विभाग करता आ रहा है। सन् १८८० में कृषि-विभाग ने अपनी एक शाखा स्थापित करके पुराने कुओं के सुधार तथा नयों को खोदने का काम भी अपने हाथ में लिया। वेल बोरिंग ब्रांच (Well Boring Branch) किसी भी किसान को यह सलाह देती है कि इस क्षेत्र में कितनी दूरी पर पानी निकलेगा। यदि किसान चाहे तो वे कुयें को खोद भी देते हैं।

इनके अतिरिक्त उस समय कृषि-विभाग ने ऊसर भूमि तथा पानी द्वारा काटी भूमि (Eroded Land) को खेती के योग्य बनाने, गाय और बैलों की नस्ल को सुधारने, कपास के तथा गन्ने के बीज को उन्नत करने का भी प्रयत्न किया। यद्यपि गाय और बैलों की उन्नति करने मे सीधी सफलता नहीं मिली। किन्तु ऊसर भूमि के सुधार होने पर वहाँ चरागाह बन गये जिससे अप्रत्यक्ष रूप से गाय और बैलों का सुधार हुआ और प्रदेश मे डेयरी का धंधा पनपा।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक इसी नीति के अनुसार कार्य होता रहा। इस बीच मे केवल दो परिवर्तन हुये। कानपुर में कृषि स्कूल खोला गया। बाद को वही स्कूल कृषि कालेज में परिणत हो गया। कृषि-विभाग को अधिक आदमी देकर शक्तिशाली बनाया गया, तथा प्रदेश में फार्मों की संख्या बढ़ा दी गई।

सन् १९०५ मे भारत सरकार ने घोषणा की कि वह २० लाख रुपये (जो बाद को बढ़ाकर २४ लाख कर दिये गये) प्रति वर्ष प्रदेशों मे कृषि विषयक अनुसंधान, प्रयोग, प्रदर्शन, तथा शिक्षा के लिये देगी। इस सहायता से प्रत्येक प्रदेश में कृषि कालेजों की स्थापना की गई और उनके अध्यापकों के पदों पर भिन्न-भिन्न विषयों के विशेषज्ञ रक्खे गये। इन विशेषज्ञों का कार्य केवल कालेज के विद्यार्थियों को पढ़ाना ही नहीं था वरन् अपने विषय के अन्तर्गत प्रादेशिक समस्याओं को हल करने के लिए अनुसंधान करना भी था। उदाहरण के लिए यदि कोई विशेषज्ञ फसल की बीमारियों की शिक्षा देता है तो वह प्रदेश में होने वाली फसलों की बीमारियों के सम्बन्ध में

अनुसधान भी करता है। प्रत्येक बडे क्षेत्र में विशेषज्ञों द्वारा बतलाई हुई बात का प्रयोग करने के लिए एक प्रयोग करनेवाला स्टाफ (Experimental Staff) रक्खा गया। इसका कार्य फार्मों पर विशेषज्ञों द्वारा बतलाई हुई बातों का प्रयोग करना और उस प्रदेश के लिए उपयोगी सिद्ध होने पर उस बात का गाँवों में प्रचार करना है। प्रचार-कार्य उन छोटे-छोटे प्रदर्शन फार्मों (Demonstration Farm) के द्वारा किया जाता है जो कि प्रत्येक जिले अथवा तहसीलों में स्थापित किए गए हैं।

कृषि-विभाग का संगठन और उसका कार्य

यह तो पूर्व ही कहा जा चुका है कि कृषि-विभाग का प्रधान अधिकारी डायरेक्टर आफ एग्रीकल्चर होता है। डायरेक्टर विभाग का सारा काम सँभालता है। कृषि विषयक शिक्षा देने के लिये कानपुर में एक प्रथम श्रेणी का कृषि कालेज (Agricultural College) है। कानपुर मे कृषि कालेज में कृषि विषयक उच्च शिक्षा तथा अनुसधान (Research) कार्य भी होता है। बीजों का सुधार, खाद, फसल के कीडे, भूमि तथा सिंचाई सम्बन्धी अनुसधान कार्य इसी कालेज के विशेषज्ञ अध्यापक करते हैं। साधारण कृषि विषयक शिक्षा, ग्रामीणों तथा कृषि-विभाग के छोटे कर्मचारियों को देने के लिए प्रदेश में बुलन्दशहर तथा एक दो अन्य स्थानों पर कृषि स्कूल खोले गए हैं।

समस्त प्रदेश को कुछ सर्किलों मे बाँटा गया है। प्रत्येक सर्किल एक डिप्टी डायरेक्टर आफ एग्रीकल्चर की अधीनता मे होता है। उसका मुख्य कार्य अपने क्षेत्र मे स्थित प्रयोग फार्म (Experimental Farms), बीज फार्म (Seed Farms) तथा प्रदर्शन फार्म (Demonstration Farms) का प्रबन्ध करना तथा प्रदर्शन प्लाट्स (Demonstration Plots) की देखभाल करना है। इसके अतिरिक्त अपने सर्किल मे अच्छे बीज और खेती के औजारों को बेचना तथा कृषि सुधार विषयक प्रचार करना भी उसके जिम्मे है। इस कार्य के लिए उसकी अधीनता मे इन्सपेक्टर और फील्डमैन रहते हैं जो इस कार्य को करते हैं।

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि उत्तर प्रदेशीय कृषि-विभाग तीन के फार्म रखता है, एक जिन पर विशेषज्ञों द्वारा अनुसधान की हुई

बातों का प्रयोग किया जाता है, दूसरे जिन पर अच्छा बीज अधिक राशि में उत्पन्न करके किसानों को बेचा जाता है, तीसरे वे जिन पर अच्छी खेती करने का ढग किसानों को बताया जाता है।

प्रदर्शन फार्म और प्रदर्शन प्लाट (Demonstration Farm and Demonstration Plot) का प्रबन्ध फील्डमैन करता है। किसी गॉव मे किसी भी किसान को जिस प्रकार फील्डमैन कहे उस प्रकार खेती करने को राजी कर लिया जाता है। फील्डमैन अपनी देख-रेख में किसान से खेती करवाता है। जब उस किसान की फसले अपने पड़ोसियों की फसलों से अच्छी होती हैं और उसे अधिक लाभ होता है तो गाँव के अन्य किसानों को फील्डमैन की बताई हुई बातों पर विश्वास हो जाता है और कृषि-विभाग के द्वारा बताए हुए सुधारों को अपना लेते हैं।

कृषि-विभाग अच्छा बीज बेचने और उसको अपने सीड फार्म्स (बीज उत्पन्न करने के फार्म) पर उत्पन्न करने में अपनी बहुल शक्ति लगाता है। गेहूँ, गन्ना, कपास तथा अन्य फसलों के अच्छे बीज तैयार करने में कृषि-विभाग को बहुत सफलता मिली है। कृषि-विभाग उस अच्छे बीज को अपने फार्म पर तथा अपनी देख-रेख में किसानों के खेतों पर उत्पन्न करते हैं। किसानों को बीज बेचने के लिये कृषि-विभाग ने देहातों मे बहुत बड़ी सख्या में बीज-भडार (Seed Depot) खोले थे जहाँ से किसानों को बीज दिया जाता था। कृषि साख समितियों, रहन-सहन सुधार समितियों और ग्राम सुधार के आर्गनाइजरों के द्वारा भी कृषि-विभाग किसानों को अच्छा बीज बेचता था। बीज के अतिरिक्त कृषि-विभाग अच्छे हल, कोल्हू तथा खेती के यन्त्र भी बेचता रहा है।

रहा है। पिछले दिनों मे कृषि-विभाग ने गन्ने की ओर विशेष ध्यान दिया है और यही कारण है कि गन्ने की पैदावार प्रदेश में बहुत अच्छी होने लगी है।

कृषि-विभाग के अतिरिक्त आल इंडिया कृषि कौसिल भी है जो खेती के सम्बन्ध मे अनुसन्धान भी करवाया करती है और कृषि-विभागों को सलाह मशविरा देती है। यही नही, भारत सरकार को भी खेती के धन्धे के बारे में क्या नीति बरती जावे इस सम्बन्ध में कौसिल सलाह देती रहती है। युद्ध के उपरान्त खेती की उन्नति करने की योजना बनाई गई है। खाद, अच्छे हल और पैदावार को बढाने का प्रयत्न किया जावेगा।

प्रादेशिक विकास योजना
(Provincial Development Plan)

अब तक कृषि-विभाग, ग्राम-सुधार विभाग, सहकारी विभाग तथा पशु-विभाग जिलों, तहसीलों और गाँवों मे अपनी खिचडी अलग-अलग पकाते थे। उनके जिला और ग्रामीण कार्यकर्त्ताओं मे कोई व्यावहारिक सहयोग नहीं स्थापित हो पाता था। खेती के तल पर किसान और काम करने वालों को उत्तम और टेकनिकल राय और नेतृत्व की आवश्यकता होती है। इसके लिए अफसरों को उपयुक्त ट्रेनिंग देनी पड़ती है और उन्हे काफी वेतन मिलता है। परन्तु अब तक यह अफसर किसान तक नहीं पहुॅच पाते थे। इनका अधिकाश समय आफिस की खानापूरी तथा छोटे कर्मचारियों की देख-रेख में ही बीत जाता था। यह अति आवश्यक है कि यह कमी दूर की जाय।

अतः अब प्रादेशिक विकास बोर्ड के अतिरिक्त प्रत्येक जिले में एक विकास अफसर नियुक्त किया गया है और प्रत्येक जिले में एक जिला-विकास-सघ स्थापित हो गया है, जो जिला विकास योजना निश्चित करेगा। इन विकास योजनाओं का एकीकरण प्रादेशिक विकास बोर्ड करेगा। जिला विकास अफसर जिला सघ की मदद करेगा और विकास योजना को कार्यान्वित करने का कार्य करेगा। उसके नीचे उपयुक्त विभागों के जिला इन्सपेक्टर रहते हैं। प्रत्येक जिले में लगभग पन्द्रह गाँवों के विकास ब्लाक बना लिये गए हैं। इस प्रकार के लगभग ८ सौ ब्लाक बन चुके हैं। अब तक उत्तर प्रदेश के कृषि-विभाग के पास जो ८ सौ बीज स्टोर्स थे वे इन ब्लाक के

इसलिए बनाई गई बहुध्येयी सहकारी समिति को दे दिये गए हैं। इन ब्लाकों के अन्दर योजना को कार्य रूप में परिणत करने की जिम्मेदारी इन समितियों पर ही है। जिला उन्नयन अफसर का इन समितियों से सीधा सम्बन्ध है और यह आशा की जाती है कि यह अफसर सब प्रकार के इन्स्पेक्टरों को काम की एक योजना के अनुसार व्यवस्थित कर सकेगा। आरम्भ में इस विकास ब्लाक में तालाब की खुदाई, कम्पोस्ट की खाद उत्पादन, वृक्ष लगाने, डेरी की व्यवस्था तथा प्रौढ़ शिक्षा का कार्य किया जायगा।

भारत में खाद्य पदार्थों की कमी

द्वितीय महायुद्ध के पूर्व, यद्यपि साधारणतः लोग यह समझते थे कि भारतीय कृषि का धन्धा पिछड़ा हुआ है, उसमें उन्नति की आवश्यकता है प्रति बीघा पैदावार कम होती है। किन्तु उन्हें यह कल्पना भी नहीं थी कि भारत में खाद्य पदार्थों का ऐसा भयंकर टोटा भी हो सकता है कि विदेशों से खाद्य पदार्थ न आने पर यहाँ अकाल पड सकता है और भूख से मनुष्य मर सकते हैं। आज देश के सामने अनाज की कमी की भयंकर समस्या खड़ी है और प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये का अनाज विदेशों से मँगाना पड़ रहा है।

बात यह थी कि सन् १६३६ के पूर्व भी देशों में यथेष्ट अनाज उत्पन्न नहीं होता था। शहरों तथा मंडियों में काफी अनाज बिकने को आ जाता था इस कारण किसी को इस कमी का आभास नहीं मिलता था। इसका मुख्य कारण यह था कि खेती की पैदावार का मूल्य बहुत गिरा हुआ था, २॥ और ३ रु० मन गेहूँ बिकता था और लगान तथा सूद की दर बहुत अधिक थी।

नहीं हुई। अस्तु, इसे इस बात की आवश्यकता नहीं रही कि वह भूखे रहकर अपना समय काटे और खेत की अधिकाश पैदावार बाजार मे बेंच दे। अब वह कुछ अधिक खाने लगा, साथ ही गेहूँ इत्यादि भी बहुधा खाने लगा है। इसका परिणाम यह हुआ कि खाद्य-पदार्थों की कमी गाँवों से हटकर शहरों मे पहुँच गई। शहरों मे खाद्य पदार्थों का टोटा पड़ गया।

इसके अतिरिक्त बर्मा के जापान द्वारा अधिकृत हो जाने तथा स्वतन्त्र हो जाने के उपरान्त वहाँ गृह-युद्ध आरम्भ हो जाने के कारण वहाँ से चावल आना कठिन हो गया। फिर देश के विभाजन के फलस्वरूप पाकिस्तान मे वह प्रान्त चले गए जो खाद्य पदार्थों की उत्पत्ति की दृष्टि से बहुत समृद्ध थे और भारत मे वह प्रान्त आये जिनमे अनाज की कमी थी। फिर काश्मीर युद्ध तथा सैनिक आवश्यकताओं के लिए अधिक अनाज भर कर रखने के कारण देश में अनाज का टोटा पड गया। कन्ट्रोल की अव्यवस्था, चोर बाजार तथा भ्रष्टाचार के कारण स्थिति और भी भयावह हो उठी।

खाद्य-पदार्थों की कमी का अनुभव १६४२ मे हुआ। "खाद्य पदार्थ अधिक उत्पन्न करो" आन्दोलन चलाया गया। कपास तथा तिलहन की पैदावार को कम करके अनाज को बढाने का प्रयत्न किया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि कुछ भूमि जो पहले कपास पैदा करती थी अनाज उत्पन्न करने के काम में आने लगी। "खाद्य पदार्थ अधिक उत्पन्न करो" आन्दोलन को थोडी सफलता हुई परन्तु अधिक सफलता नहीं मिली।

खाद्य पदार्थों की दृष्टि से जो बाहुल्य प्रदेश थे वहाँ से अनाज लेकर टोटे वाले प्रदेशों मे अनाज भेजा जाने लगा। साथ ही खाद्य पदार्थों का राशनिंग भी स्थापित किया गया।

देश में अधिक खाद्य पदार्थ उत्पन्न करने के लिए बजर भूमि को जो बेकार पडी थी खेती के योग्य बनाने के लिए भारत सरकार ने एक ट्रैक्टर विभाग खोला है। इस केन्द्रीय ट्रैक्टर विभाग से मध्य भारत, मध्यप्रदेश, राजस्थान, पूर्वीय पजाब तथा उत्तर प्रदेश को ट्रैक्टर दिये गये हैं और हजारों बीघा भूमि को खेती के योग्य बनाया जा रहा है।

भारत सरकार तथा प्रादेशिक सरकारों ने मिलकर खाद बनाने के दो कारखाने स्थापित करने का निश्चय किया है जो ४॥ लाख टन खाद

उत्पन्न करेंगे। एक बड़ा कारखाना सिंदरी (बिहार) में ३८ करोड़ रुपये की लागत से स्थापित किया गया है जो अब खाद बनाने लगा है।

पंचवर्षीय योजना

भारत सरकार ने देश की गरीबी मिटाने के लिये जो पंचवर्षीय योजना स्वीकार की है उसमे खेती की उत्पत्ति को बढाने का नीचे लिखा कार्यक्रम है।

बड़ी-बड़ी सिंचाई योजनाओं (जैसे दामोदर, हीराकुंड, भाखरा, नानगल इत्यादि) से ८० लाख एकड़ नई भूमि सींची जावेगी और छोटी सिंचाई योजनाओं (तालाब, ट्यूबवैल, तथा साधारण कुओं) से ७० लाख एकड़ नई भूमि सींची जावेगी। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय ट्रैक्टर विभाग की सहायता से ५५ लाख एकड़ परती तथा बंजरभूमि पर खेती की जावेगी। सिंदरी (बिहार) में खाद का कारखाना बन जाने से खाद की सुविधा तो हो ही गई है।

इस प्रयत्न के फलस्वरूप खेती की पैदावार में सन् १९५८ तक नीचे लिखी वृद्धि होगी।

खाद्यान्न (अनाज)	७२ लाख टन
जूट (पटसन)	२० लाख गाँठें
कपास	१२ लाख गाँठें
तिलहन	३ लाख ७५ हजार टन
गुड	६ लाख ६० हजार टन

७२ लाख टन अधिक अनाज उत्पन्न करने पर भी ३० लाख टन अनाज विदेशों से मँगवाना होगा। कहने का तात्पर्य यह है कि निकट भविष्य में खाद्य-पदार्थों की दृष्टि से स्वावलम्बी होने की कोई भी आशा नहीं है। हाँ, कपास और जूट की दृष्टि से अवश्य भारत स्वावलम्बी हो जावेगा।

कृषि अनुसंधान कौंसिल का मत है कि देश में लगभग ३० प्रतिशत जनसंख्या को पूरा भोजन नहीं मिलता और जो भोजन भारतीय जनता को मिलता है, न तो वह यथेष्ट है और न पुष्टिकर। अतएव खाद्य पदार्थों में नीचे लिखी वृद्धि आवश्यक है। अनाज में १० प्रतिशत, दालों में २० प्रतिशत, घी-तेल इत्यादि में २५० प्रतिशत, फलों में ५० प्रतिशत, सब्जी में १०० प्रतिशत, दूध में ३०० प्रतिशत, अंडे और मछली में ३०० प्रतिशत तथा चारे में ५५ प्रतिशत।

समाज विकास कार्यक्रम

भारत में ग्रामों के विकास तथा खाद्यान्नों का अधिक उत्पादन करने के लिए, तथा ग्रामवासियों के रहन-सहन का स्तर ऊँचा करने के लिये भारत सरकार ने समाज विकास कार्यक्रम को स्वीकार किया है। इसके अन्तर्गत प्रत्येक राज्य मे समाज-विकास केन्द्र स्थापित किए जा रहे हैं। इस समाज विकास कार्यक्रम का प्रभाव १७,५०० गाँवों और लगभग एक करोड़ बीस लाख ग्रामवासियों पर पडेगा।

भारत सरकार इस समाज विकास कार्यक्रम को सयुक्तराज्य अमेरिका की आर्थिक सहायता तथा फोर्ड प्रतिष्ठान की सहायता से कर रही है। अमेरिका ने केवल आर्थिक सहायता ही प्रदान नहीं की है वरन् टैकनिकल सलाहकार भी दिए हैं जो कि इस समय समाज विकास कार्यक्रम को सफल बनाने में भारत सरकार को सहायना दे रहे हैं।

इस समाज विकास कार्यक्रम की योजना मे इस बात का विशेष ध्यान रक्खा गया है कि ग्रामवासी यह अनुभव न करे कि उन्हे सुधारों को अपनाने के लिए विवश किया जा रहा है अथवा उन्हे उन पर लादा गया है। वस्तुतः सारे कार्यक्रम का सञ्चालन इस ढङ्ग से किया जावेगा जिससे ग्रामवासी स्वयं ही इस कार्यक्रम में सक्रिय भाग लें। उन्हे स्वय करने, अथवा अनुभव बढाने और वैयक्तिक सफलता और उन्नति की भावना को जाग्रत करने के लिये प्रोत्साहित किया जावेगा।

प्रस्तावित कार्यक्रम में तीन प्रकार की योजनाये होंगी।

प्रस्तावित कार्यक्रम का लक्ष्य स्थूल रूप से प्रत्येक ग्राम में निम्न प्रकार होगा :—

पीने के साथ पानी की व्यवस्था करने के लिए दो कुये अथवा अन्य कोई व्यवस्था करना। जहाँ नल कूप (ट्यूब-वैल) खोदे जा सकते हैं वहाँ सिचाई के लिए ट्यूब वैल खोदे जावेंगे। अन्य प्रदेशों में सिचाई के लिए नहरों, तालाबों, तथा कुओं का निर्माण कराया जावेगा जिससे कि गॉव की कम से कम आधी भूमि के लिए सिचाई की व्यवस्था ठीक हो जावे। इसके अतिरिक्त यथासम्भव अधिक से अधिक परती भूमि पर खेती की जावेगी। गॉवों मे सफाई रखने और पानी निकालने की नालियों का प्रबन्ध किया

इस भा
के

जम्मू और काश्मीर

हिमाचल प्रदेश

पंजाब

पेप्सू

दिल्ली

उत्तर प्रदेश

राजस्थान

जोधपुर

अजमेर

मध्यभारत

भोपाल

सौराष्ट्र

राजकोट

मध्यप्रदेश

हैदराबाद

मैसूर

मैसूर

त्रावनकोर-कोचीन

कोचीन
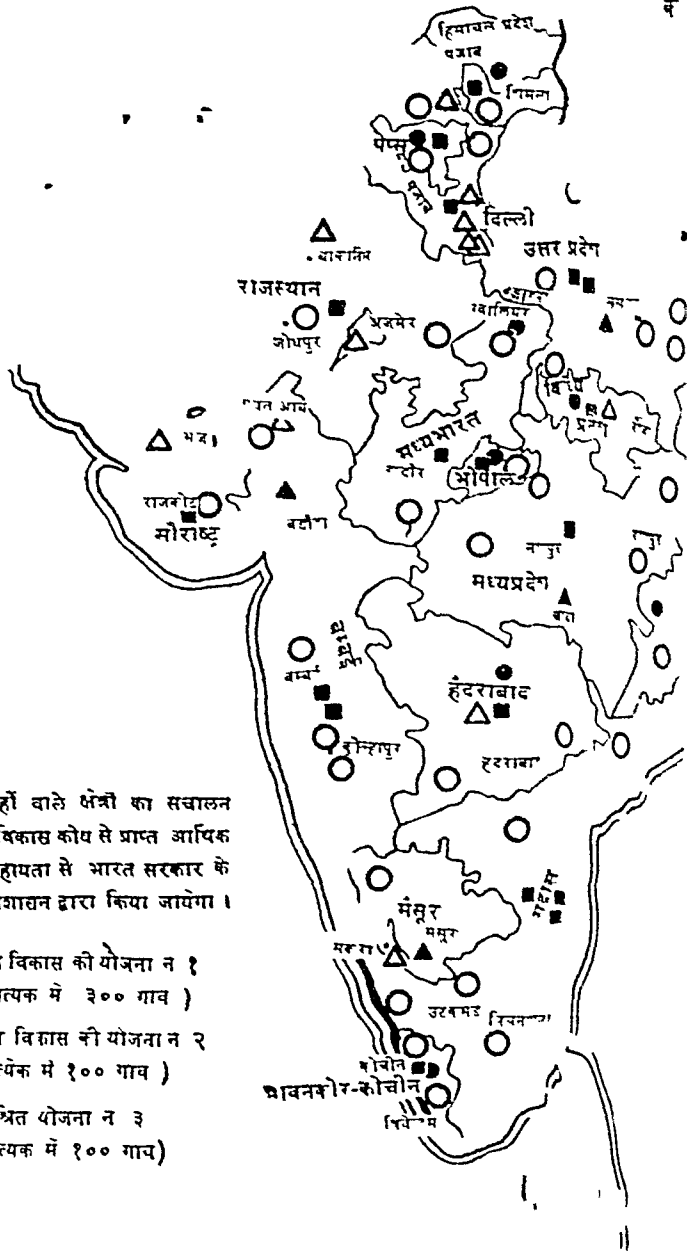
निम्नांकित चिन्हों वाले क्षेत्रों का संचालन भारत-अमेरिकी विकास कोष से प्राप्त आर्थिक और टेक्निकल सहायता से भारत सरकार के समाज विकास प्रशासन द्वारा किया जायेगा।

○ समाज विकास की योजना नं १ (प्रत्येक में ३०० गांव)

△ समाज विकास की योजना नं २ (प्रत्येक में १०० गांव)

□ मिश्रित योजना नं ३ (प्रत्येक में १०० गांव)
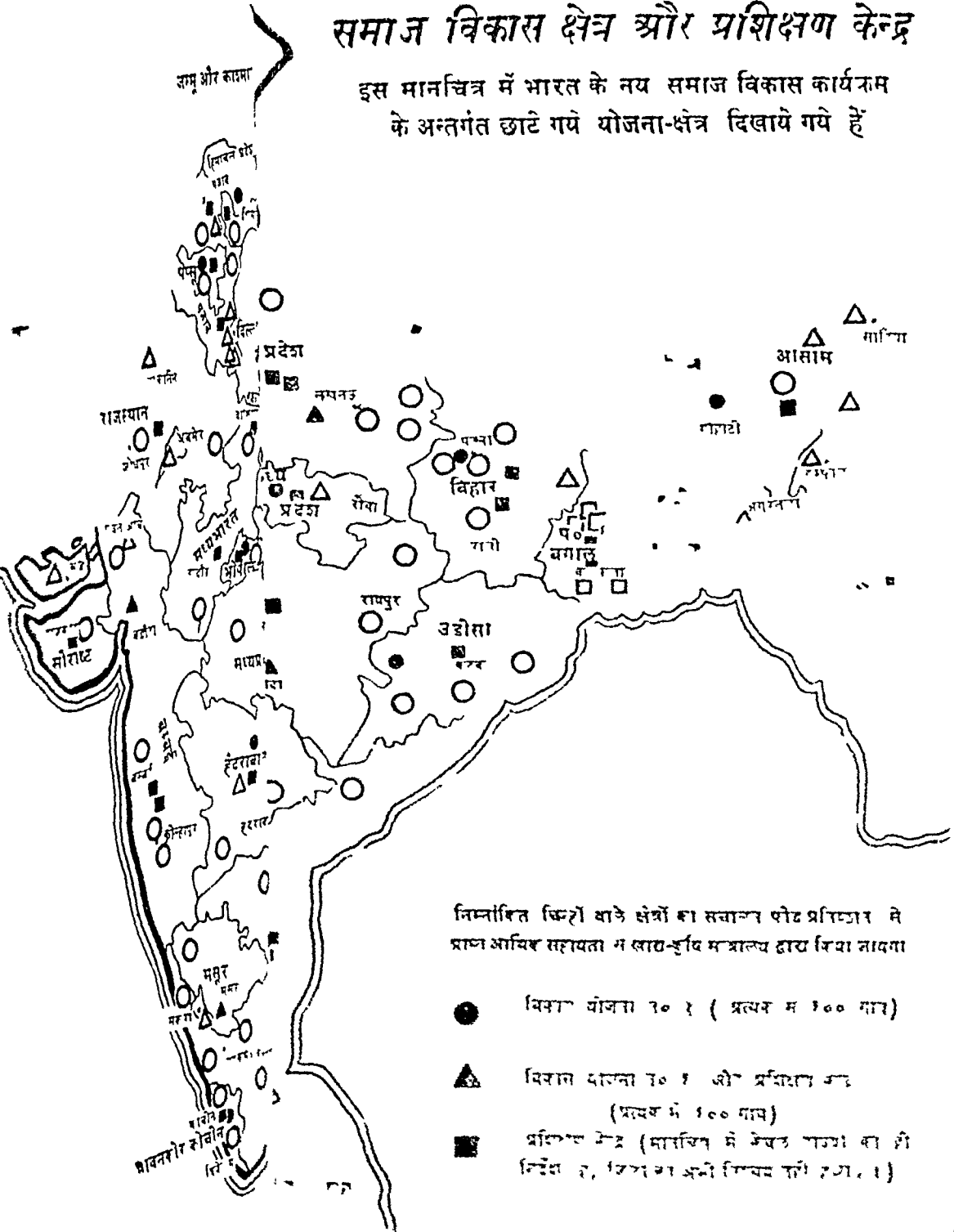
आवेगा। एक गाँव से दूसरे गाँव को मिलाने वाली सड़कें बनाई जावेंगी और प्रौढ़ शिक्षा को सुविधाएँ दी जावेंगी।

इस कार्यक्रम मे कृषि-उन्नति पर विशेष बल दिया जावेगा। यह कार्य ग्राम कार्यकर्त्ताओं (जिनको ट्रेनिंग दी जावेगी) द्वारा किया जावेगा। वे ग्रामीणों को आधुनिक कृषि उपकरणों, उत्तम बीज, खेत की खाद, हरी खाद की फसलों, रासायनिक खाद और सीधे सादे औजारों से काम लेने की विधियाँ बतलावेंगे।

प्रत्येक १५ या २० गाँवों में जहाँ कोई मंडी नहीं है वहाँ एक मंडी खोली जावेगी। इस मंडी में एक दवाखाना और स्वास्थ्य केन्द्र होगा जिसका लाभ एक चलते-फिरते औषधालय के रूप में दूर-दूर तक के ग्रामों को मिल सकेगा। उसके साथ स्वास्थ्य-निरीक्षक, दाइयाँ तथा सफाई निरीक्षक भी होंगे। मंडी में पशुओं का दवाखाना तथा गाड़ियों और ट्रैक्टरों की मरम्मत के अलावा, खेतों की पैदावार की खरीद बिक्री तथा खेती की पैदावार को सुरक्षित रखने के लिए गोदाम बनाने की व्यवस्था की जावेगी।

ऐसा अनुमान किया जाता है इस कार्यक्रम के द्वारा पाँच वर्षों में इन गाँवों में खाद्य-उत्पादन में ५० प्रतिशत की वृद्धि होगी और प्रत्येक गाँव की नकद आमदनी में ३५ प्रतिशत की वृद्धि हो सकेगी जिसके फलस्वरूप ग्रामवासियों का जीवन-स्तर ऊँचा होगा और खाद्य पदार्थों की कमी की समस्या हल हो सकेगी।

अभ्यास के प्रश्न

१—उत्तर प्रदेश में कृषि-विभाग कब खोला गया और आरम्भ में उसने क्या काम किया ?

२—आजकल प्रदेश में कृषि-विभाग कौन-कौन से कार्य करता है ?

३—प्रदेश में कृषि-शिक्षा का कहाँ-कहाँ प्रबन्ध है और इन कृषि स्कूल और कालेजों से क्या लाभ हैं ?

४—कृषि-विभाग के स्थापित होने से प्रदेश में खेती की क्या उन्नति हुई है ?

५—कृषि-विभाग अपने कर्मचारियों द्वारा किये गये आविष्कारों का प्रचार किस प्रकार करता है ?

६—अच्छे बीज पैदा करने और उसके बेचने का प्रबन्ध इस प्रदेश में कैसा है ?

७—कृषि प्रदर्शनियों की क्या उपयोगिता है ?

८—भारत मे खाद्य-पदार्थो का जो अभाव है उस पर एक नोट लिखिए।

सत्ताइसवाँ अध्याय

ग्राम और जिले का शासन

अब हम ग्राम और जिले का किस प्रकार शासन होता है इस पर विचार करते हैं। अधिकाश गॉवों की दशा खराब है, पढ-लिख कर सुयोग्य हो जाने पर लोग जाकर शहरों में बस जाते हैं, वे ग्रामों का ध्यान नहीं रखते। इसी से ग्रामों की सफाई, रहन-सहन आदि मे यथेष्ट उन्नति नहीं हो पाती। देश का जो भला चाहते हैं उन्हें गॉवों की समस्याओं का सहानुभूतिपूर्वक अध्ययन करना चाहिये।

ग्राम-शासन : ग्राम के मुख्य कर्मचारी

हर गॉव में तीन कर्मचारी होते हैं—मुखिया, पटवारी और चौकीदार। पटवारी किसानों से लगान तथा सिंचाई (आबपाशी) की रकम वसूल करता है, और उसे तहसील मे जमा कर देता है।

मुखिया

गाँव के किसी प्रभावशाली व्यक्ति को मुखिया बना दिया जाता है। मुखिया गाँव की घटनाओं को चौकीदार के द्वारा पुलिस मे रिपोर्ट करवाता है। उसका तहसील से भी सम्बन्ध होता है। दौरे के समय वह राज्य कर्मचारियों के साथ सहयोग करता है।

पटवारी

बड़े गाँव मे एक ही गॉव का, और छोटे-छोटे गॉवों मे दो-दो या अधिक का, एक पटवारी होता है। वह अपने गॉव के किसानों के भूमि सम्बन्धी अधिकारों के कागज तथा रजिस्टर आदि रखता है। जब खेती मे कोई तबदीली हो, कोई खेत या उसका हिस्सा बिक जावे,

या किसी खेत का मालिक बदल जावे या मर जावे तो पटवारी इस बात की रिपोर्ट तहसील में करता है। वह खेतो के नक्शे बनाता है। वह लगान का हिसाब रखता है। खेतो मे कितनी पैदावार हुई है, कितनी भूमि पर अमुक फसल उत्पन्न की गई है, गॉव मे कितने पशु है, इनके ऑकड़े भी पटवारी ही रखता है।

चौकीदार

चौकीदार गॉव में पहरा देता है और चौकसी करता है। वह पुलिस मे प्रति सप्ताह यह खबर देता है कि गॉव में उस सप्ताह के भीतर कितने आदमी मरे, कितने बच्चों का जन्म हुआ; वह गॉव की चोरी, मारपीट तथा अन्य अपराधों की रिपोर्ट करता है।

तहसीलदार

ऊपर बतलाये हुये गाँवों के कर्मचारी तहसील के अधीन होते हैं। तहसीलदार अपनी तहसील का प्रधान अधिकारी होता है। तहसीलदार के सहायक कर्मचारी नायब तहसीलदार, कानूनगो इत्यादि होते हैं। प्रत्येक कानूनगो को एक परगना दे दिया जाता है, वह उस परगने के पटवारियों के काम की देखभाल करता है। तहसीलदार प्रजा और अपने से ऊपर के अधिकारियों को एक दूसरे के सम्बन्ध मे आवश्यक सूचना देता रहता है। उसका मुख्य कार्य तहसील की लगान वसूल करना है, जिसे वह अपने सहायक कानूनगोओं की सहायता से वसूल करता है। तहसीलदार फौजदारी के मामले भी सुनता है। उसे तीसरे या दूसरे दर्जे की मजिस्ट्रेटी ❀ के अधिकार भी होते है। वह पचास से लेकर दो सौ रुपये तक जुर्माना और एक माह से छः माह तक की कैद की सजा दे सकता है। इन राज्य कर्मचारियों के अतिरिक्त कुछ ऐसे विभाग हैं जिनका गॉव के शासन से तो कोई सम्बन्ध नही है वरन् गॉव की भलाई करना जिनका कर्तव्य है। इन विभागों के कर्मचारियों का भी गाँव से सम्पर्क रहता है, उदाहरण के लिए आबपाशी, कृषि विभाग, सहकारिता विभाग, ग्रामसुधार विभाग तथा स्वास्थ्य विभाग के कर्मचारी। इन कर्मचारियों का गॉव की सेवा करना मुख्य कार्य है।

❀मजिस्ट्रेट—वह कर्मचारी जिसे शासन तथा न्याय सम्बन्धी कुछ अधिकार प्राप्त हों।

देहाती बोर्ड और जिला कौंसिल

देहातों मे प्रारम्भिक शिक्षा और स्वास्थ्य आदि का कार्य करने वाली मुख्य सस्थाएँ बोर्ड कहलाती हैं। इनके तीन भेद हैं। किसी-किसी प्रदेश मे तो इनमे से तीनों ही प्रकार के बोर्ड हैं और कहीं-कहीं केवल दो या एक ही तरह के हैं।

१—लोकल बोर्ड—यह कुछ ग्रामों के समूह में होता है।

२—ताल्लुका या सब-डिवीजनल-बोर्ड—यह एक ताल्लुके या सब-डिवीजन में होता है। यह लोकल बोर्डों के काम की देखभाल करता है।

३—जिला बोर्ड—इसे किसी प्रदेश में जिला कौंसिल भी कहते हैं, यह एक जिले में होता है और जिले भर के लोकल-बोर्डों (या ताल्लुका बोर्डों) का निरीक्षण करता है।

इन बोर्डों का संगठन कुछ म्यूनिसिपैलिटियों की ही भाँति होता है। यद्यपि बोर्डों मे अधिकतर चुने हुए सदस्य ही होते हैं, तथापि कहीं-कहीं नामजद सदस्य भी काफी होते हैं। किस जिला बोर्ड में कितने सदस्य हों तथा उसका सभापति चुना हुआ रहे या नियुक्त किया जावे, यह प्रत्येक प्रदेश के जिला बोर्ड कानून से निश्चित किया हुआ है। उत्तर प्रदेश मे सभापति चुना हुआ एव गैर सरकारी होता है।

निर्वाचक और सदस्य

जिला बोर्डों के लिए निम्नलिखित व्यक्ति निर्वाचक या मतदाता नहीं हो सकते—(क) जो स्वतन्त्र भारत की प्रजा न हों (ख) जो अदालत से पागल ठहराये गये हों और (ग) जो इक्कीस वर्ष से कम के हों। इन्हे छोडकर साधारणतया ऐसा प्रत्येक व्यक्ति (पुरुष या स्त्री) निर्वाचक हो सकता है जो कि लगान अथवा कर देता हो। वह शिक्षित हो। शिक्षा कौन से दर्जे तक हो यह भी निश्चित है।

निर्वाचकों को चाहिए कि खूब सोच-समझ कर वोट दे। उन्हे ऐसे उम्मीदवार को ही अपना वोट देना चाहिये जो कि गाँव वालों की सच्ची सेवा करना चाहता हो और सदस्य बनने के सर्वथा योग्य हो और जिससे गाँवों का विशेष हित होने की आशा हो। किसी स्वार्थवश वा किसी प्रकार के लिहाज के कारण अयोग्य आदमियों को कभी वोट न देना चाहिये।

बोर्ड के चुनाव के लिये जिले को भिन्न-भिन्न निर्वाचन क्षेत्रों में बाँट दिया जाता है। प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र से एक सदस्य बोर्ड में जाता है। बोर्ड के सदस्य गाँव के हित बहुत कुछ काम कर सकते हैं, उन्हे गाँव वालो की सेवा का बहुत अवसर मिलता है। यदि सच्चाई और ईमानदारी से सदस्य ग्रामवासियों की सेवा करना चाहे तो वे बहुत कुछ कर सकते हैं। अतएव उन्हीं लोगों को चुनाव के लिए उम्मीदवार खडे होना चाहिए जो योग्य हों और समय देकर गाँव वालों की सेवा करना चाहे।

जिला बोर्ड के कार्य

बोर्ड का कर्तव्य अपने ग्राम्य क्षेत्र में शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई आदि के अतिरिक्त कृषि और पशुओं की उन्नति करना है। इस प्रकार इनके मुख्य कार्य ये हैं :—१—सड़कें बनवाना और उनकी मरम्मत करवाना। उन पर पेड़ लगवाना और उन पेडों की रक्षा करना। २—प्रारम्भिक शिक्षा का प्रचार और प्रबन्ध करना (देहातों मे प्राइमरी या मिडिल स्कूल जिला बोर्ड के ही होते हैं) ३—चिकित्सा और स्वास्थ्य का प्रबन्ध करना, चेचक या प्लेग आदि का टीका लगवाना, पशुओं के इलाज के लिये पशु चिकित्सालय की व्यवस्था करना। ४—बाजार, मेला, नुमाइश या कृषि-प्रदर्शनी का प्रबन्ध करना। ५—पीने के पानी के लिये तालाब या कुएँ खुदवाना या उनकी मरम्मत करवाना। ६—काँजी हौज अर्थात् ऐसे स्थान की व्यवस्था करना, जहाँ खेती आदि की हानि करने वाले जानवर रोक रखे जाते हैं। जिस आदमी का पशु नुकसान करते हैं वह उन्हे काँजी हौज भेज देता है। जब पशु का मालिक उसे लेने जाता है तो उसे निर्धारित जुर्माना देना पड़ता है। ७—घाट, नाव, पुल आदि का प्रबन्ध करना।

जिला बोर्डों की आय

स्वतन्त्र भारत में बोर्डों के क्षेत्र मे रहने वाले व्यक्तियों की सख्या इक्कीस करोड़ से भी अधिक है। उपर्युक्त कार्यों तथा इस जनसख्या को देखते हुये उनकी कुल वार्षिक आय जो लगभग सोलह करोड़ रुपये है बहुत कम है। यह अधिकतर उस महसूल से होती है जो भूमि पर लगाया गया है, और जो सरकारी वार्षिक लगान के साथ ही प्रायः एक

आना या अधिक फी रुपये के हिसाब से वसूल करके इन बोर्डों को दे दिया जाता है। इनके अतिरिक्त विशेष कार्यों के लिये सरकार बोर्डों को कुछ रकम कुछ शर्तों पर प्रदान करती है। आय के अन्य साधन, तालाब, घाट, सडक पर महसूल, पशु चिकित्सा और स्कूल की फीस, कॉजी हौज की आमदनी, मेले, नुमाइशों पर कर तथा सार्वजनिक उद्यानों का भूमि-कर हैं। प्राय: लोकल बोर्डों की कोई स्वय आय नही होती। उन्हे समय पर जिला बोर्डों से ही कुछ रुपया मिल जाता है। वे उस रुपये को जिला-बोर्ड की इच्छा या सम्मति के विरुद्ध खर्च नहीं कर सकते।

सरकारी नियन्त्रण

डिप्टी कमिश्नर (या कलेक्टर) अथवा कमिश्नर इनके काम की देख-भाल करते हैं। कलेक्टर को इनके सम्बन्ध मे बहुत अधिक अधिकार हैं। जब वह समझे कि जिला बोर्ड का कोई काम या कोई प्रस्ताव आदि ऐसा है जिससे सार्वजनिक हित की हानि होती है तो वह उस काम को बन्द कर सकता है तथा उस प्रस्ताव को अमल में लाये जाने से रोक सकता है। यदि प्रदेशीय सरकार यह समझे कि कोई बोर्ड अपना कार्य ठीक तरह से नहीं करता तो वह उसे तोड सकती है। उस दशा मे बोर्ड मे नया चुनाव होता है। उत्तर प्रदेश की सरकार जिला बोर्डों के सम्बन्ध मे एक नया कानून बनाने जा रही है। उसके अनुसार बोर्डों के कार्य मे कलेक्टर या कमिश्नर को हस्तक्षेप करने का भविष्य मे अधिकार नही रहेगा और न बोर्ड मे नामजद सदस्य ही रक्खे जावेंगे। स्वायत्त शासन विभाग का मन्त्री (Minister Local Self-Government) ही बोर्डों का नियन्त्रण करेगा।

नागरिक भावों की आवश्यकता

हमे यह भी भली भाँति समझ लेना चाहिये कि यदि हमारे गॉव में अशिक्षा, गन्दगी और लडाई-झगडा रहेगा तो हमारी उन्नति कभी नही हो सकती। अतएव हमे अपने गॉव और जिले की भलाई का ध्यान रखना चाहिये। अस्तु, प्रत्येक गॉव के व्यक्ति को जिला बोर्ड के काम मे दिलचस्पी लेना चाहिये और यह देखते रहना चाहिये कि निर्वाचित सदस्य गॉवों की भलाई के लिये क्या-क्या कार्य कर रहे हैं? जब मतदाता (वोटर) इतने सतर्क रहेंगे तभी बोर्ड अधिक उपयोगी प्रमाणित हो सकेगा।

जिले का शासन

यह तो हम पहले ही बतला चुके हैं कि ग्राम के कर्मचारी तहसीलदार के अधीन होते हैं। तहसीलदार सब-डिवीजनल अफसर के अधीन, और सब-डिवीजनल अफसर जिला मजिस्ट्रेट (कलेक्टर) के अधीन होते हैं। जिला मजिस्ट्रेट को पू० पंजाब, तथा मध्यप्रदेश में डिप्टी कमिश्नर कहते हैं और शेष प्रदेशों में कलेक्टर कहते हैं।

मदरास प्रदेश को छोड़कर अन्य प्रदेशों में कुछ-कुछ जिलों की एक कमिश्नरी है। उसका प्रधान अधिकारी कमिश्नर कहलाता है। यह अपनी कमिश्नरी के जिलों के प्रबन्ध की देखभाल करता है। अब हम जिले का शासन कैसे होता है इसका वर्णन करते हैं।

शासन-व्यवस्था में जिले का स्थान

स्वतन्त्र भारत में कुल मिलाकर करीब २५० जिले हैं। जिलों का क्षेत्रफल, जनसंख्या और सरकारी आय भिन्न-भिन्न है। तथापि राज्य की कल जैसी एक जिले में चलती हुई दिखाई देती है वैसी प्रायः अन्य जिलों में भी है। जैसे अफसर एक जिले में काम करते हैं वैसे ही औरों में भी हैं। जनता के काम-काज का केन्द्र जिला होता है। ग्रामीण जो अधिकतर प्रवास-भीरु होते हैं उन्हें भी जिलों में काम पड़ता है। जिले के शासन प्रबन्ध को देखकर ही देश के शासन का अनुमान किया जा सकता है।

जिला मजिस्ट्रेट के कार्य

पर दो साल की कैद और एक हजार रुपये तक जुर्माना कर सकता है। जिले की सब प्रकार की सुख-शान्ति का वही उत्तरदाता है। वही स्थानीय पुलिस की निगरानी भी करता है। इस बात का निश्चय करने में कि कहाँ पुल, सडक, इत्यादि बनने चाहिये, कहाँ सफाई का प्रबन्ध होना चाहिए तथा जिले के किन-किन स्थानों को स्थानीय स्वराज्य मिलना चाहिए, उसी की सम्मति प्रामाणिक मानी जाती है। जिले में जिस बात का प्रबन्ध ठीक न हो उसका सुधार करना, और हर एक बात की रिपोर्ट उच्च कर्मचारियों के पास भेजना, उसी का कर्तव्य है। जिले की आन्तरिक दशा जानने तथा उसे सुधारने के विचार से उसे देहात में दौरा करना होता है।

जिले के अन्य कर्मचारी

जिले में अनेक प्रकार के कार्य होते हैं, जैसे शान्ति रखना, झगड़ों का फैसला करना, मालगुजारी वसूल करना, सड़क पुल आदि बनवाना, अकाल में लोगों की सहायता करना, रोगियों का इलाज करना, म्युनिसिपैलिटी, जिला बोर्डों की निगरानी रखना, जेलखाने और स्कूलों का निरीक्षण करना। इन विविध कार्यों के लिए जिले मे कई अफसर रहते हैं, जैसे स्कूल के डिप्टी इन्सपेक्टर या पुलिस का सुपरिंटेन्डेन्ट या पुलिसकप्तान, अस्पताल का सिविल सर्जन, जेलों का सुपरिन्टेन्डेन्ट, निर्माण कार्य के लिए एग्जीक्यूटिव इजीनियर, और न्याय कार्य के लिए जिला जज आदि होते हैं। ये अफसर अपने पृथक्-पृथक् विभागों के कर्मचारियों के अधीन होते हैं। परन्तु शासन के विचार से जिला जज और मुसिफ आदि को छोड कर सब पर जिला मजिस्ट्रेट ही प्रधान होता है। जिला मजिस्ट्रेट के कार्य मे सहायता देने के लिए डिप्टी और सहायक मजिस्ट्रेट भी रहते हैं।

प्राय: प्रत्येक जिले के कुछ भाग होते हैं जिन्हे सब-डिवीजन कहते हैं। हर एक सब-डिवीजन एक डिप्टी कलेक्टर अथवा अतिरिक्त असिस्टैन्ट कमिश्नर के अधीन रहता है। सब-डिवीजनों के अफसरों के अधिकार जिला मजिस्ट्रेट की भाँति होते हैं।

कमिश्नर

पहिले कहा जा चुका है कि मद्रास प्रदेश को छोड़ कर प्रत्येक बड़े

प्रदेश मे कुछ कमिश्नरियाँ होती हैं। इनके प्रधान अफसर को डिवीजनल-कमिश्नर या कमिश्नर कहते हैं। वह शासन सम्बन्धी कोई विशेष कार्य नहीं करता। केवल अपने अधीन जिला अफसरों के कार्य की जाँच-पड़ताल करता है। जिलों से जो रिपोर्ट या पत्र आदि प्रदेशीय सरकार के पास जाते हैं वे सब कमिश्नर के हाथ से गुजरते हैं। कमिश्नर माल (रेवन्यू) के मुकदमों की अपील भी सुनता है। लगान के बन्दोबस्त मे इसका काम केवल परामर्श देना है, पर विशेष दशाओं में उसे लगान की वसूली रोकने का अधिकार है।

कमिश्नरों को अपनी-अपनी म्युनिसिपैलिटियों के काम देखने-भालने के भी कुछ अधिकार होते हैं। परन्तु उनका विशेष सम्बन्ध लगान के प्रबन्ध के लिये होता है। पू० पञ्जाब और मध्य प्रदेश में सर्वोच्च अधिकारी फाइनैंसियल कमिश्नर है और उत्तर-प्रदेश, बिहार और बंगाल में रेवन्यू बोर्ड है। रेवन्यू बोर्ड मे एक से लेकर चार तक मेम्बर होते हैं। फाइनैंसियल कमिश्नर और रेवन्यू बोर्ड कमिश्नरों और कलेक्टरों के कार्य की देखभाल करते हैं। माली मामलों में यह कमिश्नरों के निर्णय के विरुद्ध अपील भी सुनते हैं।

अभ्यास के प्रश्न

१—गाँव के मुख्य कर्मचारी कौन से होते हैं और वे क्या कार्य करते हैं?

२—तहसीलदार और उसके अधीन कर्मचारी क्या काम करते हैं?

३—जिला बोर्ड किसे कहते हैं और वह कैसे बनता है?

४—जिला बोर्ड क्या-क्या काम करता है?

५—जिला बोर्ड के पास खर्च करने के लिये रुपया कहाँ से आता है?

६—यदि तुम कभी अपने जिला बोर्ड के चेयरमैन चुने जाओ और बहुमत तुम्हारे पक्ष में हो तो तुम गाँवों की दशा सुधारने के लिये क्या करोगे?

७—जिला का शासन किस प्रकार चलता है? पटवारी या मुखिया का इसमें क्या स्थान है? (१९४३)

८—जिला मजिस्ट्रेट और कमिश्नर क्या काम करते हैं?

६—गाँव वालों का कौन से सरकारी विभागों से अधिक काम पडता है ?

१०—अपने जिले की शासन-व्यवस्था का विशद वर्णन कीजिये। ग्रामीणों के लिये चौकीदार, पटवारी और तहसीलदार का क्या काम और महत्व है ? (१६४५)

अट्ठाइसवाँ अध्याय

ग्राम-पंचायत

यद्यपि गाँव की दशा अत्यन्त गिरी हुई है और हानिकारक रूढियों के कारण उनकी दशा और भी खराब हो गई है, फिर भी गाँवों मे सामाजिक जीवन में कुछ ऐसी अच्छाइयाँ हैं जो आज भी नष्ट नहीं हुई हैं। यदि गाँव की उन अच्छी रस्मों के आधार पर गाँव मे कार्य किया जावे तो वहाँ बहुत कुछ सुधार हो सकता है। गाँवों के सामाजिक जीवन का अध्ययन करने के लिये यह आवश्यक है कि गाँव वालों के पारस्परिक सम्बन्ध को समझ लिया जावे।

गाँव वालों का पारस्परिक सम्बन्ध

गाँव मे भ्रातृभाव तथा सहयोग की भावना अब भी बहुत कुछ अंशों में शेष हैं। सारा गाँव एक बडे कुटुम्ब के समान होता है और समय पड़ने पर सब लोग एक दूसरे की सहायता के लिए तैयार रहते हैं।

यदि किसी किसान के यहाँ लडकी का विवाह होता है तो गाँव भर के लोग अनाज, लकड़ी, दही, दूध तथा टीके के रुपयों से उसकी सहायता करते हैं। विवाह का सारा कार्य बिरादरी तथा गाँव की अन्य स्त्रियाँ मिलकर कर लेती हैं। पुरुष भी बारात की सेवा मे भरसक सहायता देते हैं। खेतों की बोवाई, सिचाई और कटाई के समय भी किसान एक दूसरे का काम करते हैं जिससे कि काम हलका हो जाता है। प्रत्येक बिरादरी की एक पञ्चायत होती है, जो कि अपनी बिरादरी के सामाजिक जीवन का नियन्त्रण करती है। किसी-किसी प्रदेश मे जहाँ कि पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव नहीं है, गाँव का सारा आर्थिक और सामाजिक संगठन ही सहयोग के आधार

पर खडा हुआ मिलता है। राजपूताने के गॉवों मे सिचाई के लिए गॉव के तालाव की मरम्मत गॉव के प्रत्येक पुरुष और गाँव की वहू (गॉव की लड- कियाँ इस श्रम से मुक्त हैं) को करनी पड़ती है। गॉव के मन्दिर के व्यय के लिए घर पीछे पाव भर रुई, सवा सेर तेल और छटॉक भर घी लिया जाता है। गॉव के झगड़ों का फैसला पचायत करती है, और शिक्षा तथा अन्य सार्वजनिक कार्यों के लिए ग्राम-पंचायत घर के पीछे कर उगाहती है। एक प्रकार से सारा स्थानीय शासन ही गॉवों की पंचायत करती है। गाँव के लोग फिर चाहे वे भिन्न-भिन्न जातियों के ही क्यों न हों एक दूसरे को अपने भाई के समान ही मानते हैं। एक क्षत्रिय का लडका भी एक कहार को जो उससे आयु मे बडा है चाचा या दादा कहकर पुकारता है। पहले तो गॉवो का जीवन सुन्दर, मधुर और सहयोग का आदर्श जीवन था। किन्तु आधुनिक- काल में पश्चिमी सभ्यता के मूल आधार व्यक्तिवाद* (Individualism) के प्रभाव के कारण तथा आर्थिक और सामाजिकपन के कारणों से गॉवो का यह सुन्दर सामाजिक सगठन नष्ट होता जा रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि गॉवों को इन अच्छी रस्मों और भ्रातृभाव को नष्ट होने से बचाया जावे और गाँवों को नवजीवन प्रदान किया जावे।

गाँवों की संस्थाएँ और उनका महत्व

भारतीय ग्रामों की मुख्य संस्था पचायत थी। ब्रिटिश शासन के पूर्व पंचायत वस्तुतः गाँव का शासन करती थी और प्रत्येक गाँव इस दृष्टि से स्वावलम्बी था। ब्रिटिश शासन काल में उनका महत्व जाता रहा। पंचायत के विषय मे नीचे विस्तारपूर्वक लिखा जाता है। भविष्य में सम्भवतः पंचायतें फिर महत्वपूर्ण हो जावेगी।

दूसरी महत्त्वपूर्ण संस्था जो किसी-किसी गाँव में पाई जाती है वह है सहकारी समिति। सहकारी समितियॉ भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं। साख-समिति, उत्पादक-समिति, क्रय-विक्रय-समिति, रहन-सहन-सुधार-समिति तथा उपभोक्ता भडार-समिति इत्यादि। सहकारी समितियाँ गॉव वालों को ऋण देने तथा

---

*व्यक्तिवाद—इस सिद्धान्त को मानने वाले केवल अपने स्वार्थों की ओर ही ध्यान देते हैं।

उनकी आर्थिक स्थिति को अच्छा बनाने का प्रयत्न करती हैं। इनके विषय मे सहकारिता के अध्याय में विस्तारपूर्वक लिखा गया है।

थोडे दिनों से गाँवों मे प्रदेशीय सरकारों की ओर से ग्राम-सुधार का कार्य हो रहा है। जिस गाँव को ग्राम-सुधार कार्य के लिये छाँटा जाता है वहाँ एक ग्राम-सुधार पचायत का चुनाव कर लिया जाता है। आर्गनाइजर इन पचायतों के सहयोग तथा परामर्श से ग्राम-सुधार का कार्य करते हैं।

इनके अतिरिक्त किसी-किसी गाँव मे स्वतन्त्र पचायतें होती हैं जो पुरानी पचायतों के अवशेष चिह्न मात्र होती हैं। वे सरकार द्वारा स्वीकृत नहीं होती हैं, परन्तु गॉव के सार्वजनिक कार्यों की देख भाल करती हैं तथा उन पर नियन्त्रण रखती हैं। गऊशाला, मन्दिर, प्याऊ तथा कहीं-कहीं पाठशालाओं को भी ये पचायतें चलाती हैं। परन्तु इस प्रकार भी पचायतें बहुत कम हैं।

पचायतें

प्राचीन काल मे यहाँ प्रत्येक गॉव और नगर मे प्रभावशाली पचायतें रहती थी, जो सारा स्थानीय शासन स्वयं करतीं और केन्द्रीय (Central) सरकार अर्थात् राजा के सामने अपने क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करती थी। पचायत स्थानीय रक्षा के लिए अपनी पुलिस रखती, स्वय भूमि-कर वसूल करके राज-कोष में भेजती, गॉव और नगर की सफाई का प्रबन्ध करती थी। अपने क्षेत्र के धार्मिक स्थान, जलाशयों तथा पाठशालाओं की देख-भाल तथा उनका सचालन करती थी, और अपने गॉव नगर में छोटे-छोटे दीवानी और फौजदारी के झगड़ों का निपटारा करती थी। भारत मे पचायतों का यहाँ तक विश्वास और प्रभाव था कि अब तक भी "पच-परमेश्वर" की कहावत चली आती है। हिन्दू राजाओ के जमाने से ही यहाँ पचायतें थी, मुसलमानी अमलदारी मे भी वे एक महत्वपूर्ण संस्था के रूप मे रहीं। परन्तु अंग्रेजी शासन काल में उनकी आय तथा अधिकार प्रान्तीय सरकार ने ले लिए। पुलिस तथा फौजदारी अदालतें स्थापित कर दी गई जिससे पंचायतों का क्रमशः ह्रास हो गया। अब भी कहीं-कहीं पचायतें हैं जो धर्मशाले, मन्दिर, जलाशय तथा अन्य धार्मिक हित के कार्य करती हैं, किन्तु ये प्राचीन व्यवस्था के स्मृति-चिह्न मात्र हैं।

कुछ वर्षों से भारतीय ग्रामों की इस संस्था का महत्व सरकार ने समझा है और पंचायतों को पुनः नवीन रूप से स्थापित करने का उद्योग किया जा रहा है। इनके सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न प्रदेशों में नए-नए कानून बनाये गये हैं और धीरे-धीरे इनकी स्थापना की जा रही है।

पंचायत की सफलता के उपाय

पचायतों से ग्राम-सुधार तथा न्याय सम्बन्धी बहुत कुछ काम हो सकता है। लोगों का मुकदमेबाजी में जो अपरिमित धन और शक्ति नष्ट होती है। वह बहुत कुछ बच सकती है। हाँ, ऐसी संस्थाओं की सफलता के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि वे अपने उत्तरदायित्व को समझें। वे अधिकारियों के दबाव में न रहे, अपने नैतिक बल से कार्य करें, तभी जनता का उन पर यथेष्ट विश्वास हो सकता है और उन्हे लोगों का समुचित सहयोग मिल सकता है। पच ऐसे आदमी होने चाहिये जिनके लिये जनता की सम्मति हो, जिन्होंने सर्वसाधारण की सेवा की हो तथा भविष्य मे भी जो लोक-हित के अभिलाषी हों। पचों का कर्त्तव्य है कि वे अधिकार की भावना न रखकर अपने कार्य को कर्त्तव्य समझ कर सेवा भाव से काम करें; जनता के अधिकाधिक सम्पर्क में आवें, और उनकी आवश्यकताओं और परिस्थितियों की यथेष्ट जानकारी रखे। अभी तक पचायतों को बहुत कम अधिकार दिये गए थे इसी कारण उनका कोई विशेष महत्व नही था। जनता की माँग है कि भविष्य मे पंचायतों को अधिक अधिकार दिये जावे। सम्भवतः अब जब कि जनता के प्रतिनिध ही प्रदेश का शासन कर रहे हैं तब सब प्रदेशों मे पचायतों के अधिकार अवश्य बढा दिये जावेगे।

उत्तर प्रदेश का पंचायत राज्य कानून

सन् १९४७ में उत्तर-प्रदेश का पंचायत-राज्य विधान स्वीकार हो गया और २७ दिसम्बर सन् १९४७ से लागू कर दिया गया। इस विधान के अनुसार गॉव की पंचायतों को गॉव के शासन में बहुत कुछ अधिकार मिल गये हैं और वे स्थानीय शासन को अपने हाथ मे ले रही हैं।

इस विधान के अन्तर्गत नीचे दी हुई संस्थाये स्थापित हो गई है जो गॉव का शासन प्रबन्ध करती हैं :—

गाॅव सभा

उत्तर-प्रदेश की सरकार ने गाॅवों मे गाॅव सभाएँ स्थापित कर दी हैं। प्रत्येक गाॅव सभा मे वे सब प्रौढ सम्मिलित होते हैं जो उस क्षेत्र के स्थायी निवासी हों। लेकिन ऐसा कोई प्रौढ उसका सदस्य नहीं हो सकेगा यदि—

(क) उसका दिमाग खराब हो।

(ख) उसको कोढ हो।

(ग) वह दिवालियेपन से बरी नहीं किया गया हो।

(घ) सरकारी नौकर हो वा आनरेरी मजिस्ट्रेट, आनरेरी मुसिफ या आनरेरी असिस्टेन्ट कलेक्टर हो जिसके अधिकार क्षेत्र मे किसी गाँव-सभा का क्षेत्र हो।

(ङ) उसे चुनाव सम्बन्धी किसी अपराध के लिए दड दिया जा चुका हो या।

(च) उसको किसी नैतिक अपराध में दड दिया जा चुका हो या नेक चलनी के लिए जमानत जमा करने की आज्ञा दी गई हो।

गाॅव सभा की वर्ष मे दो बैठके होती हैं, एक खरीफ की बैठक दूसरी रबी की बैठक। आवश्यकता पड़ने पर सभापति स्वय अथवा $\frac{1}{5}$ सदस्यों की लिखित माॅग पर स्वय बैठक बुला सकता है।

गाॅव सभा की खरीफ की बैठक में सभा का बजट तैयार करके विचारार्थ उपस्थित किया जाता है तथा रबी की बैठक मे वर्ष का हिसाब रक्खा जाता है

गाॅव सभा अपने सदस्यों मे से एक को सभापति और दूसरे को उपसभापति चुनती है जो तीन वर्ष तक अपने पद पर रहता है।

गाॅव सभा अपने सदस्यों मे से कम से कम ३० व्यक्तियों की एक "गाँव पंचायत" चुनती है जो सभा की कार्यकारिणी होती है। गाॅव सभा का सभापति और उपसभापति क्रमशः गाॅव पचायत के सभापति और उपसभापति होते हैं।

गाँव पचायत के कार्य

(क) सडकों को बनवाना, उनकी मरम्मत कराना, उनकी सफाई तथा रोशनी का प्रबन्ध करना।

(ख) चिकित्सा का प्रबन्ध करना।

(ग) गाँव की सफाई करवाना तथा संक्रामक रोगों के तथा दूर करने का उपाय करना।

(घ) जन्म, मृत्यु तथा विवाहों का रजिस्टर रखना।

(ङ) मेलों तथा बाजारों का प्रबन्ध करना।

(च) गाँव में प्रारम्भिक शिक्षा का प्रबन्ध।

(छ) चरागाहों को छोड़ना और उनका प्रबन्ध करना।

(ज) कुओं तथा तालाबों को सार्वजनिक उपयोग के लिए बनवाना तथा उनकी मरम्मत कराना।

(झ) खेती-बारी, व्यापार और उद्योग धंधों की उन्नति में सहायता करना।

(ञ) आग लग जाने पर लोगों के जीवन तथा उनकी सम्पत्ति की रक्षा करना।

(ट) सूतिका (बच्चा उत्पन्न कराने) और शिशुओं का हित-साधन करना।

(ठ) खाद इकट्ठा करने के लिए स्थान नियत करना।

(ड) मार्गों पर तथा अन्य स्थानों पर पेड़ लगवाना।

(ढ) मवेशियों की नस्ल सुधारना, उनकी चिकित्सा और उनके रोगों की रोक-थाम करना।

(ण) गाँव की रक्षा करने तथा गाँव पचायत की सहायता करने के लिए गाँव स्वयसेवक दल का सगठन करना।

(त) गाँव मे मनोरंजन के साधन उपलब्ध करना तथा पुस्तकालय इत्यादि स्थापित करना।

गाँव पंचायत के कर

इन कार्यों को करने के लिए गाँव सभा निम्नलिखित कर वसूल कर सकती है :—

(१) एक आना फी रुपया मालगुजारी पर टैक्स किसानों से वसूल करेगी।

(२) अधिक से अधिक ६ पाई फी रुपया मालगुजारी पर जमींदार से वसूल करेगी।

(३) एक टैक्स खुदकाश्त या सीर पर भी लगाया जावेगा।

(४) एक टैक्स व्यापार, कारवार और पेशों पर जो ऐसी दर से अधिक न होगा जो नियत किया जावे, लगाया जावेगा।

(५) एक टैक्स उन इमारतों पर जो ऐसे व्यक्तियों के स्वामित्व में हों जो ऊपर दिये हुये कोई टैक्स न देते हों, लगाया जावेगा। उसकी दर सरकार नियत करेगी।

करों द्वारा जो धनराशि इकट्ठी होगी वह "गाँव-कोष" में जमा की जावेगी और गाँव सभा द्वारा बजट की स्वीकृति हो जाने पर गाँव पंचायत द्वारा ऊपर लिखे कामों पर खर्च की जावेगी।

'गाँव-पचायत' पटवारी चौकीदार तथा अन्य सरकारी कर्मचारियों के कार्य से यदि असन्तुष्ट हो तो उनकी शिकायत उन विभागों के उच्च अधिकारियों से कर सकेगी और वह अधिकारी जाँच करने के उपरान्त अपना निर्णय गाँव-पचायत के पास भेज देगा।

पंचायत अदालत

उत्तर-प्रदेश की सरकार ने जिले को बहुत से क्षेत्रों में बाँट दिया है और प्रत्येक क्षेत्र में एक 'पचायत अदालत' स्थापित की गई है।

किसी क्षेत्र की प्रत्येक 'गाँव सभा' उस क्षेत्र की पंचायत अदालत में पंचों की हैसियत से काम करने के लिए अपने सदस्यों में से पाँच सदस्य चुनती है। किसी क्षेत्र की सारी 'गाँव सभाओं' के चुने हुए पंचों का एक 'पंच मडल' होता है।

इस प्रकार सब चुने हुए पञ्च पञ्चायती अदालत के 'सरपञ्च' का काम करने के लिए अपने में से एक व्यक्ति को चुनते हैं।

सरपञ्च प्रत्येक मुकदमे के लिए पञ्च मडल में से पाँच पञ्चों का एक बेंच नियुक्त करता है। पञ्चायत अदालत में अभी तक कोई वकील पैरवी नहीं कर सकता था किन्तु अब यह रोक उठा दी गई है।

पञ्चायत अदालतों को माल, दीवानी तथा फौजदारी सभी के मुकदमे लेने का अधिकार है परन्तु कानून के अनुसार कुछ धारायें दे दी गई हैं केवल उन्हीं के अन्तर्गत अदालत मुकदमों का फैसला कर सकती है।

इस विधान से गाँवों की दशा में विशेष सुधार होगा। गाँव वालों को

स्थानीय शासन के अधिकार प्राप्त होंगे और अदालतों में जाकर जो उनका भयंकर शोषण होता है, उनके समय और धन की जो बर्बादी होती है वह दूर होगी। कॉंग्रेस सरकार ने गॉव-पंचायत राज्य विधान बनाकर ग्रामीण जनता की बहुत भलाई की है।

अभ्यास के प्रश्न

१—जमींदार और किसानों का पहले कैसा सम्बन्ध था और आज कैसा सम्बन्ध है ?

२—गॉवों के रहने वालों में भाई-चारे का जो सम्बन्ध आज तक चला जा रहा है उससे क्या हानि लाभ है ?

३—गॉव में महाजन का क्या उपयोग है ?

४—पञ्चायत किसे कहते हैं और वह क्या-कार्य करती है ?

५—उत्तर प्रदेश मे पञ्चायतों को क्या-क्या अधिकार दिये गये हैं ?

६—प्राचीन काल में पञ्चायतों का गॉव के संगठन मे कैसा स्थान था ?

७—सरकार द्वारा स्वीकृत पंचायतो में छोटे-छोटे मुकदमों का फैसला किस प्रकार होता है ?

८—क्या पचायतो के अधिकारों को बढाने की जरूरत है ? यदि है तो कौन से अधिकार उन्हे दिये जाने चाहिये ?

९—पञ्चायतों के कर्तव्य क्या हैं ? भारतीय ग्रामीण जीवन मे उनका क्या महत्व है ?

उन्तीसवाँ अध्याय

सहकारिता तथा सहकारी साख समितियाँ

(Co-operation & Co-operative Credit Societies)

सहकारिता के मूल सिद्धात (Principles of Co-operation)

आधुनिक काल मे समाज ने आर्थिक जीवन में प्रतिस्पर्धा या होड़ (competition) के सिद्धात को अपना लिया है। जो निर्बल हैं उनके लिये समाज मे कोई स्थान नहीं है। उदाहरण के लिये जुलाहा कपड़े की

मिल की प्रतिस्पर्धा मे असफल होता है, किसान को महाजन से ७५ प्रतिशत सूद पर ऋण मिलता है जबकि कोई सेठ अथवा जमींदार किसी बैङ्क से सात या आठ प्रतिशत पर ऋण पा सकता है। निर्धन मजदूर या किसान मजदूर किसी दूकान पर सौदा लेने जाता है क्योंकि वह पैसे दो पैसे का सौदा लेता है इस कारण दूकानदार उसे खराब चीज अधिक दामों पर देता है। धनी व्यक्ति अच्छी वस्तु सस्ते दामों पर पा सकते हैं क्योंकि वे अधिक खरीदते हैं। इसका अर्थ यह है कि निर्धन व्यक्ति फिर चाहे वह सम्पत्ति उत्पादन (Production) करने वाला हो अथवा उपभोग (Consumption) करने वाला हो वह आधुनिक प्रतिस्पर्धा के कारण लूटा जाता है। सहकारिता इन निर्धनों को भाई-चारे के आधार पर संगठित कराके उन्हे वे ही सुविधाये प्रदान करना चाहती है जो कि धनी और ऐश्वर्यशाली व्यक्तियों को प्राप्त हैं। उदाहरण के लिये सहकारिता आन्दोलन बहुत से जुलाहों को भाई-चारे के आधार पर सगठित करके उन्हे मिलों की प्रतिस्पर्धा मे सफल बनाने का प्रयत्न करता है। निर्धन किसानो को साख-समितिं स्थापित करके उन्हे उचित सूद पर ऋण दिलाने का प्रबन्ध करता है। साराश यह कि आज के इस होड (प्रतिस्पर्धा) के जमाने में जो सुविधायें केवल धनी और समाज के सबल सदस्यों को ही प्राप्त है, सहकारिता आन्दोलन उन्हे सहकारा सगठन के द्वारा निर्धन और समाज के निर्बल सदस्यों को भी पहुँचाता है।

यहाँ हम उदाहरण देकर यह समझाने की चेष्टा करेंगे कि सहकारिता किसे कहते हैं। **सहकारिता का अर्थ है मिलकर एक साथ कोई काम करना।** मान लो कि एक गाँव से पच्चीस किसान जिनके पास गाय या भैंस है अपना-अपना दूध शहर के हलवाइयो के पास प्रातः तथा सायकाल ले जाते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि पच्चीसों किसान प्रतिदिन तीन या चार घटे समय अपना थोडा सा दूध हलवाई के पास ले जाने में व्यय करते हैं। यदि यह नियम बना ले कि उनमे से केवल एक किसान प्रतिदिन बारी से सब का दूध शहर ले जावेगा तो हर एक दिन शेष चौबीस किसानो का तीन या चार घटा समय नष्ट होने से बच जावेगा और सबों का दूध भी यथासमय शहर पहुँच जाया करेगा। यही नही यदि वे पच्चीस किसान एक साथ मिलकर अपना दूध बेचें तो हलवाइयों से उन्हे दूध के अच्छे दाम मिल सकते हैं।

हम इस प्रकार के सगठन को सहकारी समिति कहेगे। जुलाई के महीने में यदि तुम अपने दर्जे के लड़कों को इस बात के लिए राजी कर लो कि वे अलग-अलग अपनी पाठ्य-पुस्तके शहर के बुकसेलरों से न खरीद कर एक साथ मिलकर प्रकाशकों से खरीदे तो तुम लोगों को पुस्तके कम कीमत मे मिल जावेगी और तुम्हारा यह सगठन विद्यार्थियों की सहकारी समिति कहलावेगा। बस, अब तो तुम समझ हो गये होगे कि **किसी काम को एक साथ मिलकर करने को सहकारिता कहते है।**

सहकारिता आन्दोलन क्या है, यह एक उदाहरण से स्पष्ट हो जावेगा। कल्पना कीजिये कि एक अधा भिखारी एक अनजान स्थान पर पहुँच जाता है और अंधा होने के कारण भीख माँगने का काम नहीं कर सकता। साथ ही वहाँ एक लूला व्यक्ति भी है जिसकी दोनों टाँगे बेकार हो गई हैं, इस कारण वह भी भीख माँगने से मजबूर है। अब यदि वे दोनों सहकारिता के सिद्धान्त को अपनावे और अंधा लूले को अपने कन्धे पर बिठाले तो लूले की आँखे और अधे की टाँगे एक दूसरे से सहयोग कर उन दोनों का काम निकाल सकती हैं। सक्षेप में हम कह सकते है कि **किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिये जब हम भाईचारे के आधार पर संगठित प्रयत्न करें और होड़ (मुकाबिले) और शोषण को दूर कर दें तो हम उसे सहकारिता कहेंगे।**

भिन्न-भिन्न प्रकार की सहकारी समितियाँ

ऊपर हम यह बतला चुके हैं कि सहकारिता का क्या अर्थ हैं। किसी ने ठीक ही कहा है कि "सहकारिता तू निर्धनों का बल है"। जो निर्धन हैं वे ही सहकारिता की शरण मे आते हैं और अपना सगठन करते हैं क्योंकि ऐसा किये बिना आज की होड़ (मुकाबिले) मे धनी और शक्तिवानो के विरोध मे खड़े नही रह सकते। अतएव प्रत्येक आर्थिक कार्य के लिए सहकारिता आन्दोलन की सहायता की जा सकती है। यही कारण है कि हमे बहुत प्रकार की सहकारी समितियाँ देखने को मिलती है। नीचे हम मुख्य सहकारी समितियों का वर्णन करते हैं—

(१) उपभोक्ता सहकारी समितियाँ या उपभोक्ता स्टोर (Cooperative Consumers' Stores)—जब ग्राहक स्वय मिलकर अपनी

दैनिक आवश्यकता की चीजों को प्राप्त करने के लिए दूकान स्थापित करते हैं तो उसको उपभोक्ता स्टोर कहते हैं।

(२) उत्पादक सहकारी समितियाँ—जब छोटे-छोटे कारीगर अथवा मजदूर या किसान आपस में सहकारिता के आधार पर संगठित होकर अपने धन्धे या खेती का सगठन करते हैं और बडे पूँजीपति उत्पादकों की होड़ में खडे रहने का प्रयत्न करते हैं तब उसे उत्पादक सहकारी समिति कहते हैं।

(३) साख सहकारी समितियाँ—जब निर्धन किसान, कारीगर, अथवा मजदूर सहकारिता के आधार पर सगठित होकर साख (कर्ज) प्राप्त करने के लिये समिति का सगठन करते हैं तो उसे साख समिति कहते हैं।

(४) अन्य प्रकार की समितियाँ—इनमें क्रय-विक्रय समितियाँ, भूमि की चकबन्दी समितियाँ, रहन-सहन सुधार समितियाँ, इत्यादि सभी अन्य समितियाँ आ जाती हैं।

आगे हम इनके सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक लिखेंगे।

सहकारी साख समितियाँ
(Co-operative Credit Societes)

सहकारी साख आन्दोलन की जन्मभूमि जर्मनी में दो प्रकार की साख समितियाँ कार्य कर रही हैं। **१—रैफिसन ग्राम्य सहकारी साख समितियाँ जिनके जन्मदाता श्री रैफिसन महोदय थे। २—शुल्ज समितियाँ जो विशेषतः नगरों मे मध्यवर्ग तथा छोटे-छोटे कारीगर और व्यापारियों के लिए स्थापित की गई।** भारत मे सहकारी आन्दोलन जर्मनी से नकल किया गया। इस कारण यहाँ भी दो प्रकार की सहकारी समितियाँ स्थापित की गई। प्रथम रैफिसन प्रणाली की कृषि सहकारी साख समितियाँ (Agricultural Co-operative Credit Societies) जो गाँवों में स्थापित की गईं, दूसरी शुल्ज प्रणाली के पिपुल्स बैंक जो कि नगरों में स्थापित किये गये। गैर साख कृषि सहकारी समितियों के विषय में अगले परिच्छेद में विस्तारपूर्वक लिखा जायगा। कृषि साख समितियों और पिपुल्स बैंकों (नगर साख समितियों) में मुख्य अन्तर निम्नलिखित हैं :—

१—कृषि साख समितियों मे हिस्से या तो नहीं होते अथवा बहुत कम

मूल्य के होते हैं। नगर साख समितियों में हिस्से अधिक मूल्य के होते हैं।

२—कृषि साख समितियों का दायित्व अपरिमित* (Unlimited liability) होता है परन्तु नगर साख समितियों का दायित्व परिमित (Limited liability) होता है।

३—कृषि साख समितियों मे लाभ नहीं बाँटा जाता (किसी विशेष दशा मे बाँटा जाता है) नगर साख समितियों में लाभ बाँटा जाता है।

४—कृषि साख समितियों में किसी भी सदस्य को समिति का कार्य संचालन के लिये कोई वेतन नहीं मिलता परन्तु नगर साख समितियों में प्रबन्ध करने वाले सदस्यों को वेतन दिया जा सकता हैं।

रैफिसन और शुल्ज प्रणालियो को भारत की परिस्थिति के अनुसार कुछ संशोधन करके अपना लिया गया है। दोनों प्रकार की समितियाँ अपने सदस्य को उचित सूद पर ऋण देने का प्रबन्ध करती है।

प्रारम्भिक कृषि सहकारी साख समितियाँ
(Primary Agricultural Co-operative Credit Societies)

सन् १६०४ में जब सहकारिता आन्दोलन का यहाँ आरम्भ हुआ तो उसका उद्देश्य केवल गाँव वालों की साख समस्या को हल कर देना था। अन्य धन्धों की भाँति खेती-बारी मे भी पूँजी उधार लेने की आवश्यकता है। कृषक महाजन से पूँजी उधार लेकर उसका दास बन जाता

---

*अपरिमित दायित्व (Unlimited liaiblity) :—अपरिमित दायित्व वाली समितियों के सदस्य व्यक्तिगतरूप से समिति के सारे ऋण को चुकाने के लिये जिम्मेदार होते हैं। उदाहरण के लिये यदि एक साख समिति टूटती है और उस पर बाहर वालों का कर्जा चढ़ जाता है तो समिति के लेनदार (Creditor) किसी एक सदस्य से सारे कर्जे वसूल कर सकते हैं। परिमित दायित्व वाली समितियों के सदस्यों की ऋण चुकाने की जिम्मेदारी उनके हिस्से के मूल्य से परिमित होती है। यदि सदस्य ने अपने हिस्से का मूल्य चुका दिया है तो समिति का लेनदार सदस्य से कुछ वसूल नही कर सकता है।

है। अतएव पूँजी की समस्या को हल करने के लिए ही कृषि सहकारी साख समितियाँ स्थापित हो गईं। आरम्भ में साख की समस्या को हल करने की ओर विशेष ध्यान होने के कारण सहकारिता विभाग ने कृषि-सहकारी-साख समितियों को अधिक सख्या में स्थापित किया। इसी का फल है कि कृषि सहकारी साख समितियाँ अन्य सब पकार की समितियों से संख्या में अधिक हैं।

कृषि साख समिति के उद्देश्य

कृषि साख समिति का मुख्य उद्देश्य अपने सदस्यों को खेती बारी तथा अन्य उपयोगी कार्यों के लिये ऋण देना है। सदस्यों को ऋण देने के लिये समिति गाँव वालों से डिपाजिट (जमा) लेती है अथवा सेन्ट्रल सहकारी बैङ्कों से ऋण लेती है। इसके अतिरिक्त कृषि साख सामति अपने सदस्यों के लिए बीज, खाद, हल तथा अन्य खेत के औजारों को खरीदती है, तथा वैज्ञानिक खेती किस प्रकार हो सकती है इसका प्रचार करती है।

समिति की सदस्यता

समिति के कम से कम दस सदस्य होते हैं। यदि सदस्यों की संख्या दस से कम हो जावे तो रजिस्ट्रार* उस समिति को तोड़ सकता है। समिति का सदस्य वही बनाया जाता है जिसका चरित्र अच्छा हो, जो ईमानदार हो, शराब न पीता हो और जुआ न खेलता हो। समिति के सदस्य बनाते समय उसके चालचलन की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। कृषि साख समिति के सदस्य वे ही हो सकते हैं जो एक ही गाँव अथवा पास के गाँव में रहते हों अथवा एक ही जाति या पेशे के हों।

अपरिमिति उत्तरदायित्व (Unlimited Liability)

कृषि साख समिति का उत्तरदायित्व अपरिमित होता है। अपरिमित उत्तरदायित्व का अर्थ यह है कि प्रत्येक सदस्य केवल अपना कर्जा चुकाने का जिम्मेदार नहीं होता परन्तु आवश्यकता पडने पर उसे समिति का सारा कर्ज चुकाना होता है। उदाहरण के लिये मान लिया जावे कि अनन्तपूर नामक गाँव की साख समिति दिवालिया हो जाती है, समिति के अधिकतर

---

*रजिस्ट्रार सहकारिता विभाग का प्रधान कर्मचारी है जो समिति की रजिस्ट्री, आय-व्यय निरीक्षण, देख-भाल करता है और समितियों को तोड़ भी सकता है।

सदस्य अपना कर्ज अदा नही कर सकते। केवल दो या तीन सदस्य ही ऐसे हैं जिनके पास संपत्ति है। ऐसी दशा मे समिति के लेनदार (Creditors) उनमें से किसी एक से अथवा सबों से समिति का पूरा कर्जा वसूल कर सकते हैं। उन धनी सदस्यों को अपनी सारी सपत्ति बेच कर भी समिति का कर्ज चुकाना होता है।

इसी कारण यह नितान्त आवश्यक है कि सदस्य एक दूसरे के चरित्र तथा माली हालत से भली भाँति परिचित हों। यदि सदस्य एक दूसरे को भली भाँति न जानते हों तो वे अपरिमित दायित्व स्वीकार न करेंगे। अपरिमित दायित्व के अनुसार प्रत्येक सदस्य समिति के ऋण को सामूहिक तथा व्यक्तिगत रूप से चुकाने के लिये बाध्य है।

जब कोई नवीन सदस्य समिति मे आना चाहता है तो वह सर्व सम्मति से ही लिया जा सकता है। एक गाँव मे अधिकतर एक ही समिति होती है किन्तु यदि गाँव बड़ा हो तो एक से अधिक समितियाँ भी हो सकती हैं।

समिति का प्रबन्ध

समिति के कार्य सचालन का पूर्ण अधिकार जनरल मीटिंग (साधारण सभा जिसमे समिति का प्रत्येक सदस्य होता है) को होता है। प्रत्येक सदस्य केवल एक वोट ही दे सकता है फिर उसके पास समिति के कितने भी हिस्से क्यो न हों। जनरल मीटिंग अपने में से एक पंचायत चुन देती है जो समिति का सारा कार्य करती है। पंचायत के पाँच या सात सदस्य होते हैं। जनरल मीटिंग सब महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर अपना स्पष्ट मत दे देती है और साधारण नीति निर्धारित कर देती है। पंचायत वस्तुतः सारा कार्य करती है। पंचायत का चुनाव करने के अतिरिक्त जनरल मीटिंग डिपाजिट पर कितना सूद दिया जावे, सदस्यों से ऋण पर कितना सूद लिया जावे, अधिक से अधिक प्रत्येक सदस्य को उसकी हैसियत के अनुसार कितना ऋण दिया जा सकता है, तथा समिति सैन्ट्रल बैङ्क से अधिक से अधिक कितना ऋण ले—इन बातों का निश्चय करती है।

समिति की पंचायत के कार्य

१—पंचायत सदस्यों को हिस्से देकर उन्हे समिति का सदस्य बनाती है।

२—गाँव से डिपाजिट आकर्षित करने का प्रयत्न करती है तथा सेंट्रल अथवा जिला बैंक से ऋण लेने का प्रबन्ध करती है। पञ्चायत को समिति के सदस्यो से तथा अन्य ग्रामवासियों से अधिक से अधिक मात्रा मे रुपया जमा करने को कहना चाहिये।

३—पञ्चायत यह भी निश्चय करती है कि किन सदस्यों को कितने समय के लिये कर्ज दिया जावे। पञ्चायत उस समय के अन्त में ऋण वसूल करती है।

४—पञ्चायत समिति के आय-व्यय का हिसाब रखती है।

५—पञ्चायत रजिस्ट्रार से समिति सम्बन्धी कार्यों में लिखा-पढी करती है।

६—सदस्यों के लिये सम्मिलित रूप से आवश्यक वस्तुएँ खरीदती है तथा उनकी पैदावार को बेचती है।

७—पञ्चायत सरपञ्च तथा मन्त्री का निर्वाचन करती है। सरपञ्च समिति के कार्य की देखभाल रखता है।

समिति की पूँजी (Capital)

कृषि साख समितियों की कार्यशील पूँजी (Working Capital) निम्नलिखित प्रकार से प्राप्त होती है :—

१—समिति प्रवेश फीस।

२—हिस्सों का मूल्य जो सदस्य देते हैं।

३—डिपाजिट जो सदस्यों तथा गैर सदस्यों से मिलती है।

४—सैन्ट्रल बैंक या जिला बैंकों से लिया हुआ ऋण।

५—रक्षित कोष (Reserve Fund)

प्रवेश फीस नाममात्र को एक रुपया ली जाती है जो कि शुरू के खर्च के काम आती है।

कुछ प्रदेशों में सदस्यों को हिस्से खरीदने पडते हैं और कुछ प्रदेशों में हिस्से नहीं होते। पजाब, उत्तर प्रदेश तथा मदरास मे समितियाँ हिस्से वाली होती हैं। अन्य प्रदेशों मे समितियाँ हिस्से तथा गैर हिस्से वाली दोनों ही कार की होती हैं। उत्तर प्रदेश में एक हिस्सा दो रुपये का होता है। कम

से कम एक हिस्सा प्रत्येक सदस्य को लेना होता है। हिस्से का मूल्य छमाही एक रुपये की किश्त मे दस वर्षों में चुका दिया जाता है।

साख समिति का कोई सदस्य एक निश्चित रकम से अधिक के हिस्से नहीं खरीद सकता। प्रत्येक सदस्य को केवल एक वोट देने का ही अधिकार होता है। समितियों को अधिकतर पूँजी के लिए सेन्ट्रल बैंकों पर ही निर्भर रहना पड़ता है क्योंकि अभी तक वे डिपाजिट अधिक आकर्षित नहीं कर सकी हैं। जितनी ही अधिक कोई समिति डिपाजिट आकर्षित करे उतनी ही उसकी सफलता समझी जानी चाहिये, क्योंकि डिपाजिट तभी अधिक जमा होगी जब कि जनता को समिति का भरोसा होगा और उसकी आर्थिक स्थिति में विश्वास होगा। जब तक कि साख समितियाँ अपनी आवश्यकता के अनुसार डिपाजिट आकर्षित करके पूँजी जमा नहीं कर सकती तब तक उनको निर्बल ही समझना चाहिये।

कृषि सहकारी साख समितियों में साधारणतः लाभ सदस्यों में बाँटा नहीं जाता। हाँ, जब रक्षित कोष (Reserve fund) एक निश्चित रकम से अधिक हो जावे तो प्रदेशीय सरकार से अनुमति लेकर तीन-चौथाई लाभ सदस्यों मे बाँटा जा सकता है। फिर भी २५ प्रतिशत रक्षित कोष में जमा करना ही पड़ता है।

कृषि सहकारी साख समितियों का प्रबन्ध-व्यय लगभग कुछ न होने के कारण तथा लाभ न बाँटने के कारण रक्षित कोष यथेष्ट जमा हो जाता है। प्रत्येक साख समिति के लिए रक्षित कोष अत्यन्त आवश्यक है। जब तक कि समिति के पास यथेष्ट कोष न हो जावे तब तक वह सफल नहीं बन सकती। रक्षित कोष किसी अवस्था में भी सदस्यों को बाँटा नहीं जा सकता। इसका उपयोग समिति के कार्य में हानि हो जाने पर उसे पूरा करने में होता है। यदि समिति भङ्ग हो जावे अथवा तोड़ दी जाये तो रक्षित कोष किसी अन्य सहकारी समिति को दे दिया जावेगा या रजिस्ट्रार की अनुमति से किसी सार्वजनिक हित के कार्य में व्यय कर दिया जावेगा।

साधनों से मिलने वाले धन से चलता है। समिति दूसरों पर निर्भर रहती है। यह कमजोरी शीघ्र से शीघ्र दूर होनी चाहिये। द्वितीय, यदि लाभ बँटने लगेगा तो आरम्भ से ही सदस्य लाभ के फेर में पड़ जायँगे। इसी प्रकार रक्षित कोष जारी करने का अभिप्राय उससे सहकारी-आन्दोलन की वृद्धि करना था। इसी कारण रक्षित कोष अविभाजित रहता है।

समिति के कार्यकर्त्ताओं का अवैतनिक होना

समिति के पञ्चों को कोई वेतन नहीं दिया जाता। यदि सदस्यों में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं होता जो कि समिति का हिसाब इत्यादि रख सके, तो गाँव के किसी शिक्षित व्यक्ति को थोड़ा सा वेतन देकर वैतनिक मन्त्री रख लिया जाता है, किन्तु वैतनिक मन्त्री को समिति की मीटिंग में कोई सम्मति देने का अधिकार नहीं होता है। सदस्य मन्त्री को कोई वेतन नहीं मिलता। गाँव के पटवारी को कभी मन्त्री न बनाना चाहिये क्योंकि उसका गाँव में बहुत प्रभाव होता है और वह पञ्चों पर दबाव डाल सकता है।

समिति की साख निर्धारित करना

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि जनरल मीटिंग समिति की अधिकतम साख निर्धारित करती है, उससे अधिक पञ्चायत ऋण नहीं ले सकती। समिति की साख निर्धारित करने के लिये सब सदस्यों की हैसियत का लेखा प्रतिवर्ष तैयार किया जाता है, सब सदस्यों की हैसियत के एक चौथाई से आधी तक समिति की साख मानी जाती है। किसी भी सदस्य की सम्पत्ति का पचास प्रतिशत से अधिक उसको उधार नहीं दिया जाता।

समिति द्वारा ऋण देने का कार्य

कृषि साख सहकारी समिति केवल सदस्यों को ही ऋण देती है। जो भी सदस्य ऋण लेना चाहता है वह एक प्रार्थना-पत्र पञ्चायत को देता है। दरख्वास्त में उसे यह भी बतलाना पड़ता है कि वह किस कार्य के लिए ऋण लेना चाहता है। ऋण लेने वाले सदस्य को दो व्यक्तियों की जमानत देनी होती है। ऋण देते समय कर्ज लेने का उद्देश्य तथा सदस्य को चुकाने की शक्ति का अनुमान करके ही समिति कर्जा देना निश्चित करती है।

सहकारिता आन्दोलन का यह सिद्धान्त है कि ऋण अनुत्पादक कार्यों लिए न दिया जावे, किन्तु भारत में कृषि सहकारी साख समितियाँ

विवाह, श्राद्ध, तथा अन्य सामाजिक कार्यों के लिये भी रुपया उधार दे देती हैं। पञ्चायत का मुख्य कर्तव्य है कि वह इस बात की जाँच करे कि सदस्य ने जिस कार्य के लिए ऋण लिया है उसी पर व्यय कर रहा है अथवा नहीं। यदि सदस्य किसी दूसरे काम में रुपया लगावे तो पञ्चायत को रुपया वापस माँग लेना चाहिये। यदि पञ्चायत ऐसी रोक न लगावे तो गरीब ग्रामीण कोई भी कारण बता कर ऋण लेंगे और उसे अपनी वर्तमान अनुत्पादक आवश्यकता पर व्यय कर देंगे।

पचायत ऋण देते समय ही सदस्य की स्थिति को दृष्टि में रखते हुए किश्त बाँध देती है क्योंकि सदस्यों को किश्तों द्वारा ऋण चुकाने मे सुविधा होती है। पञ्चायत को किश्ते समय पर वसूल करनी चाहिए, किन्तु फसल नष्ट हो जाने पर अथवा अन्य अनिवार्य कारण उपस्थित होने पर किश्त की मियाद बढा दी जाती है।

समितियाँ अधिकतर नीचे लिखे हुए कार्यों के लिए ऋण देती हैं :—

१—खेती-बारी के लिये, मालगुजारी तथा लगान देने के लिये।

२—भूमि का सुधार करने के लिये।

३—पुराने ऋण को चुकाने के लिये।

४—गृहस्थी के कार्यों के लिये।

५—व्यापार के लिये।

६—भूमि खरीदने के लिये।

अब क्रमशः कृषि साख सहकारी समितियाँ पुराने ऋण को चुकाने के लिए तथा भूमि खरीदने के लिए कम ऋण देने लगी हैं क्योंकि समितियों ने अब यह नीति बना ली है कि वे अधिक समय के लिए कर्ज न देंगी।

समितियों का आय-व्यय निरीक्षण

सकते। आडिटर हिसाब की जाँच तो करता ही है परन्तु इस बात की भी जाँच करता है कि समिति नियमानुसार कार्य करती है या नहीं, परन्तु भारत मे आय-व्यय निरीक्षण का कार्य भली भाँति नहीं होता।

आय-व्यय निरीक्षण के अतिरिक्त साख समितियों की देखभाल तथा उनका नियंत्रण रजिस्ट्रार तथा उनके सहायक कर्मचारी और प्रदेशीय सहकारी यूनियन दोनों ही करते हैं।

कृषि सहकारी साख समितियों को मिली हुई सुविधाये

यदि समिति ने किसी सदस्य को बीज या खाद उधार दिया है अथवा उसको मोल लेने के लिये रुपया उधार दिया है तो समिति को उसके द्वारा उत्पन्न की हुई फसल से अपना रुपया वसूल करने का प्रथम अधिकार होगा। सदस्य का कोई दूसरा लेनदार उस फसल को कुर्क नहीं करवा सकता। इसी प्रकार यदि समिति ने सदस्यों को बैल, खेती तथा अन्य धंधों में काम आने वाले यन्त्र, तथा धन्धों के लिए कच्चा माल उधार दिया है तो उन वस्तुओं पर, तथा उस कच्चे माल के तैयार किए हुए पक्के माल पर, समिति का प्रथम अधिकार होगा।

सहकारी समिति के लाभ पर इनकमटैक्स (आयकर) नही लिया जाता और न सदस्यों के लाभ पर टैक्स लिया जाता है। सहकारी समितियो को एक स्थान से दूसरे स्थान पर मनीआर्डर द्वारा रुपया भेजने पर पोस्ट आफिस एक रेट पर उनका रुपया भेज देता है।

समिति के सदस्य का हिस्सा उसका कोई लेनदार (Creditor) कुर्क नहीं करवा सकता। किसी भी सदस्य के जमा किये हुए रुपये तथा लाभ के हिस्से को समिति ऋण के बदले में ले सकती है, कोई दूसरा लेनदार उसे कुर्क नहीं करवा सकता।

रजिस्ट्रार को यदि विश्वास हो जावे कि समिति की दशा अच्छी नहीं है तो वह उसे भग कर सकता है।

क्या कृषि साख समितियाँ सफल हो रही है ?

साख समितियाँ सफल हो रही हैं अथवा नहीं, इसमें कुछ मतभेद हो सकता है किन्तु इसमे तनिक भी सन्देह नहीं कि वे अभी तक बहुत निर्बल ...र वे वास्तव मे सहकारी नही हैं। एक बार बैंकिग के एक प्रसिद्ध

जानकार ने कहा था—"इन समितियों में सहकारिता के सिद्धान्तों की नितांत अवहेलना की जाती है। ऋण ठीक समय पर कभी नहीं चुकाये जाते, आय व्यय-निरीक्षण ठीक नहीं होता तथा इन समितियों की देखभाल भी ठीक तरह से नहीं होती।" इसमे कोई सन्देह नहीं कि ऊपर लिखे हुये दोष इन समितियों में अवश्य हैं। कुछ विद्वानो का तो यहाँ तक कहना है कि अधिकतर सहकारी समितियों की आर्थिक दशा अच्छी नहीं है, किन्तु सहकारिता आन्दोलन में लगे हुये कर्मचारी इस बात को मानने के लिये तैयार नही हैं। शाही कृषि कमीशन की सम्मति है कि आन्दोलन की आर्थिक स्थिति अच्छी है। हाँ, समितियों का कार्य दोषपूर्ण है।

सहकारी कृषि साख समितियों की सफलता के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि सदस्य सहकारिता के सिद्धान्तों को समझे। भारत में गाँव के सदस्य यह समझते हैं कि सहकारी साख समितियाँ सरकार द्वारा खोले हुए बैङ्क हैं जो उन लोगों को ऋण देते हैं। वे कभी स्वप्न मे भी नहीं सोचते कि यह हमारी समिति है और हम सम्मिलित साख के द्वारा उचित सूद पर पूँजी पा सकते हैं। जब तक सदस्यों मे स्वावलम्बन का यह भाव जाग्रत नहीं होता तब तक सहकारिता आन्दोलन सफल नही हो सकता।

सहकारी साख समितियों को जो पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हो सकी उसके तीन मुख्य कारण हैं—गाँव वालों का अशिक्षित होना, उनका एड़ी से चोटी तक महाजन का ऋणी तथा अत्यन्त निर्धन होना और योग्य कार्यकर्ताओं का अभाव। जब तक सेवा भाव के सच्चे और ईमानदार कार्यकर्ता इस आन्दोलन के लिये नही मिलते तब तक यह पूर्णतः सफल नहीं हो सकता।

लाभ—कृषि साख समितियाँ बहुत सफल नहीं हुई हैं इससे यह न समझ लेना चाहिये कि उनसे ग्रामीण जनता को कोई लाभ ही नहीं हुआ। कृषि साख समितियों के द्वारा गाँवों को बहुत कुछ आर्थिक लाभ हो रहा है। समितियों ने बहुत सी कार्यशील पूँजी (Working Capital) इकट्ठी कर ली है जो किसानों को उचित सूद पर दी जाती है। इन समितियों की पूँजी कुल ३० करोड़ रुपये के लगभग है। जहाँ साख समितियाँ खुल गई हैं उन गाँवों में प्रतिद्वन्द्विता के कारण महाजन ने भी सूद की दर घटा दी है।

साधारण किसानों मे सहकारिता का ज्ञान बढ रहा है। सदस्यो में किफायत-शारी उत्पन्न हो रही है और किसान स्वावलम्बी बन रहे हैं। अशिक्षित किसान जो कि साख तथा व्यापार के विषय में नितान्त अनभिज्ञ थे उनमें व्यापारिक ज्ञान बढ रहा है। बहुत से उदाहरण ऐसे हैं जहाँ कि वृद्ध पञ्चो ने इसलिये पढना-लिखना सीखा कि वे समिति का कार्य भली भाँति कर सके, कुछ शराब पीने वालों ने केवल इसलिये शराब छोड़ दी कि जिसमें वे समिति मे लिये जा सकें। सहकारी साख समिति के कारण गॉव में भ्रातृभाव फैलता है। यदि प्रत्येक गॉव मे एक सहकारी साख समिति की स्थापना हो जावे और सफलतापूर्वक कार्य करने लगे तो ग्रामीण जनता का उद्धार हो सकता है।

भारत मे कृषि साख सहकारी समितियों की सख्या ८५ हजार से अधिक है और उनके सदस्यों की सख्या ३५ लाख के लगभग है। इन समितियों की कार्यशील पूँजी (जिसमे हिस्सापूँजी, रक्षित कोष, डिपाजिट और सेन्ट्रल सहकारी बैंको से लिया हुआ कर्ज सम्मिलित है) २४ करोड रुपये के लगभग है। इन अकों को देखकर साख सहकारी समितियों के विषय मे निराश होने का कोई कारण नहीं है।

वहु-उद्देशीय सहकारी समितियाँ
(Multi purpose Co-operative Societies)

कुछ समय से भारत मे इस बात पर बहुत जोर दिया जाने लगा है कि गॉव मे एक साख सहकारी समिति के स्थान पर एक बहु-उद्देशीय-सहकारी समिति हो जो गॉव की सर्वाङ्गीण उन्नति का प्रयत्न करे और केवल कर्जा देने का ही कार्य न करे। विद्वानों का कहना है कि केवल किसान को उचित सूद पर ऋण मिल जाने से ही उसकी आर्थिक स्थिति मे सुधार नहीं हो जावेगा। इसके लिये बहु-उद्देश्य-समितियों की स्थापना की आवश्यकता होगी।

बहु-उद्देश्य-समितियॉ खेती के धधे के लिये साख देंगी, किसानों की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए, उनकी पैदावार को बेचने, उनके लिये बढिया हल, बैल, बीज और खाद खरीदने, किसानों की दैनिक आवश्यकता की चीजों को उन्हे ठीक मूल्य पर दिलाने के लिये उनसे आर्डर लेकर उन्हे

वे वस्तुएँ ठीक मूल्य पर देंगी। मुकदमेबाजी को कम करने के लिये पंचायत स्थापित करेंगी। भूमि की चकबंदी करके, अच्छे बीज, औजारों और खाद का प्रचार करके खेती की पैदावार को बढ़ाने, खेती के अतिरिक्त बेकार समय मे गौण तथा सहायक धंधों के द्वारा उनकी आय को बढ़ाने का प्रयत्न करेंगी और जीवन सुधार को हाथ मे लेकर स्वास्थ्य, औषधि वितरण, उपचार, सामाजिक कृत्यों में अधिक धन व्यय न करने तथा गॉव मे सफाई रखने का प्रबन्ध करेंगी। कहने का तात्पर्य यह है कि बहु-उद्देश्य-समिति गॉव की सभी मुख्य समस्याओं को हल करके गाँव वालों को सुखी और समृद्धिशाली बनाने का प्रयत्न करेगी। केवल साख ही नही देंगी वरन् गॉव की आर्थिक दशा सुधारने और सामाजिक उन्नति करने का प्रयत्न करेंगी। संक्षेप मे हम कह सकते हैं कि गॉव की सभी समस्याओं के विरुद्ध एक साथ युद्ध छेड़ने से ही गॉव की सर्वाङ्गीण उन्नति हो सकती है।

सहकारिता आन्दोलन मे कार्य करने वाले सभी कार्यकर्ता इस बात पर एकमत हैं कि सहकारिता आन्दोलन के अधिक सफल न होने का एक यह भी कारण है कि उसने किसानों को कर्ज देने पर ही अधिक ध्यान दिया और किसान की आर्थिक स्थिति को अच्छा बनाने के लिसे अन्य उपाय नहीं किये। अब भारत मे सभी प्रदेशों मे बहु-उद्देश्य-सहकारी समितियों को स्थापना की जा रही है।

उत्तर प्रदेश मे बहु-उद्देश्य-सहकारी समितियाँ

उत्तर प्रदेश मे बहु-उद्देश्य-सहकारी समितियों के द्वारा गॉवों की उन्नति करने का एक व्यापक रूप से प्रयोग चल रहा है।

उत्तर प्रदेश मे एक विकास योजना (Development Plan) बनाई गई है जिसका आधार बहु-उद्देश्य-सहकारी समिति है। विकास योजना इस प्रकार है :—

प्रत्येक जिले मे एक जिला विकास समिति स्थापित की गई जो कि जिले मे विकास योजना को कार्यान्वित करेगी। इस समिति मे जिले से सभी प्रमुख सार्वजनिक कार्यकर्ता तथा उन विभागों के कर्मचारी जिनका विकास कार्य से सम्बन्ध है रक्खे गए हैं। ऊपर एक प्रदेशीय विकास बोर्ड है जो प्रदेश भर में इस कार्य की देखभाल करता है।

इस योजना के अन्तर्गत प्रत्येक गाँव में एक बहु-उद्देश्य सहकारी-समिति स्थापित की गई है। जब गाँव के ७० या ८० प्रतिशत परिवार समिति के सदस्य बन जाते हैं तभी समिति स्थापित की जाती है।

बहु-उद्देश्य-सहकारी समिति गाँव में खेती की उन्नति, दूध, घी के धंधे की उन्नति, पशुपालन में सुधार, सूत कातने तथा कपड़ा के बिनने के धंधे तथा अन्य सहायक तथा गृह-उद्योग धंधों का संगठन, गाँव की सफाई, स्वास्थ्य-रक्षा इत्यादि का कार्य करती है। समिति राशन से मिलने वाले अथवा कंट्रोल के पदार्थों जैसे खाद्यान्न, कपड़ा, शक्कर, सीमेंट, लोहा इत्यादि वस्तुओं को अपने सदस्यों को देती है। सरकार इन पदार्थों को इन समितियों को दे देती है। पन्द्रह या बीस गाँवों के बीच में कृषि विभाग ने एक बीज गोदाम स्थापित कर दिया है। यह बीज गोदाम उस क्षेत्र की बहु-उद्देश्य-सहकारी समितियों को उत्तम बीज, हल, खाद इत्यादि देता है तथा खेती सम्बन्धी सलाह भी देता है। आगे चलकर योजना यह है कि उस क्षेत्र की १५ या २० समितियाँ मिल कर एक विकास यूनियन बना लेंगी और यह यूनियन इस बीज भंडार को ले लेगी। यूनियन केवल इस भंडार में बीज, औजार खाद्य ही नहीं रक्खेगी वरन् चर्खा, कपड़ा, शक्कर, सीमेंट, तेल इत्यादि आवश्यक पदार्थों को भी रक्खेगी जो कि समितियों के सदस्यों को बेचे जायेंगे। एक प्रकार से वह उपभोक्ता स्टोर का भी काम करेगी और सदस्यों की खेती की पैदावार को बेचने का काम करेगी।

बहु-उद्देश्य-सहकारी समिति में गाँव के सभी परिवारों को सदस्य बनाने का प्रयत्न किया जावेगा और ७० या ८० प्रतिशत परिवारों के सदस्य बिना बने समिति स्थापित नहीं की जावेगी। प्रत्येक परिवार का मुखिया समिति का सदस्य होगा।

उत्तर प्रदेश में इस समय तक बीस हजार से अधिक बहु-उद्देश्य-सहकारी समितियाँ स्थापित हो चुकी हैं।

उत्तर प्रदेश में यह आन्दोलन अभी प्रारम्भिक अवस्था में है। इस कारण बहु-उद्देश्य-सहकारी समितियाँ कहाँ तक सफल हुई हैं यह कहना कठिन है।

बहु-उद्देश्य-सहकारी समितियाँ अन्य सभी प्रदेशों में स्थापित हो चुकी हैं। पश्चिमी बंगाल, बिहार, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, अजमेर मेरवाड़ा, बम्बई तथा मद्रास में भी स्थापित हो चुकी हैं।

अभ्यास के प्रश्न

१—सहकारिता का क्या अर्थ है ?

२—उदाहरण देकर बतलाओ कि सहकारिता किसे कहते हैं ? मान लो कि एक गाँव में तीस किसान हर रोज अपना दूध बेचने पास के शहर में आते हैं। यदि वे आपस में समझौता कर ले कि पारी-पारी से एक किसान सबों का दूध गाँव से शहर ले जाकर बेच आया करेगा तो क्या इसको सहकारिता कहेंगे ?

३—कृषि साख समिति और पिपुल्स बैङ्क (नगर साख समिति) का मुख्य कार्य क्या है और उसमें क्या अन्तर है ?

४—अपरिमित और परिमित दायित्व की व्याख्या कीजिए।

५—कृषि साख समिति का सदस्य कौन हो सकता है ? क्या भिन्न-भिन्न गाँवों में रहने वाले लोग एक कृषि साख समिति के सदस्य हो सकते हैं ?

६—साख समिति का प्रबन्ध किस प्रकार होता है ? जनरल मीटिंग और पचायत के कार्य बतलाइये।

७—कृषि साख समिति का लाभ सदस्यों मे नही बाँटने से और समिति के टूट जाने पर रक्षित कोष को भी सदस्यों में न बाँटने से क्या लाभ हैं ?

८—साख समिति मे यह नियम क्यों बनाया गया है कि सदस्य जिस काम के लिये कर्ज ले उसी पर खर्च करे ?

९—कानून के अनुसार कृषि साख समितियों को कौन सी सुविधाये प्राप्त हैं ?

१०—क्या कृषि साख समितियाँ सफल कही जा सकती हैं ?

११—सहकारी साख समिति क्या है ? यदि आपसे एक ऐसी समिति स्थापित करने को कहा जाय तो आप कैसे आरम्भ करियेगा ? (१९४३)।

१२—सहकारिता के मुख्य सिद्धान्त क्या हैं ? इससे देश के ग्रामीणों को किस प्रकार लाभ पहुँचा है ? (१९४५)।

१३—प्राइमरी कृषि साख समिति की व्यवस्था तथा कार्य प्रणाली का वर्णन कीजिये। इन समितियों को किन साधनों से पूँजी मिलती है ? (१९४५)।

१४—किसानों को सहकारी समितियों से जो लाभ होते हैं उनकी संक्षेप में विवेचना कीजिये (१९४६)।

१५—प्राइमरी कृषि साख समिति की व्यवस्था तथा कार्य प्रणाली का वर्णन कोजिये। किसानों को इनसे जो लाभ होते हैं उनको विवेचना कीजिये। (१६४७)

१६—साख समिति और बहु उद्देश्य-समिति मे से आप किसे पसन्द करते हैं? और क्यों? आपके प्रदेश की सरकार इस ओर क्या कर रही है?

तीसवाँ अध्याय

गैर साख कृषि सहकारी समितियाँ

(Agricultural Non-Credit Soceities)

भारत मे जब सहकारिता आन्दोलन का आरम्भ किया गया था उस समय साख की समस्या अत्यन्त महत्वपूर्ण समझी गई और वास्तव में बात भी ऐसी ही थी। इसी कारण सन् १६०४ के कानून के अनुसार केवल साख समितियो के ही स्थापित करने का सुविधा प्रदान की गई। परन्तु आगे चल कर कार्यकर्ताओं को ज्ञात हुआ कि गाँव वालों का उद्धार केवल साख का प्रबन्ध कर देने से ही नही हो जावेगा। अपनी फसल बेचने मे, खेती के लिए आवश्यक चीजों को खरीदने मे, व्यापारी उनको लूटते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य कृषि-सम्बन्धी कार्यों को भी सहकारी समितियों के द्वारा सुविधापूर्वक किया जा सकता है। यही कारण है कि पिछले वर्षों में गैर साख कृषि सहकारी समितियों की अधिकाधिक स्थापना का गई है। फिर भी इन समितियों की सख्या साख समितियों को तुलना मे नहीं के बराबर है।

साख (Credit) केवल किसान को एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है, अतएव साख का प्रबन्ध हो जाने मे बहुत सी आवश्यकताओं मे से एक पूरी हो जाती है, किन्तु किसान की और भी आवश्यकताएँ हैं, जिनका पूरा होना आवश्यक है। सिंचाई, खेतों की चकबन्दी, स्वास्थ्य और सफाई की उन्नति, पशुओं के जीवन का बीमा, दूध का धन्धा, कृषि की आवश्यक वस्तुओं को मोल लेना तथा खेती की पैदावार को बेचना—ये कुछ ऐसी समस्याएँ हैं जिनको सहकारी समितियों के द्वारा भली प्रकार हल किया जा सकता

है। कुछ वर्षों से कृषि विभाग तथा सहकारिता आन्दोलन में कार्य करने वालों ने इन समितियों का महत्व समझा है और अब उनकी संख्या बढ़ रही है।

अन्य देशों मे प्रत्येक गाँव में सब कार्यों के लिए केवल एक सहकारी समिति के सिद्धात को अधिकाधिक अपनाया जा रहा है। किसान की जितनी भी आवश्यकताएँ हैं उन सबको केवल एक सहकारी समिति ही पूरा करती है। उदाहरण के लिए एक समिति ही साख, क्रय-विक्रय, तथा स्वास्थ्य और सफाई का कार्य करती है, परन्तु भारत में भिन्न-भिन्न कार्यों के लिये भिन्न-भिन्न समितियाँ एक ही गाँव मे स्थापित करने की पद्धति चल पड़ी है। सिद्धात से एक समिति जो किसान की आवश्यकताओं को पूरा करती हो वह अधिक उपयोगी तथा साहूकार की शक्ति को नष्ट करने में अधिक सफल हो सकती है।

भारत में लगभग पाँच हजार गैर-साख कृषि सहकारी समितियाँ भिन्न-भिन्न प्रदेशों में कार्य कर रही हैं। परन्तु अभी यह आन्दोलन निर्बल है।

सहकारी क्रय-विक्रय समितियाँ
(Co-operative Sale and Purchase Societies)

किसानों के लिये साख के बाद, खेती की पैदावार को अच्छे मूल्य पर बेचना तथा आवश्यक वस्तुओं को उचित मूल्य पर खरीदना महत्वपूर्ण कार्य हैं। भारत में किसान को बीज, यन्त्र, खाद, बैल, तथा दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुएँ गाँव के बनिये अथवा दूकानदार से खरीदनी पड़ती है। अधिकाश में वह ऊपर लिखी हुई वस्तुओं को उधार (Credit) खरीदता है और यदि वह साख समिति से ऋण लेकर भी इन वस्तुओं को खरीदे तो भी उसे उन वस्तुओं के लिए अधिक मूल्य देना पड़ता है। किसान बेचने की कला को भी नही जानता, इसलिए वहाँ भी वह गाँव के बनिये, तथा मंडियों के दलालों और व्यापारियों द्वारा लूटा जाता है, और उसको अपनी पैदावार का मूल्य कम मिलता है।

यदि हम चाहते हैं कि किसान की आर्थिक दशा सुधरे तो केवल साख का प्रबन्ध कर देने से काम नही चलेगा। उसके लिए क्रय-विक्रय समितियों

की आवश्यकता होगी। नहीं तो जहाँ हम साख समितियों के द्वारा किसान को महाजन के हाथों से बचाते हैं वहाँ वही महाजन किसान को आवश्यक वस्तुएँ बेचने मे और उसकी पैदावार खरीदने में लूटता रहेगा। इस कारण क्रय-विक्रय समितियाँ स्थापित किये बिना किसान की स्थिति सुधर ही नहीं सकती है।

क्रय समितियाँ (Purchase Societies)

किसान के लिये आवश्यक वस्तुओं को खरीदने का कार्य तीन प्रकार की समितियाँ करती हैं। (१) सहकारी साख समितियाँ (२) सहकारी क्रय समितियाँ (३) सहकारी क्रय-विक्रय समितियाँ।

सहकारी साख समितियों के द्वारा यह कार्य अत्यन्त सफलतापूर्वक किया जा सकता है। समिति का जब कोई सदस्य किसी वस्तु को खरीदने के लिए ऋण ले तब उसे रुपया न देकर उसकी वह वस्तु खरीद कर दी जावे। कृषि साख सहकारी समितियाँ बीज, खाद और हल इत्यादि इकट्ठे खरीद कर सदस्यों को उचित मूल्य पर देती हैं।

जहाँ शुद्ध क्रय समितियाँ स्थापित की गई हैं वहाँ यह तरीका है कि समिति का मन्त्री सदस्यों से आर्डर इकट्ठे कर लेता है। सब आर्डर इकट्ठे कर लेने पर चीज एक साथ मँगवा कर सदस्यों मे बाँट दी जाती है। केवल नाम मात्र का कमीशन ले लिया जाता है। इससे यह लाभ होता है कि समिति थोक मूल्य पर वस्तुएँ खरीदती है और सदस्यों को वे वस्तुएँ उचित मूल्य पर मिल जाती हैं। क्रय सहकारी समिति की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि मन्त्री अथवा प्रबन्धकारिणी समिति के सदस्य बाजार का अध्ययन करते रहे। बाजार भाव के उतार-चढाव का अध्ययन करने से यह लाभ होगा कि समिति मन्दी के समय उन वस्तुओं को खरीद कर रख लेगी जिनकी सदस्यों को बहुत आवश्यकता पडती है। समिति के कार्यकर्ताओं को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि आरम्भ से केवल उन्हीं वस्तुओं को खरीदा जावे जिनकी सदस्यों में अधिक माँग हो।

क्रय समिति परिमित दायित्व* (Limited Liability) वाली

---

*परिमित दायित्वः—समिति के ऋण को चुकाने की सदस्यों की जिम्मेदारी हिस्से के मूल्य तक परिमित होती है।

होती हैं। प्रत्येक सदस्य को कम से कम एक हिस्सा खरीदना पड़ता है। सब सदस्यों की एक साधारण सभा होती है जो फिर पंचायत अथवा प्रबन्धकारिणी समिति का चुनाव करती है। यह पचायत ही समिति के कार्य का संचालन करती है। यदि समिति बहुत बड़ी होती है तो एक वैतनिक मैनेजर रखा जाता है, नहीं तो अवैतनिक मन्त्री ही कार्य चलाता है।

सदस्यो के आर्डर आ जाने पर मैनेजर उन आर्डरों को पञ्चायत के सामने रख देता है। पञ्चायत के आदेशानुसार मैनेजर पञ्चायत के एक सदस्य की सहायता से वस्तुएँ खरीदता है। समिति उन वस्तुओं को सदस्यों के हाथ बेच देती है। लाभ सदस्यों में खरीद के हिसाब से बाँट दिया जाता है।

शुद्ध क्रय समितियाँ भारत में बहुत कम पाई जाती हैं। बम्बई प्रदेश में कुछ क्रय समितियाँ खाद, बीज तथा खेती के यन्त्रों के खरीदने के लिये स्थापित की गई थीं किन्तु उनकी दशा अच्छी नहीं हैं, वे सफल नहीं हुई। इन समितियों की असफलता का मुख्य कारण दोषपूर्ण प्रबन्ध और सदस्यों की उदासीनता है। सदस्यों के उदासीन रहने का कारण यह भी है कि शुद्ध क्रय समितियाँ वर्ष में कुछ ही समय कार्य करती हैं! खेती के लिये आवश्यक वस्तुएँ खरीद लेने के उपरान्त उनका कोई कार्य नहीं रह जाता जो समितियाँ क्रय-विक्रय दोनों ही कार्य कर रही हैं वे कुछ सफल अवश्य हुई हैं।

विक्रय समितियाँ (Marketing Societies)

यह तो पूर्व ही कहा जा चुका है कि अधिकतर किसान ऋणी हैं, इस कारण वे अपनी फसल बेचने मे स्वतंत्र नही होते। जो गाँव का साहूकार लेन-देन करता है वही फसल को खरीदता है। एक तो फसल काटने के कुछ दिनों बाद तक बाजार भाव वैसे ही गिरा रहता है, दूसरे साहूकार गाँव में अकेला खरीदार होता है; इसलिये यह बाजार भाव से भी कम कीमत पर फसल खरीदता है। कपास, तम्बाकू, जूट तथा अन्य कच्चा औद्योगिक माल खरीदने के लिये व्यापारी (जो कि बड़े व्यापारियों के एजेन्ट होते हैं) गाँव में जाकर फसल खरीदते हैं। ये व्यापारी विदेशों के भाव को भी भली-भाँति

जानते हैं। वे लोग किसानों की फसल को सस्ते दामों पर खरीदते हैं। जिन बडे किसानों के पास पैदावार अधिक होती है वे पास ही मंडियों में अपनी पैदावार ले जाकर बेचते हैं। किन्तु इन मडियों मे भी किसान को लूटा जाता है। नियमानुसार चुगी तो उसे देनी पड़ती है। मडी में गाडी खडी करने का किराया तथा दलाली भी वही देता है। दलाल अधिकतर व्यापारी से मिला रहता है, इस कारण किसान को अपनी पैदावार का उचित मूल्य नही मिल पाता। कही-कही किसान को तौलाई भी देनी होती है और तौलाई मे अधिकतर उसे धोखा दिया जाता है। मूल्य चुकाने के समय व्यापारी धर्म-शाला, गौशाला, प्याऊ, मन्दिर पाठशाला तथा अन्य ऐसे ही धार्मिक कार्यों के लिये प्रति रुपया कुछ पैसे काट लेता है। शाही कृषि कमीशन का मत है कि इस प्रकार किसान की पैदावार के मूल्य का १० या १२ प्रतिशत काट लिया जाता है। जब तक किसान को इस भयंकर लूट से नहीं बचाया जावेगा तब तक उसकी निर्धनता दूर नहीं हो सकती।

इसी उद्देश्य से भिन्न-भिन्न प्रदेशों में क्रय-विक्रय समितियाँ स्थापित की गई हैं। परन्तु अभी तक इन समितियों की सख्या बहुत कम है और न यही कहा जा सकता है कि वे बहुत सफल हुई हैं। इनमे बम्बई प्रदेश की कपास और गुड, बङ्गाल की जूट और धान तथा बिहार और उत्तर प्रदेश की गन्ना बेचने वाली समितियाँ अधिक सफल हुई हैं। बम्बई के गुजरात और कर्नाटक प्रदेशों में कपास, गुड, धान, तम्बाकू, मिर्च तथा प्याज बेचने के लिये सहकारी विक्रय समितियाँ स्थापित की गई हैं, किन्तु इनमें कपास बेचने वाली समितियाँ ही सख्या मे अधिक तथा महत्वपूर्ण है। एक समिति चार या पाँच गाँव की पैदावार को बेचती है। समिति के सदस्य उन्हे एक सा अच्छा बीज देते हैं। फसल काटने पर सदस्य अपनी कपास समिति को दे देते हैं। समिति उन्हे काम चलाने के लिए कुछ रुपया पेशगी दे देती है, और फसल को इकट्ठी करके अपने गोदाम मे रखती है। समिति के कार्यकर्ता बाजार का अध्ययन करते रहते हैं और बम्बई तथा अन्य बाजारों में कपास को ऊँचे दामों पर बेच देते हैं। किसान फसल काटते ही उसे बेच देता है क्योंकि उसे रुपये की तुरन्त आवश्यकता होती है, परन्तु समिति क सकती है, इस कारण उसे पैदावार का अच्छा मूल्य मिलता है। गुजरात

की समितियों ने एक संघ कायम किया है जो इन समितियों को देख-भाल करता है।

बंगाल में जूट समितियों ने अपनी एक होल-सेल सोसायटी बनाई है। यह होल-सेल सोसायटी एक विशेषज्ञ नौकर रखती है जो कि बाजार भाव का अध्ययन करता है और होल-सेल सोसायटी से सम्बन्धित समितियों को सलाह देता है।

उत्तर प्रदेश और बिहार में गन्ना बेचने वाली समितियाँ अधिक संख्या मे स्थापित हो गई हैं। इन समितियों का मुख्य कार्य यह है कि कृषि विभाग के परामर्श के अनुसार गन्ने की खेती की उन्नति करना तथा मिलो से समझौता करके उनको सदस्यों की पैदावार बेच देना। गन्ने का मूल्य तो सरकार निश्चय करती है, इस कारण कीमत के तय करने मे कोई अड़चन नही होती। अभी थोड़ा समय हुआ उत्तर प्रदेश में विशेष कर इटावा तथा पश्चिमी जिलों में बहुत बड़ी सख्या में घी समितियाँ स्थापित हो गई हैं। ये समितियाँ सदस्यों का घी इकट्ठा करके बेचती हैं।

उत्तर प्रदेश में लगभग चार हजार गन्ना बेचने वालो सहकारी समितियाँ हैं जो अपने सदस्यों का गन्ना मिलों को बेचती हैं।

गन्ना समितियों के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश में लगभग एक हजार घी समितियाँ हैं जो आगरा, एटा, इटावा, मेरठ, मैनपुरी, बुलन्दशहर, बादा और जालौन जिलों में फैली हुई हैं। ये समितियाँ अपने सदस्यों का घी बेचती हैं। इन समितियों के दस हजार से ऊपर सदस्य हैं और प्रतिवर्ष लाखों रुपये का घी बेचती हैं।

खेती की पैदावार विशेष कर अनाज को बेचने के लिए प्रदेश मे दो सौ के लगभग सहकारी विक्रय यूनियन स्थापित की गई हैं जो सदस्यों की पैदावार को मडी में बेचती हैं। ये विक्रय यूनियन मंडियों में स्थापित हैं।

अनाज की बिक्री के अतिरिक्त प्रदेश में आलू, फल और अडों की बिक्री के लिये भी कुछ सहकारी विक्रय समितियाँ स्थापित हुई हैं।

देहरादून में बासमती चावल की भी एक विक्रय समिति स्थापित हो गई है जो १५ गाँवों में उत्पन्न होने वाले बासमती चावल को बेचती हैं।

इनके अतिरिक्त पू० पञ्जाब में कुछ सहकारी कमीशन शाप (दूकान) स्थापित

की गई हैं जो सदस्यों और गैर-सदस्यों की पैदावार को वेचती हैं। इनके अतिरिक्त पू० पञ्जाब में क्रय-विक्रय समितियाँ भी स्थापित की गई हैं जो अधिक सफल नहीं हुई। मदरास, मध्यप्रदेश, बिहार, उड़ीसा तथा उत्तर-प्रदेश में भी क्रय-विक्रय समितियाँ हैं किन्तु ये अधिक सफल नहीं हैं।

विक्रय समितियों का संगठन

विक्रय समितियाँ परिमित दायित्व (Limited Liability) वाली होती हैं। प्रत्येक सदस्य को एक हिस्सा खरीदना होता है। किन्तु विक्रय समितियाँ तभी सफल होती हैं जब कि उनके सदस्य अधिक हों। इसी कारण विक्रय समितियाँ तीन चार गाँवों की पैदावार वेचती हैं। छोटी समितियों के सदस्य वे ही हो सकते हैं जो कि फसल स्वयं उत्पन्न करते हों। जो लोग कि कुछ वेचना नहीं चाहते उन्हे सदस्य नहीं बनाया जाता। सदस्यों की जनरल मीटिंग एक मैनेजिग कमेटी का चुनाव करती है यही मैनेजिंग कमेटी समिति का कार्य संचालन करती है। इस कारण यह आवश्यक हो जाता है कि मैनेजिग कमेटी में वे ही लोग रक्खे जावें जो व्यापार से परिचित हों। इन समितियों को अधिक राशि में वस्तुओं को वेचने से ही लाभ हो सकता है। इसलिये जितने भी अधिक सदस्य हों अच्छा है। प्रत्येक सदस्य केवल समिति के द्वारा ही अपनी फसल वेच सकता है स्वतन्त्र रूप से नहीं। इस नियम का कड़ाई के साथ पालन होना चाहिये, नहीं तो उस गाँव के व्यापारी समिति को भंग करने के लिए सदस्यों को उनकी पैदावार का अधिक मूल्य देकर उन्हे फोड़ लेंगे।

फसल कटने पर सदस्य अपनी पैदावार समिति में जमा कर देता है। समिति उसे काम चलाने के लिए अनुमानतः आधा मूल्य उसी समय दे देती है और शेष पैदावार के विक जाने पर चुकाती है। समिति इकट्ठी वस्तु को बाजार मे यथा समय अच्छे दामों पर वेचती है। समिति लाभ का २५ प्रतिशत नियमानुसार रक्षित कोष मे जमा करती है, शेष सदस्यों में उनकी पैदावार के अनुपात से बाँट देती है। इन समितियों को व्यापारियों से प्रति[illegible]त करनी पड़ती है। इस कारण अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए इन्हे

होलसेल सोसाइटी* बना लेनी चाहिये जिससे वे अधिक राशि मे पैदावार को वेच कर व्यापारियो की प्रतिद्वन्द्विता में टिक सके। यह होल-सेल सोसायटी समितियों को व्यापारिक परामर्श देती रहेगी।

क्रय-विक्रय समितियों के सामने निम्नलिखित कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। (१) छोटी होने पर वे व्यापारियों की प्रतिद्वन्द्विता मे टिक नहीं सकतीं। (२) इन समितियों में व्यक्तियों को सदस्य बनाने में यह खतरा है कि व्यापारी अपने आदमियों को उनका सदस्य बनाकर समिति को भंग करने का प्रयत्न करते हैं। अस्तु, केवल साख सहकारी समितियाँ ही उसके सदस्य बनाई जावे किन्तु यह नियम रक्खा जावे कि जो साख समिति के सदस्य नहीं हैं उनकी पैदावार को समिति कमीशन पर वेचेगी (३) इन समितियों के सामने पूँजी की समस्या भी खड़ी होती है। समिति की निजी पूँजी बहुत कम होती है और सेन्ट्रल सहकारी पूँजी के बराबर ही ऋण देते हैं किसान कुछ रुपया पेशगी चाहता है अतएव पूँजी की कमी रहती है।

क्रय-विक्रय समितियों को ओर सरकार तथा जनता दोनों को ही ध्यान देना चाहिये क्योंकि बिना उनके यथेष्ट सख्या मे स्थापित किये किसान को दलालों तथा व्यापारियों की लूट से नहीं बचाया जा सकता। और जब तक उसे अपनी पैदावार का उचित मूल्य नहीं मिलता तब तक उसकी आर्थिक स्थिति नहीं सुधर सकती।

भूमि की चकबन्दी करने वाली समितियाँ
(Consolidation of Land Holdings Socictics)

यह तो पहले ही लिखा जा चुका है कि भारत में किसानों के पास जो भी भूमि है वह छोटे-छोटे खेतों में बँटी हुई है और ये खेत एक दूसरे से दूर हैं। बिखरे हुये छोटे-छोटे खेतों पर अच्छी तरह से खेती नहीं हो सकती क्योंकि किसान का इन बिखरे हुए खेतों पर खेती करने से बहुत सा समय, शक्ति, श्रम, तथा पूँजी नष्ट होती है। यदि सब खेत एक ही स्थान पर हों तो किसान कम खर्च मे अधिक पैदावार उत्पन्न कर सकता है।

---

*होल-सेल सोसाइटी—थोक बिक्री करने वाली समिति जिससे गाँव की समितियाँ सम्बन्धित होती हैं।

अर्थशास्त्र का कहना है कि जब तक बिखरे हुये खेतों की समस्या को हल नहीं किया जाता तब तक खेती का सुधार हो ही नहीं सकता। भारत मे सबसे पहले पू० पंजाब में सहकारिता विभाग ने चकबन्दी सहकारी समितियाँ स्थापित करके बिखरे हुये खेतों की समस्या को हल करने का सफल प्रयत्न किया। अब हम चकबन्दी सहकारी समितियों के सम्बन्ध में विस्तृत रूप से लिखते हैं।

खेती की चकबन्दी करने का सिद्धान्त यह है गाँव मे जितने भी खेतों के मालिक हैं उन सबके खेतों को इस तरह अदल-बदल दिया जावे कि हर एक को अपने सब खेतों के बराबर ही जगह एक चक में या दो या तीन चकों में मिल जावे।

चकबन्दी समिति की स्थापना

किसी गॉव मे चकबन्दी समिति स्थापित करने के पहले सहकारिता विभाग के कर्मचारी गॉव मे जाकर किसानों को बिखरे हुये खेतों से होने वाली हानियॉ और चकबन्दी के लाभ समझते हैं। यदि सहकारिता विभाग का कर्मचारी प्रचार करने के बाद यह समझता है कि उस गॉव के लोग चकबन्दी कराने के लिये राजी हैं तो वह एक सभा करता है और गॉव वालों को बतलाता है कि चकबन्दी किस प्रकार की जावेगी। यदि सब गॉव वाले तैयार होते हैं तो समिति बना ली जाती है और पचायत चुन ली जाती है। समिति का सदस्य मौरूसी किसान हो सकता है।

समिति के सदस्यों को निम्नलिखित बाते स्वीकार करनी पडती हैं:—

१—खेतों की चकबन्दी करने के लिये बिखरे हुये खेतों का नया बॅटवारा होना जरूरी है।

२—यदि नये बॅटवारे को दो तिहाई सदस्य स्वीकार कर लेगे तो वह बॅटवारा सब को स्वीकार करना होगा।

३—नये बॅटवारे के अनुसार वह अपने खेतों को सदा के लिये छोड देगा।

४—यदि किसी प्रकार का झगडा खडा होगा तो पच नियुक्त कर दिये जावेगे और उनका फैसला सबको मानना होगा।

चकबन्दी करने में भी कठिनाइयॉ पडती हैं। सर्वप्रथम सहकारिता

विभाग का कर्मचारी गॉव में कितनी प्रकार की भूमि है यह निश्चित करता है। नये बॅटवारे में जमीन की भिन्न-भिन्न उपजाऊ शक्ति का ध्यान रखना पड़ता है। कुओं में किसानों का हिस्सा निर्धारित किया जाता है और पेड़ों (यदि खेतों पर हों) का मूल्य निश्चित करने के बाद नये बॅटवारे का नकशा बनाया जाता है। यह नकशा सब सदस्यों के सामने रखा जाता है। यदि सब सदस्य नये बटवारे को मान लेते हैं तब तो वह लागू हो जाता है, नहीं तो फिर से नया नकशा तैयार किया जाता है। इस प्रकार कभी-कभी तीन चार बार नकशे तैयार करने पड़ते हैं फिर भी सारा परिश्रम केवल एक किसान के हठ से नष्ट हो जाता है।

यद्यपि नियम २ के अनुसार यदि दो तिहाई सदस्य नये बटवारे को मान ले तो बाकी को उसे मानना पड़ता है, परन्तु इस नियम को काम में नहीं लाया जाता और किसी को भी अपना खेत छोड़ने पर विवश नही किया जाता। ऐसा करने से काम बहुत धीरे होता है। पू० पञ्जाब में इस नियम को कड़ाई के साथ काम में लाने लगे हैं। जब नये बॅटवारे को सब लोग मान लेते हैं तो उन्हे नये खेत दे दिये जाते हैं और उन खेतों की रजिस्ट्री करा दी जाती है।

किन्तु चकबन्दी कराने में बहुत सी कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। जिस योजना में सब किसानों का राजी करना जरूरी हो उसका सफल होना सन्देहजनक हो जाता है। बुड्ढे किसान अपने बाप-दादों की जमीन छोड़ना ही नही चाहते, हर एक किसान को अपनी जमीन अधिक उपजाऊ मालूम होती है। जिस किसी के पास एक या दो खेत हैं उसे चकबन्दी से कोई लाभ नहीं दिखाई देता। मौरूसी काश्तकार यह समझता है कि यदि उसने अपना खेत बदल लिया तो उसके सारे हक छिन जावेंगे। गॉव का पटवारी भी चकबन्दी का विरोध करता है क्योंकि वह समझता है कि चकबन्दी हो जाने से उसकी आमदनी कम हो जावेगी। इन कठिनाइयों के रहते हुये भी यदि कार्यकर्ता धैर्य तथा सहानुभूति से कार्य करे तो वह किसानों को राजी कर सकता है।

चकबन्दी आन्दोलन का प्रारम्भ पू० पञ्जाब में हुआ और वहीं वह सब से अधिक सफल हुआ है। अनुमान किया जाता है कि विभाजन के

पूर्व प्रतिवर्ष दो लाख एकड़ भूमि की पू० पञ्जाब मे चकबन्दी हो गई थी। उत्तर प्रदेश के सहारनपुर तथा बिजनौर जिलों मे चकबन्दी समितियाँ स्थापित की गई हैं जो सफलतापूर्वक चकबन्दी का काम कर रही हैं, किन्तु इनकी सख्या अधिक नहीं है। बड़ौदा और काश्मीर में भी चकबन्दी समितियाँ सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं।

कुछ विद्वानों का कहना है कि बिखरे हुए खेतों की समस्या ऐसी विकट है कि केवल सहकारी चकबन्दी समितियों से ही वह हल न होगी, क्योंकि समितियों के द्वारा कार्य बहुत धीरे होता है। अतएव उनकी राय में सरकार एक कानून बनाकर बिखरे हुये खेतों की चकबन्दी कर दे। मध्यप्रदेश, पूर्वी पञ्जाब तथा उत्तर-प्रदेश मे इस आशय का एक कानून बनाया गया है।

सहकारी कृषि समितियाँ
(Co-operative Farming Societies)

चकबन्दी के पश्चात् भी खेतों का क्षेत्र इतना बड़ा नही होगा कि बड़ी मात्रा की खेती की जा सके अथवा उन्नत कृषि साधनों का उपयोग किया जाय। इसके अतिरिक्त शरणार्थियों को खेती के क्षेत्र मे बसाने तथा देश की भोजन सम्बन्धी कमी पूरी करने के लिये अधिक भूमि में खेती करने की आवश्यकता है। उत्तर प्रदेश की सरकार इस समय तराई, गगा खादर और बुन्देलखंड के प्रदेशों मे ट्रैक्टरों द्वारा भूमि तैयार करके सहकारी ढग पर खेती करने के लिये किसानों को जमीन दे रही है। प्रत्येक किसान सहकारी कृषि समिति का सदस्य होता है। समिति उसके लिये बीज, औजार आदि का प्रबन्ध करती है तथा उसकी अन्य आवश्यकताओ की पूर्ति भी करती है। किसान को अपने माल की बिक्री समिति के द्वारा ही करनी पडती है। समिति किसान को फसल-योजना का भी निश्चय करती है। गंगा खादर मे प्रत्येक परिवार को दस-दस एकड़ भूमि और बैल खरीदने के लिए पेशगी रुपये दिये गये हैं। प्रदर्शन और बीज के सहकारी फार्म खोले जा रहे हैं।

अन्य-प्रदेश मे जो सहकारी खेती के प्रयोग हो रहे हैं कुछ विद्वानों का कथन है कि इसके स्थान पर रूसी ढग पर कृषि व्यवस्था होनी चाहिये। उनके अनुसार सहकारी खेती असफल सिद्ध होगी। कम से कम उन क्षेत्रों

में जहाँ खेती हो रही है इसकी असफलता रहेगी। दर असल सहकारी खेती का प्रयोग होना चाहिये। तभी सफलता का पता चलेगा।

रहन-सहन सुधार समितियाँ
(Better Living Societies)

रहन-सहन सुधार समितियाँ (Better Living Societies) सर्व-प्रथम पू० पञ्जाब में स्थापित की गई और क्रमशः ये अन्य प्रदेशों में स्थापित होती जा रही हैं।

रहन-सहन सुधार समितियों का प्रधान उद्देश्य गाँवों में प्रचलित बुरी रस्मों को बन्द करना, सामाजिक तथा धार्मिक कार्यों के लिए कर्ज लेकर फिजूल खर्च करने की आदत को रोकना, गाँव में सफाई रखना, खेतीबारी को उन्नत करने के उपायों का प्रचार करना, कुओं की मरम्मत करवाना, गाँव की गलियों को ठीक करना, खाद के गड्ढे बनवाना, ट्रेंड दाइयों को गाँव में रखना, घरों में हवा तथा रोशनी के लिए खिड़की तथा रोशनदान लगाने का प्रचार करना, तथा जेवर पर व्यय न करने के लिए गाँव वालों को समझाना है।

इन समितियों का संगठन बहुत सहल है। सदस्यों को हिस्सा नहीं खरीदना पड़ता और न समिति की कोई हिस्सा पूँजी (Share Capital) ही होती है। प्रत्येक गाँव का रहने वाला जो समिति के सिद्धान्त और नियमों का पालन करने को तैयार हो वह समिति का सदस्य बन सकता है। सदस्य को केवल नाम मात्र की प्रवेश फीस देनी होती है। सदस्यों से कोई चन्दा भी नहीं लिया जाता। साधारण सभा (General Meeting) जिसमें सब सदस्य होते हैं कुछ उपनियम बनाती है जिनका पालन प्रत्येक सदस्य के लिये अनिवार्य होता है। उदाहरण के लिए समिति यह निश्चय कर देगी कि शादी, मृत्यु तथा अन्य धार्मिक कार्यों पर अधिक से अधिक एक सदस्य कितना रुपया खर्च कर सकता है। जो भी सदस्य इस नियम की अवहेलना करेगा उसे दण्ड स्वरूप जुर्माना देना होगा। प्रतिवर्ष गाँव के सुधार के लिए समिति एक वार्षिक योजना स्वीकार करती है और उसके सम्बन्ध में नियमादि बना देती है। जो भी सदस्य उन नियमों का पालन नहीं करता उनको दण्ड दिया जाता है। एक वर्ष गाँव की सफाई का

प्रोग्राम बनाया जाता है, सदस्यों को अपनी खाद गड्हों में रखने के लिये कहा जाता है। रहन-सहन सुधार समितियाँ (Better Living Societies) वास्तव में ग्राम सुधार कार्य को करती हैं। इनके द्वारा ग्रामसुधार कार्य अधिक सगठित तथा सुचारु रूप से चल सकता है।

पञ्जाब और उत्तर प्रदेश मे ये समितियाँ अधिक सफल हुई हैं और सख्या में अधिक हैं। पू० पञ्जाब के सहकारिता विभाग के रजिस्ट्रार का कथन है कि जिन गाँवों में समितियाँ स्थापित हो गई हैं वहाँ के रहने वालों को उनके द्वारा हजारों रुपये की बचत होती है। जो भी इन समितियों के सदस्य होते हैं वे नियमानुसार इस प्रकार अपव्यय कर ही नहीं सकते, साथ ही वे अन्य किसी भी गाँव वाले के विवाहोत्सव में सम्मिलित नहीं हो सकते, जहाँ इस प्रकार अपव्यय किया जावे। इस प्रकार समिति का प्रभाव गैर-सदस्यों पर भी पड़ता है। पू० पंजाब तथा उत्तर प्रदेश में ये समितियाँ गाँव की सफाई करवाती हैं, गलियों को साफ तथा एक सा करवाती हैं तथा गाँव वालों को हवा तथा रोशनी का महत्व बतलाकर मकानों में खिड़की और रोशन-दान लगवाती हैं। पू० पञ्जाब में ये समितियाँ जेवर के बनवाने का भी विरोध करती है क्योंकि इससे रुपये का नुकसान तो होता ही है, साथ ही चोरी का भी भय रहता है। उत्तर प्रदेश तथा पू० पञ्जाब दोनों ही में ये समितियाँ सदस्यों को खाद गडहों में रखने के लिए विवश करती हैं जिससे कि गाँव गदा न हो और खाद उत्तम तैयार हो। पञ्जाब में एक समिति ने गोबर के कडे न बनाने का और सारे गोबर की खाद बनाने का निश्चय किया है। पू० पञ्जाब मे तीन सौ से ऊपर रहन-सहन सुधार समितियाँ किसी न किसी रूप मे ग्राम-सुधार कार्य कर रही हैं।

उत्तर प्रदेश में रहन-सहन सुधार समितियों की सख्या पू० पञ्जाब से बहुत अधिक है और साथ ही वे पू० पञ्जाब से अधिक क्रियाशील भी हैं। ऊपर लिखे हुए कार्यों के अतिरिक्त वे कहीं-कहीं अस्पताल चलाती हैं, प्रौढ़ो के लिए रात्रि पाठशालाएँ खोलती हैं, ट्रेंड दाइयाँ रखती हैं, अच्छा बीज खरीद कर बेचती हैं, और कुये बनवाती हैं। उत्तर प्रदेश मे रहन-सहन सुधार समितियाँ प्रदेश के पूर्वीय भाग में अधिक हैं। उत्तर प्रदेशीय सहकारिता विभाग ने परतापगढ तथा मसौधा ((फैजाबाद) मे रहन-सहन सुधार समितियों (परतापगढ

में १५० के लगभग तथा मसौधा मे ७० के लगभग समितियाँ हैं जो ग्राम-सुधार कार्य करती हैं) के द्वारा सगठित रूप में ग्राम-सुधार कार्य किया है और उनमे उसे सफलता भी मिली है ।

यदि देखा जावे तो रहन-सहन सुधार समिति अत्यन्त उपयोगी संस्था है और ग्राम-सुधार कार्य मे इसका बहुत उपयोग हो सकता है ।

उपभोक्ता सहकारी भंडार
(Consumers' Co-operative Stores)

मनुष्य समाज का प्रत्येक सदस्य उपभोक्ता है । प्रत्येक मनुष्य को अपनी आवश्यकताओं को पूरा करना पडता है, इस कारण प्रत्येक मनुष्य को कुछ न कुछ वस्तुओं का उपभोग करना होता है । यदि देखा जावे तो सम्पत्ति का उत्पादन करने वालों तथा उसको उपभोग करने वालों का घनिष्ट सम्बन्ध है । एक दूसरे पर निर्भर हैं किन्तु उत्पादन करने वालों के बीच में इतने दलाल (middlemen) हैं कि वे एक दूसरे से बहुत दूर पड़ जाते हैं । व्यापारी (दलाल) वस्तुओं के उत्पन्न करने वालों को उनका जो मूल्य देते हैं उससे बहुत अधिक मूल्य उपभोक्ताओं से वसूल करते हैं । यहां

एक पौंड रक्खा। २ पैसे प्रति सप्ताह किश्त लेकर दो वर्षों मे २८ पौड पूँजी इकट्ठी की और आरम्भ मे केवल पाँच वस्तुओं (मक्खन, शक्कर, ओट का आँटा, गेहूँ का आटा, तथा मोमबत्ती) को बेचने का प्रबन्ध किया। स्टोर्स सौदा उधार नहीं देता था, किन्तु वस्तुयें शुद्ध तथा तौल में पूरी होती थी। प्रत्येक सदस्य का एक वोट था। लाभ खरीदारी के अनुपात में बाँटा जाता था। उदाहरण के लिए एक सदस्य ने वर्ष में पचास पौड की चीज और दूसरे ने सौ पौड की खरीदी तो दूसरे को दुगुना लाभ मिलता था। सदस्यों को उत्साहित किया जाता था कि वे अपने लाभ का हिस्सा स्टोर्स मे जमा करा दे। इस प्रकार स्टोर्स की पूँजी बढ़ती गई। सदस्यों को उस जमा किये हुये रुपये पर सूद मिलता था।

राकडेल स्टोर्स सफल हो गया, क्रमशः स्टोर्स सब वस्तुएँ सदस्यों को बेचने लगा। राकडेल स्टोर की इस आश्चर्यजनक सफलता को देखकर इगलैंड में शीघ्र ही बहुत से स्टोर्स खुल गये।

इन स्टोर्स की सफलता देखकर फुटकर विक्रेता (दूकानदार) चौंके और उन्होंने उनका विरोध करना शुरू किया। उन्होंने मिलकर थोक व्यापारियों पर जोर डाला कि वे स्टोर्स को अधिक मूल्य पर वस्तुएँ दे। अब सहकारी स्टोर्स के सामने एक कठिन समस्या उपस्थित हुई। किन्तु उन्होंने आपस मे मिल कर होल-सेल सोसायटी स्थापित कर ली। होल-सेल सोसायटी सीधे कारखानों से वस्तुएँ मोल लेकर स्टोर्स को थोक मूल्य पर बेचती हैं। इस प्रकार स्टोर्स ने थोक व्यापारियों के लाभ को भी छीन लिया। प्रत्येक स्टोर्स इस होल-सेल-सोसायटी का सदस्य होता है। सोसायटी का वार्षिक लाभ स्टोर्स में अपनी खरीदारी के अनुपात मे बाँट दिया जाता है। अन्त में होल-सेल सोसायटी ने उन वस्तुओं को जिनको स्टोर्स खरीदते थे स्वयं ही कारखाने खडे करके बनाना आरम्भ कर दिया। बूट, साबुन, कपड़ा धोने का साबुन, मोजे, बनियाइन, कपडा, फर्नीचर, सिगरेट, लोहे, टिन की वस्तुएँ छापेखाने, तेल, आटा, मक्खन, मोमबत्ती तथा अन्य आवश्यक वस्तुएँ बनाने के कारखाने खोले गये। सोसायटी ने अनाज, तरकारी तथा फल उत्पन्न करने के लिये फार्म खोले। आसाम मे चाय के बाग मोल लिये। कहने का तात्पर्य यह है कि वह प्रत्येक वस्तु को स्वय उत्पन्न करने लगी। इस प्रकार

उपभोक्ताओं ने स्टोर्स को स्थापित करके फुटकर दूकानदारी, थोक व्यापारियों तथा कारखाने के लाभ को भी छीन लिया।

सहकारी स्टोर्स (भंडार) के मुख्य-नियम

(१) सहकारी स्टोर्स परिमित दायित्व (Limited Liability) वाली सस्था होती है।

(२) प्रत्येक सदस्य को स्टोर्स के हिस्से खरीदने होते हैं, किन्तु वोट देने का अधिकार हिस्से के हिसाब से नहीं होता है। प्रत्येक सदस्य को केवल एक वोट देने का ही अधिकार होता है।

(३) प्रत्येक सदस्य को उन वस्तुओं को जो स्टोर वेचता है स्टोर से ही खरीदनी पडती है।

(४) स्टोर उधार नहीं वेचता और बाजार भाव पर ही शुद्ध और अच्छी वस्तुएँ देता है। भाव में कमी नहीं करता।

(५) एक चौथाई लाभ रक्षित कोष में जमा किया जाता है और शेष सदस्यों में उनकी खरीदारी के अनुपात में बाँट लिया जाता है।

(६) सदस्यों की सभा जनरल मीटिंग कहलाती है। स्टोर्स की नीति वही निर्धारित करती है और उसका प्रबन्ध करने के लिये एक प्रबन्धकारिणी समिति (Managing Committee) चुन देती है। प्रबन्धकारिणी समिति स्टोर्स का प्रबन्ध करती है।

भारत मे उपभोक्ता भंडार

भारत मे अभी तक उपभोक्ता स्टोर्स असफल हो रहे हैं। यदि कहीं-कहीं थोडे से स्टोर्स सफल दृष्टिगोचर होते हैं तो भी आन्दोलन सफल नहीं कहा जा सकता। अधिकतर कालेजों और रेलवे के स्टोर्स सफल हुये हैं। इन स्टोर्स को दूकानदारों से प्रतिस्पर्धा नहीं करनी पडती तथा उन्हे बहुत सी अन्य सुविधाएँ प्राप्त होती हैं।

हो गये और देहातों का दिवाला निकल गया। सन् १९३९ के उपरान्त युद्ध के कारण फिर हजारों की सख्या मे स्टोर्स खुल गये हैं किन्तु कन्ट्रोलों के समाप्त हो जाने पर उनकी क्या दशा होगी यह कह सकना कठिन है। मद्रास मे एक होल-सेल सोसायटी भी बन गई है।

भारत मे भडारों की असफलता के मुख्य कारण

यह तो सर्वविदित है कि धनी व्यक्ति तो भडार की ओर आकर्षित नहीं होते क्योंकि यदि उन्हे अपनी वस्तुओं की खरीदारी पर वर्ष के अंत मे कुछ लाभ मिलता है तो वह उनके लिये कोई अधिक बचत नहीं होती। इगलैंड में स्टोर्स आन्दोलन ने अधिकतर मजदूरों और निचले मध्यवर्ग के लोगों को आकर्षिक किया है। भारत मे कारखानों के मजदूर अशिक्षित और निर्धन हैं इस कारण सङ्गठन के महत्व को नहीं समझते। वे अधिकतर दूकानदारों के ऋणी हैं। साथ ही वे स्थायो रूप से कारखानों मे काम नहीं करते, कुछ वर्षो के बाद वे अपने गाँवों को चले जाते हैं। इस कारण वे स्टोर्स के हिस्से लेकर उसके सदस्य नहीं बनना चाहते।

रहा मध्यवर्ग, वह भी स्टोर्स की ओर आकर्षित नहीं होता क्योंकि व्यापारिक तथा औद्योगिक केन्द्रों में प्रत्येक वस्तु की इतनी अधिक दूकानें होती हैं कि थोक और फुटकर मूल्य में अधिक अन्तर नही होता, प्रत्येक दूकानदार महीने के अन्त में मूल्य लेता है और परचूनी वाले घर पर ही सामान पहुँचा देते हैं। ये सुविधाएँ स्टोर्स नहीं दे सकता।

भारत में सहकारी स्टोर्स के साथ पूँजी की भी कठिनाई होती है। सदस्यों के लिये हुए हिस्सों से इतनी पूँजी इकट्ठी नहीं होती कि काम चल जाये और सेंट्रल तथा डिस्ट्रिक्ट बैंक उन्हे ऋण नहीं देते। एक कमी और है जिसके कारण भारत में स्टोर्स आन्दोलन पनप नहीं सका वह है होल-सेल सोसायटी की कमी। स्टोर्स थोक व्यापारियों से माल खरीदते हैं पर थोक व्यापारी उनसे मूल्य अधिक लेते हैं इस कारण स्टोर्स को अधिक लाभ नहीं हो सकता। यदि होल-सेल सोसायटी स्थापित हो जावे तो थोक व्यापारियों का लाभ भी सदस्यों के लिये सुरक्षित किया जा सकता है।

ऊपर लिखे कारणों से स्टोर्स आन्दोलन भारत में न फैल सका, अब

हम उन कारणों को लिखते हैं जिनसे वे थोड़े से स्टोर्स जो खोले गए थे असफल हो गये।

स्टोर्स की असफलता का मुख्य कारण यह है कि सदस्य स्टोर आन्दोलन के मुख्य सिद्धान्त को भूल जाते हैं। वे समझते हैं कि स्टोर्स सस्ती चीजे बेचने के लिए खोला गया है। इसका फल यह होता है कि जब बाजार भाव सस्ता हो जाता है तो स्टोर्स की दशा खराब हो जाती है, और सदस्य स्टोर्स में चीजे न खरीद कर दूकानदार से खरीदने लगते हैं। स्टोर असफल हो जाता है।

सिद्धान्त तो यह है कि वस्तुएँ बाजार भाव पर बेची जायें किन्तु चीजें अच्छी हों और तौल में पूरी हों। असफलता का दूसरा मुख्य कारण है सौदा उधार देना। स्टोर को सौदा उधार देने के कारण थोक व्यापारियों से माल उधार लेना पड़ता है।

असफलता का तीसरा मुख्य कारण प्रबन्ध का ठीक न होना और व्यय का अधिक होना है। सदस्यों द्वारा निर्वाचित प्रबन्धकारिणी समिति तथा सदस्य स्टोर के कार्य में दिलचस्पी नहीं लेते और न अपना समय ही देते हैं। फल यह होता है कि वैतनिक मैनेजर तथा सेल्समेन ही स्टोर के कर्ता-धर्ता बन जाते हैं।

१६३६ के उपरान्त महायुद्ध के कारण खाने-पीने की चीजों का दाम जब बहुत बढ़ गया और कहीं-कहीं उन वस्तुओं का मिलना भी कठिन हो गया तब सहकारी स्टोर्स स्थापित करने की ओर लोगों का ध्यान गया। इसी कारण पिछले दो तीन वर्षों में सैकड़ों की सख्या में उपभोक्ता स्टोर्स प्रत्येक प्रदेश में स्थापित हो गए हैं और होते जा रहे हैं। यह कहना कठिन है कि नियत्रण के हटने पर जब सब चीजे आसानी से मिलने लगेगी तब भी ये स्टोर्स रहेगे या टूट जावेगे।

मदरास और बम्बई प्रदेशों मे इन स्टोरों की होल-सेल यूनियनें भी स्थापित हो गई हैं जो अपने सम्बधित स्टोरों के लिए थोक माल खरीदती हैं और स्टोरों को बेच देती हैं।

मदरास का ट्रिपलीकेन स्टोर

भारत में केवल ट्रिपलीकेन स्टोर ने आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त

की है। यह स्टोर ६ अप्रैल १६०४ को खोला गया। आरम्भ में केवल आठ-आठ रुपये के दो कर्मचारी रक्खे गए। स्टोर के जन्मदाताओं ने स्टोर की देखभाल में बहुत समय देना शुरू किया। जहाँ तक हुआ व्यय कम किया गया। स्टोर सफल हुआ। आज स्टोर की बीस शाखायें काम कर रही हैं। ६ के पास अपनी निजी इमारतें हैं। स्टोर वर्ष मे ग्यारह या बारह लाख रुपये की वस्तुऍ बेचता है। स्टोर की चुकाई हुई पूॅजी एक लाख रुपये से अधिक है और रक्षित कोष (Reserve Fund) डेढ लाख रुपये के लगभग है।

मदरास और मैसूर में स्टोर कुछ सफल हुए हैं। बगलोर का स्टोर भी एक अत्यन्त सफल सस्था है, परन्तु वह ट्रिपलीकेन स्टोर से छोटा है। भारत में स्टोर्स की संख्या बहुत कम है। उत्तर प्रदेश में नए स्टोर्स खुल रहे हैं। भारत के अधिकतर स्टोर्स असफल हैं।

महायुद्ध और स्टोर

द्वितीय महायुद्ध के समय भी कट्रोल के कारण तथा आवश्यक वस्तुओं के न मिलने के कारण बहुत बडी सख्या में सहकारी उपभोक्ता स्टोर्स खोले गए थे। अभी यह कह सकना बहुत कठिन है कि जब यह कन्ट्रोल्ज़ इत्यादि टूट जावेंगे तब ये स्टोर्स व्यापारियों की होड में टिक सकेंगे या नहीं। कम से कम इस समय तो प्रादेशिक सरकार की नीति राशन तथा कन्ट्रोल की वस्तुओं का वितरण उपभोक्ता स्टोर्स के द्वारा कराने की है। शहर और गॉव मे स्थान-स्थान पर ये स्टोर खोले जा रहे हैं। सन् १६४८ के आरम्भ में जब कन्ट्रोल हटाया गया था, सरकार को विश्वास दिलाया गया था कि व्यापारी-गण अब धोखाधड़ी और बेईमानी नहीं करेंगे। परन्तु सरकार को धोखा हुआ और अब सरकार व्यापारियों के हित-अहित का ध्यान छोड़ कर सहकारी स्टोरों की व्यवस्था कर रही है। उत्तर प्रदेश मे कई हजार सहकारी स्टोर्स स्थापित किये जा चुके हैं परन्तु उनकी सबसे बडी कमजोरी सहकारी शिक्षा का अभाव तथा कम प्रचार है।

अभ्यास के प्रश्न

१—गैर साख कृषि सहकारी समितियों को क्यों स्थापित किया गया? उनकी आवश्यकता क्यों पडी?

२—केवल साख कृषि सहकारी समिति से ही किसान की सारी समस्यायें क्यों हल नही हो सकती ?

३—गाँव वालों को गाँव के बनिये से चीजें खरीदने में क्या हानि होती है ? यदि वे क्रय-समिति बना लें तो उनको क्या लाभ होगा ?

४—यदि तुमसे कहा जावे कि तुम अपने गाँव मे एक क्रय-समिति बनाओ तो तुम उसका संगठन किस प्रकार करोगे ?

५—क्रय-समिति अपने सदस्यो की आवश्यकताओं को किस प्रकार पूरा करती है ?

६—गाँव के महाजन बाहर से आने वाले व्यापारियों के एजेन्ट तथा मंडी में अपनी पैदावार बेचने से किसान की क्या हानि होती है ?

७—इस स्थिति में जिसमें कि किसान आजकल है वह अपनी पैदावार का उचित मूल्य क्यों नहीं पा सकता ?

८—विक्रय समितियाँ क्या कार्य करती हैं ? किसानों को विक्रय-समिति के सदस्य बनने से क्या लाभ होता है ?

९—विक्रय समिति का संगठन किस प्रकार होता है और वह किस प्रकार सदस्यों की पैदावार को बेचती है ?

१०—विक्रय-समिति को सफलतापूर्वक चलाने मे कौन-कौन सी कठिनाइयाँ पड़ती हैं ?

११—चकबन्दी समितियाँ किस प्रकार गाँव के बिखरे हुये खेतों की चकबन्दी करती हैं ?

१२—चकबन्दी समिति के स्थापित होने तथा उसके सफलतापूर्वक चकबन्दी करने मे क्या-क्या अड़चनें आती हैं ? क्या इनके स्थान पर सहकारी कृषि समितियाँ स्थापित की जायँ ?

१३—रहन-सहन-सुधार समितियों का क्या उद्देश्य है और वे कौन-कौन से कार्य करती हैं ?

१४—रहन-सहन सुधार समितियाँ कहाँ-कहाँ सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं ?

१५—इंगलैंड में उपभोक्ता स्टोर आन्दोलन का विवरण लिखिए।

१६—उपभोक्ता स्टोर जिन नियमों के अनुसार काम करता है उनको बतलाइये।

[illegible] ८ अप्रैल १९०४ को खोला गया। आरम्भ में केवल आठ-आठ रुपये के दो कर्मचारी रक्खे गए। स्टोर के जन्मदाताओं ने स्टोर की देखभाल मे बहुत समय देना शुरू किया। जहाँ तक हुआ व्यय कम किया गया। स्टोर सफल हुआ। आज स्टोर की बीस शाखायें काम कर रही हैं। ६ के पास अपनी निजी इमारतें हैं। स्टोर वर्ष में ग्यारह या बारह लाख रुपये की वस्तुएँ बेचता है। स्टोर की चुकाई हुई पूँजी एक लाख रुपये से अधिक है और रक्षित कोष (Reserve Fund) डेढ लाख रुपये के लगभग है।

मदरास और मैसूर में स्टोर कुछ सफल हुए हैं। बंगलोर का स्टोर भी एक अत्यन्त सफल सस्था है, परन्तु वह ट्रिपलीकेन स्टोर से छोटा है। भारत में स्टोर्स की सख्या बहुत कम है। उत्तर प्रदेश में नए स्टोर्स खुल रहे हैं। भारत के अधिकतर स्टोर्स असफल हैं।

महायुद्ध और स्टोर

द्वितीय महायुद्ध के समय भी कन्ट्रोल के कारण तथा आवश्यक वस्तुओं के न मिलने के कारण बहुत बडी सख्या में सहकारी उपभोक्ता स्टोर्स खोले गए थे। अभी यह कह सकना बहुत कठिन है कि जब यह कन्ट्रोल्ज़ इत्यादि टूट जावेंगे तब ये स्टोर्स व्यापारियों की होड में टिक सकेंगे या नहीं। कम से कम इस समय तो प्रादेशिक सरकार की नीति राशन तथा कन्ट्रोल की वस्तुओं का वितरण उपभोक्ता स्टोर्स के द्वारा कराने की है। शहर और गाँव मे स्थान-स्थान पर ये स्टोर खोले जा रहे हैं। सन् १९४८ के आरम्भ मे जब कन्ट्रोल हटाया गया था, सरकार को विश्वास दिलाया गया था कि व्यापारी-गण अब धोखाधडी और बेईमानी नहीं करेंगे। परन्तु सरकार को धोखा हुआ और अब सरकार व्यापारियों के हित-अहित का ध्यान छोड कर सहकारी स्टोरों की व्यवस्था कर रही है। उत्तर प्रदेश मे कई हजार सहकारी स्टोर्स स्थापित किये जा चुके हैं परन्तु उनकी सबसे बडी कमजोरी सहकारी शिक्षा का अभाव तथा कम प्रचार है।

अभ्यास के प्रश्न

१—गैर साख कृषि सहकारी समितियों को क्यों स्थापित किया गया? उनकी आवश्यकता क्यों पडी?

२—केवल साख कृषि सहकारी समिति से ही किसान की सारी समस्यायें क्यों हल नहीं हो सकतीं ?

३—गाँव वालों को गाँव के बनिये से चीजे खरीदने में क्या हानि होती है ? यदि वे क्रय-समिति बना लें तो उनको क्या लाभ होगा ?

४—यदि तुमसे कहा जावे कि तुम अपने गाँव में एक क्रय-समिति बनाओ तो तुम उसका सगठन किस प्रकार करोगे ?

५—क्रय-समिति अपने सदस्यो की आवश्यकताओं को किस प्रकार पूरा करती है ?

६—गाँव के महाजन बाहर से आने वाले व्यापारियों के एजेन्ट तथा मडी में अपनी पैदावार बेचने से किसान की क्या हानि होती है ?

७—इस स्थिति में जिसमें कि किसान आजकल है वह अपनी पैदावार का उचित मूल्य क्यों नहीं पा सकता ?

८—विक्रय समितियाँ क्या कार्य करती हैं ? किसानों को विक्रय-समिति के सदस्य बनने से क्या लाभ होता है ?

९—विक्रय समिति का सगठन किस प्रकार होता है और वह किस प्रकार सदस्यों की पैदावार को बेचती है ?

१०—विक्रय-समिति को सफलतापूर्वक चलाने में कौन-कौन सी कठिनाइयाँ पड़ती हैं ?

११—चकबन्दी समितियाँ किस प्रकार गाँव के बिखरे हुये खेतों की चकबन्दी करती हैं ?

१२—चकबन्दी समिति के स्थापित होने तथा उसके सफलतापूर्वक चकबन्दी करने में क्या-क्या अड़चनें आती हैं ? क्या इनके स्थान पर सहकारी कृषि समितियाँ स्थापित की जायँ ?

१३—रहन-सहन-सुधार समितियों का क्या उद्देश्य है और वे कौन-कौन से कार्य करती हैं ?

१७—भारत में उपभोक्ता स्टोर आन्दोलन क्यों असफल रहा ?

१८—उपभोक्ता स्टोर से क्या लाभ हैं ? यदि तुम्हारे स्कूल में विद्यार्थी उपभोक्ता स्टोर खोलना चाहे तो तुम उसके लिए कौन से नियम पसन्द करोगे ?

१९—निम्नाकित किसी सहकारी समिति को व्यवस्था और कार्य-प्रणाली का वर्णन कीजिये।

(क) उपभोक्ता स्टोर (१९४८)

(ख) रहन-सहन सुधार-समिति (१९४६)

(ग) सहकारी कृषि-समिति।

२०—तुम्हारे प्रदेश में कौन-कौन सी कृषि सहकारी समितियाँ चालू हैं ? वे किस प्रकार से ग्रामीणों की हालत सुधारने में सहायता करती हैं ? (१९४४)

२१—उपभोक्ता स्टोर या बिक्री समिति के सिद्धान्त समझाइए। (१९४४)

२२—औद्योगिक केन्द्रों मे सहकारी उपभोक्ता स्टोरों की क्या आवश्यकता है ? आपके प्रदेश में ऐसे स्टोर क्यों सफल नहीं हुए हैं ? (१९४३)

इकतीसवाँ अध्याय

सहकारी समितियों के संघ

(Union of Co-operative Societies)

सहकारिता आन्दोलन सर्वसाधारण का आन्दोलन है। उसे बाहरी सहायता पर निर्भर न रह कर स्वावलम्बी बनाना चाहिये। साख समितियों को डिपाजिट आकर्षित करके कार्यशील पूँजी स्वय इकट्ठी करनी चाहिए। परन्तु भारत में जब साख समितियाँ डिपाजिट आकर्षित करने में असफल रहीं तो सेन्ट्रल बैंक अथवा बैङ्किंग यूनियन की स्थापना करनी पड़ी। सहकारी समितियों की देखभाल साधारणत: उनकी पचायत को करनी चाहिये। किन्तु अशिक्षा के कारण जब पचायतें अपना कार्य सुचारु रूप से न कर सकीं तो सुपरवाइजिंग यूनियन की स्थापना की गई जो अपने से सम्बन्धित समितियों की देखभाल करती हैं। किन्तु आय-व्यय निरीक्षण तथा सहकारिता के सिद्धान्तों की शिक्षा का कार्य तो सहकारी समितियों की सम्मिलित यूनियन ही कर सकती हैं।

भारत में प्रत्येक प्रदेश में प्रदेशीय सहकारी यूनियन अथवा प्रदेशीय सहकारी इंस्टिट्यूट की स्थापना हो चुकी है। इन प्रदेशीय संस्थाओं का मुख्य कार्य प्रचार करना, समितियों का संगठन, साहित्य प्रकाशन, समितियों की देखभाल, तथा उनका निरीक्षण करना है।

भारत में दो प्रकार की यूनियन, गारंटी यूनियन तथा सुपरवाइजिंग यूनियन अधिक संख्या में स्थापित की गई हैं, अतएव हम उनके विषय में विस्तारपूर्वक लिखते हैं।

गारंटी यूनियन (Guarantee Union)

गारंटी यूनियन सेन्ट्रल बैंक द्वारा साख समितियों को दिये हुये ऋण की गारंटी देती हैं। तीस या चालिस सहकारी साख समितियाँ मिलकर एक गारंटी यूनियन बनाती हैं। जो भी साख समिति गारंटी यूनियन की सदस्य बनती है वह अपनी साधारण सभा में निश्चय करती है कि यदि गारंटी यूनियन से सम्बन्धित कोई समिति अपना ऋण नहीं चुका पावेगी तो समिति एक निश्चित रकम तक उस दिवालिया समिति के ऋण को चुकाने की गारंटी देती है। इस प्रकार यूनियन से सम्बन्धित प्रत्येक समिति एक निश्चित रकम की गारंटी देती है। यह सब मिला कर यूनियन की गारंटी होती है और यूनियन साख समितियों के ऋण की गारंटी सेन्ट्रल बैंक अथवा बैंकिंग यूनियन को देती है।

गारंटी यूनियन का जन्म बर्मा में हुआ। तदुपरान्त बम्बई, उत्तर प्रदेश, मध्य-प्रदेश, बरार, पू० बङ्गाल, विहार और उड़ीसा में भी इनका प्रयोग किया गया, किन्तु वे असफल रहीं, इस कारण वे क्रमशः टूट गईं, और आगे फिर प्रदेशों में इस प्रकार की यूनियन स्थापित ही नहीं की गईं। अन्य प्रदेशों में देशी राज्यों ने भी फिर इन्हें नहीं अपनाया। यह यूनियन वस्तुतः बेकार थीं, क्योंकि कृषि सहकारी साख समितियाँ अपरिमित दायित्व वाली होती हैं, फिर गारंटी यूनियन की आवश्यकता ही कहाँ रहती है। अपने जन्मस्थान बर्मा के अतिरिक्त और कहीं भी अधिक दिनों वह गारंटी यूनियन नहीं रहीं। विद्वानों का मत है कि बर्मा में सहकारिता आन्दोलन की असफलता में इन यूनियनों का बहुत हाथ है।

सुपरवाइजिंग यूनियन

सुपरवाइजिंग यूनियन के लिए निम्नलिखित कार्यों की आवश्यकता होती है :—कृषि सहकारी समितियों की देखभाल करना, उनकी उन्नति का मार्ग दिखलाना, अपने क्षेत्र में नवीन समितियों का सगठन करना तथा उनकी उन्नति करना, अपने से सम्बन्धित समितियों की पूँजी की आवश्यकता का पता लगाना, तथा उनके सदस्यों कि हैसियत का लेखा तैयार करके उनकी साख निर्धारित करना, समितियों को उनके कार्य-संचालन के विषय मे उचित परामर्श देना, समितियों के सदस्यों तथा पचों को सहकारिता की शिक्षा देने का प्रबन्ध कराना, समितियों को यदि आवश्यकता हो तो क्रय-विक्रय में सहायता देना और सेन्ट्रल बैंक से उनका सम्बन्ध स्थापित करना।

सुपरवाइजिंग यूनियन से सम्बन्धित समितियाँ अपने प्रतिनिधियों को यूनियन की साधारण सभा में भेजती हैं। यूनियन की साधारण सभा एक कार्यकारिणी समिति का निर्वाचन करती है। यह कार्यकारिणी समिति ही यूनियन का सारा प्रबन्ध करती है, और सम्बन्धित समितियों की देख-भाल के लिए एक सुपरवाइजर नियुक्त करती है। प्रत्येक समिति अपनी पूँजी के अनुसार यूनियन को चन्दा देती है। कृषि सहकारी समितियों को सफलतापूर्वक चलाने के लिए सुपरवाइजिंग यूनियन की बहुत आवश्यकता है।

एक यूनियन एक ताल्लुके अथवा एक तहसील के बडे क्षेत्र में कार्य नहीं करती। २० से ४० समितियाँ एक यूनियन से सम्बन्धित रहती हैं। मदरास प्रदेश मे चार सौ के लगभग यूनियन सफलतापूर्वक कार्य करती हैं। बिहार और उडीसा में दो प्रकार की यूनियन हैं, एक तो आय-व्यय-निरीक्षण करती हैं, दूसरी देख-भाल करती हैं। बम्बई मे ये समितियाँ अधिक सख्या मे हैं और सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं। यहाँ यह प्रयत्न किया जा रहा है कि प्रदेश में कोई कृषि सहकारी साख समिति ऐसी न रहे जो किसी न किसी यूनियन से सम्बन्धित न हो। पू० पञ्जाब और उत्तर प्रदेश मे यूनियन नहीं है। वहाँ समितियों की देख-भाल का कार्य प्रदेशीय सहकारी यूनियन अथवा प्रदेशीय सहकारी इंस्टिट्यूट करती है। प्रत्येक प्रदेश मे यह सुपरवाइजिंग यूनियन प्रदेशीय सहकारी यूनियन अथवा इंस्टिट्यूट से सम्बन्धित होती है। प्रदेशीय यूनियन इनका सगठन और देख-भाल करती है।

प्रदेशीय सहकारी यूनियन (Frovinicial Co-operative Union)

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि प्रत्येक प्रदेश में एक सहकारी यूनियन का इंस्टिट्यूट है। पहले प्रदेशीय सहकारी यूनियन नहीं थीं। उस समय यह अनुभव हुआ कि सारे प्रदेश में सहकारी आन्दोलन की उन्नति करने के लिए कोई सस्था होनी चाहिए। प्रदेश भर के गैर सरकारी सहकारी कार्यकर्त्ता आपस में मिल कर विभिन्न समस्याओं पर परामर्श और विचार नहीं कर पाते थे। न प्रदेशीय सहकारी विभाग के अतिरिक्त कोई उस आन्दोलन के सम्बन्ध में लिखित प्रचार करता था। सहकारी प्रचार कार्य को सदेह की दृष्टि से देखा जाता था। फिर सरकारी विभाग काम भी नगण्य प्राय: करते थे। "दिखावट अधिक, काम कम।" सहकारी शिक्षा का भी सरकारी ढग से प्रबन्ध नहीं हो पाता था। अत: यह सोचा गया कि इन सब कार्य के लिए एक प्रदेशीय गैर सरकारी सहकारी व्यवस्था की जाय। अतः प्रदेशीय सहकारी यूनियन बनाई गई। वह प्रदेशीय यूनियन गैर सरकारी व्यक्तियों को जो इस आन्दोलन में सहानुभूति रखते हैं एक सूत्र मे सगठित करती है। एक प्रकार से सहकारिता आन्दोलन का यह प्रदेश मे नेतृत्व करती है। मुख्य कार्य ये हैं :—

(१) सहकारिता आन्दोलन की समस्याओं पर प्रकाश डालना। इसके लिए प्रतिवर्ष वह एक सम्मेलन करती है जिसमें प्रदेश के कार्यकर्ता भाग लेते हैं, और इस आन्दोलन के सम्बन्ध में अपने विचार प्रगट करते हैं।

(२) पुस्तके तथा पत्र निकाल कर तथा अन्य प्रकार से प्रचार-कार्य करना।

(३) सहकारी शिक्षा का प्रबन्ध करना, इसके लिये ये कक्षायें तथा स्कूल खोलती हैं जिसमें सहकारिता की शिक्षा का प्रबन्ध किया जाता है।

(४) सहकारिता विभाग के रजिस्ट्रार* तथा प्रदेशीय सरकार को सहकारिता सम्बन्धी मामलों में राय देती है।

---

*प्रदेशीय सरकार की ओर से नियुक्त कर्मचारी जो प्रदेश में सहकारिता आन्दोलन को चलाता है।

(५) कहीं प्रदेशीय यूनियन सहकारी समितियों के निरीक्षण, सगठन तथा आय-व्यय-निरीक्षण का कार्य भी करती हैं।

अभ्यास के प्रश्न

१—गारटी यूनियन क्या कार्य करती है? यह यूनियन असफल क्यों हुई?

२—सुपरवाइजिंग यूनियन के कार्यों का उल्लेख कीजिये?

३—सुपरवाइजिंग यूनियन की क्यों आवश्यकता है?

४—प्रदेशीय सहकारी यूनियन के मुख्य कार्य क्या हैं?

५—प्रदेशीय सहकारी यूनियन की प्रदेश मे सहकारिता आन्दोलन की उन्नति करने के लिए क्यों आवश्यकता हुई?

बत्तीसवाँ अध्याय

सेन्ट्रल सहकारी बैङ्क

(Co-operative Central Banks and Banking Unions)

आरम्भ में जब भारत मे सहकारी साख-समितियाँ स्थापित की गईं तब यह आशा की जाती थी कि ग्रामीण जनता उन समितियों में रुपये जमा करेगी और समितियों के पास सदस्यो को ऋण देने के लिए डिपाजिट द्वारा यथेष्ट पूँजी आ जावेगी। इस कारण सन् १९०४ के सहकारिता कानून के अनुसार केवल नगर तथा ग्राम्य साख समितियों की स्थापना का विधान किया गया। किन्तु यह आशा कि गाँवों के रहने वाले इन साख समितियों में रुपया जमा करेंगे पूरी नहीं हुई। इसके दो मुख्य कारण हैं, प्रथम किसान अधिकाश मे निर्धन तथा ऋणी हैं, द्वितीय वे बैङ्कों में अपनी बचत का रुपया जमा करने के अभ्यस्त नहीं हैं। विभाग के रजिस्ट्रार—सरकार अथवा धनी व्यक्तियों से ऋण लेकर समितियों के लिए रुपये का प्रबन्ध करते थे। किन्तु इस प्रकार अधिक दिनों तक काम नहीं चल सकता था।

अस्तु, इस बात की आवश्यकता प्रतीत हुई कि ऐसे सहकारी बैङ्क खोले जावें जो सहकारी साख समितियों के लिए धन इकट्ठा करें। सन् १९१२ में दूसरा सहकारिता कानून पास हो गया और उसके अनुसार सेन्ट्रल बैंक

खोलने की सुविधा हो गई। अतएव सन् १९१२ के उपरान्त सहकारी सेन्ट्रल बैङ्क खोले गये।

सहकारी सेन्ट्रल बैङ्क दो प्रकार के होते हैं। ऐसे सेन्ट्रल बैङ्क जिनके सदस्य केवल सहकारी समितियाँ ही हो सकती हैं। दूसरे प्रकार के सहकारी बैङ्क वे हैं जिनके सदस्य व्यक्ति तथा सहकारी समितियाँ दोनों ही होते हैं।

पहले प्रकार के सेन्ट्रल बैंक जिनके सदस्य केवल सहकारी समितियाँ हो सकती हैं सहकारी बैंकिंग यूनियन कहलाते हैं। वास्तव में बैंकिंग यूनियन ही आदर्श सहकारी सेन्ट्रल बैङ्क है। क्योंकि उससे सम्बन्धित सहकारी समितियाँ ही सेन्ट्रल बैङ्क की नीति को निर्धारित करती हैं और बैङ्क का प्रबन्ध भी उन्हीं समितियों के हाथ में रहता है। भारत में बैङ्किग यूनियन सख्या में अधिक नहीं हैं, सेन्ट्रल बैङ्क ही सख्या मे अधिक हैं।

सेन्ट्रल बैङ्क का क्षेत्र प्रत्येक प्रदेश में भिन्न होता है। उस क्षेत्र की समस्त सहकारी समितियाँ उन सेन्ट्रल बैङ्क से सम्बन्धित रहती हैं। कहीं-कहीं एक जिले में केवल एक ही सेन्ट्रल बैङ्क होता है, ऐसी दशा में उसे जिला सहकारी बैङ्क कहते हैं। उदाहरण के लिए "बरेली डिस्ट्रिक्ट कोआपरेटिव बैङ्क"। उत्तर भारत के प्रदेशों में अधिकतर एक तहसील के लिए एक सेन्ट्रल बैङ्क होता है।

साधारण सभा (General Meeting)

सेन्ट्रल बैङ्क अथवा बैङ्किग यूनियन के हिस्सेदारों की सभा को जनरल मीटिंग या साधारण सभा कहते हैं। साधारण सभा के सदस्यों को केवल एक वोट देने का अधिकार होता है। साधारण सभा ही बोर्ड आफ डायरेक्टर्स (Board of Directors का चुनाव करती है।

बोर्ड आफ डायरेक्टर्स

बोर्ड आफ डायरेक्टर्स बैङ्क का प्रबन्ध करता है। डायरेक्टरों की संख्या अधिक होने के कारण बोर्ड आफ डायरेक्टर्स अपने सदस्यों में से कुछ कमेटियाँ बना देता है जो बैङ्क का काम चलाती हैं।

बैङ्क का दैनिक कार्य अवैतनिक मत्री, चेयरमैन अथवा मैनेजिंग डायरेक्टर या मैनेजर की सलाह से करता है। डायरेक्टरों की फीस अथवा वेतन

कुछ नहीं मिलता। उत्तर प्रदेश तथा अन्य प्रदेशों में अधिकतर बैंक का चेयरमैन, डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट अथवा कोई अन्य सरकारी कर्मचारी होता है। किन्तु अधिकाश प्रदेशों मे चेयरमैन गैर सरकारी ही होता है। सेन्ट्रल बैंकों मे भी बोर्ड आफ डायरेक्टर्स में सहकारी साख समितियों के प्रतिनिधि ही अधिक सख्या में होते हैं।

कार्यशील पूँजी (Working Capital)

सेन्ट्रल बैंक अथवा बैंकिंग यूनियन की कार्यशील पूँजी (Working Capital), हिस्सा पूँजी (Share Capital), रक्षितकोष (Reserve Fund,) डिपाजिट तथा ऋण (Loan) के द्वारा प्राप्त होती है।

साधारणतया सेन्ट्रल बैंक तथा बैंकिंग यूनियन के हिस्सों का मूल्य ५० रु० से लेकर १०० रु० तक होता है। सहकारी साख समितियाँ अपने ऋण के अनुपात से हिस्से लेती हैं। सहकारी कानून के अनुसार सेन्ट्रल बैंक तथा बैंकिंग यूनियन अपने वार्षिक लाभ का २५ प्रतिशत लाभ रक्षित कोष (Reserve Fund) में जमा करती है। हिस्सा पूँजी (Share Capital) तथा रक्षित कोष (Reserve Fund) बैंक की निजी पूँजी होती है। डिपाजिट ऋण ली हुई नहीं होती है।

किन्तु सदस्यों तथा गैर सदस्यों की डिपाजिट ही बैंकिंग कार्यशील पूँजी का बडा भाग होती है। सेन्ट्रल बैंक तथा बैंकिंग यूनियन दो प्रकार की डिपाजिट लेती है, मुद्दती (Fixed) तथा सेविंग्स। किसी-किसी प्रदेश मे चालू खाता * (Current Account) भी रक्खा जाता है, किन्तु चालू खाते मे जोखिम अधिक है। इस कारण अधिकाश बैंक उसे नहीं रखते। डिपाजिट के अतिरिक्त आवश्यकता पडने पर सेन्ट्रल बैंक ऋण भी लेते हैं। अधिकतर सेन्ट्रल बैंक तथा बैंकिंग यूनियन प्रदेशीय सहकारी बैंक से ऋण लेते हैं। उत्तर प्रदेश में रजिस्ट्रार की अनुमति से वे एक दूसरे को ऋण दे सकते हैं।

सेन्ट्रल बैंक अधिकतर अपने से सम्बन्धित सहकारी साख समितियों तथा गैर साख समितियों को ही ऋण देते हैं। किसी-किसी प्रदेश तथा

---

* चालू खाता मे जमा करने वाला जब भी चाहे चेक द्वारा रुपया निकाल सकता है।

राज्य में व्यक्तियों को भी ऋण दिया जाता है, परन्तु अब यह रिवाज बन्द किया जा रहा है।

अपरिमित दायित्व (Unlimited Liability) वाली साख समितियों को सेन्ट्रल बैंक प्रोनोट अथवा बाड पर ही ऋण दे देते हैं। अपरिमित दायित्व होने के कारण उनका प्रोनोट ही यथेष्ट जमानत (Security) है। सहकारी समितियों को प्रोनोट के अतिरिक्त कुछ सम्पत्ति भी गिरवी रखनी होती है।

यह जानने के लिए कि प्रत्येक सहकारी साख समिति को अधिक से अधिक कितना ऋण देना उचित होगा, सेन्ट्रल बैंक अथवा बैंकिंग यूनियन अपने से सम्बन्धित साख समितियों की हैसियत के अनुसार उन साख समितियों की अधिकतम साख (Maximum Credit) निश्चय कर देती है। उससे अधिक ऋण साख समिति को नहीं दिया जाता।

सेन्ट्रल बैंक अधिकतर एक दो वर्षों के लिये ऋण देते हैं। कहीं-कहीं अब भी पुराने कर्जे को अदा करने अथवा भूमि में सुधार करने के लिये पाँच से दस वर्ष तक के लिए ऋण दिया जाता है। किन्तु अब अधिक समय के लिए ऋण देने का कार्य केवल भूमि बंधक बैंक (Land Mortgage Bank) ही सफलतापूर्वक कर रहे हैं।

जब सेन्ट्रल बैंक अथवा बैंकिंग यूनियन के पास आवश्यकता से अधिक धन हो जाता है तो वे प्रदेशीय बैंकों में जमा कर देते हैं। सेन्ट्रल बैंक तथा बैंकिंग यूनियन वार्षिक लाभ का २५ प्रतिशत रक्षित कोष (Reserve Fund) में जमा करके शेष हिस्सेदारों में बाँट देते हैं। किन्तु इन बैंकों के उपनियमों में अधिक से अधिक लाभ की दर भी निश्चित कर दी जाती है जिससे अधिक लाभ हिस्सेदारों को नहीं बाँटा जा सकता है।

यह तो पूर्व ही कहा जा चुका है कि प्रदेशीय बैंक सेन्ट्रल बैंकों के अभिभावकों का कार्य करते हैं। सहकारी साख आन्दोलन का द्रव्य बाजार (Money market) से निकट सम्बन्ध स्थापित हो जावे, इसके लिए यह आवश्यक है कि सहकारी सेन्ट्रल बैंक अन्य बाहरी बैंकों से प्रदेशीय बैंक के द्वारा काम करें। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि प्रदेशीय सहकारी बैंक सेन्ट्रल बैंकों तथा बैंकिंग यूनियन को आपस में एक-दूसरे से ऋण न लेने दें। क्योंकि इससे प्रदेशीय बैंक, सेन्ट्रल बैंकों का अनुशासन ठीक प्रकार से नहीं कर सकते। प्रदेशीय बैंकों को सहकारी साख समितियों से सीधा सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये। सहकारी साख समितियों का प्रबन्ध सेन्ट्रल बैंक तथा बैंकिंग यूनियन से होना चाहिये और सेन्ट्रल बैंकों का सम्बन्ध प्रदेशीय बैंक से होना चाहिए।

प्रदेशीय बैंक अपनी कार्यशील पूँजी के लिए सहकारी साख समितियों, सेन्ट्रल बैंकों, और जनता की डिपाजिट पर निर्भर रहते हैं। जब प्रदेशीय बैंक सर्व-साधारण से डिपाजिट स्वीकार करते हैं, तब उन्हे जमा करने वालों को माँगने पर, देने के लिये नकद रुपया रखना पडता है। कुछ प्रदेशीय सरकारों ने नियम बनाकर कम से कम नकद रुपया कितना रखना चाहिये, यह निश्चय कर दिया है। जितने दिनों के लिये प्रदेशीय बैंकों की डिपाजिट मिलती है, उससे अधिक के लिये वे ऋण नही देते। प्रत्येक प्रदेश मे प्रदेशीय बैंको ने अधिक से अधिक समय निश्चित कर दिया है, जिससे अधिक के लिए वे डिपाजिट स्वीकार नहीं करते। अधिकाश प्रदेशीय बैंक चालू खाता (Current account) भी रखते हैं, केवल पू० पजाब प्रदेशीय बैंक चालू खाता नहीं रखता। प्रदेशीय बैंक डिपाजिट लेने के अतिरिक्त, साधारण बैंकिंग कार्य भी करते हैं। बम्बई, मदरास तथा पू० पञ्जाब प्रदेशीय बैंकों ने लम्बे समय के लिये डिबैंचर (Debenture) भी बेचे हैं। अन्य बैंकों की भाँति प्रदेशीय बैंकों के सामने भी कार्यशील पूँजी (Working capital) की अधिकता तथा कमी की समस्या उपस्थित होती रहती है अतएव प्रदेशीय बैंक एक दूसरे को ऋण देते हैं और आवश्यकता पडने पर थोडे समय के लिये कुछ अधिक सूद देकर डिपाजिट बढाने का प्रयत्न करते हैं।

नियमानुसार, इन प्रदेशीय बैंकों का आय-व्यय-निरीक्षण रजिस्ट्रार के द्वारा होना चाहिये, परन्तु किसी प्रदेश में रजिस्ट्रार ने पेशेवर आडिटरों के द्वारा प्रदेशीय बैंकों के हिसाब की जाँच करवाने की आज्ञा दे दी है। प्रदेशीय बैंक अपनी वार्षिक बैलेंस शीट तैयार करते हैं। कुछ समय हुआ जब "अखिल भारतीय प्रदेशीय सहकारी बैंक एसोशियेशन" (The All India Provincial Co-operative Banks Association) नामक संस्था को जन्म दिया गया है। इस एसोशियेशन का मुख्य कार्य यह है कि वह प्रत्येक प्रदेशीय बैंक की कार्यशील पूँजी की अधिकता तथा कमी के आँकड़ों को जमा करती है और सब प्रदेशीय बैंकों को सूचनार्थ भेज देती है। एसोशियेशन की बैठक दो वर्ष में एक बार होती है, जिसमें सहकारिता आन्दोलन सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार होता है। जब कभी प्रदेशीय बैंकों को सरकार का ध्यान किसी विशेष बात की ओर आकर्षित करना होता है, तो एसोशियेशन ही सरकार से उस सम्बन्ध मे बातचीत करती है।

जब से भारत में रिजर्व बैंक* खुल गया है तब से प्रदेशीय सहकारी बैंकों का सम्बन्ध रिजर्व बैंक के कृषि साख विभाग (Agricultural Credit Department) से स्थापित हो गया है। इसके पूर्व प्रदेशीय सहकारी बैंकों का सम्बन्ध इम्पीरियल बैंकों से था। आवश्यकता पडने पर सहकारी बैंक रिजर्व बैंक से ऋण लेते हैं। भारत में ११ प्रदेशीय सहकारी बैंक हैं और उनकी कार्यशील पूँजी २४ करोड़ रुपये हैं।

अभ्यास के प्रश्न

१—प्रदेशीय सहकारी बैंक क्या-क्या कार्य करता है?

२—प्रदेशीय बैंकों की आवश्यकता क्यों पड़ी?

---

*रिजर्व बैंक:—यह भारत सरकार का बैंक है। इसका मुख्य कार्य सरकारी लेन-देन के काम को करना, मुद्रा (currency) को चलाना, अन्य बैंक का बैंकर बनना, तथा रुपये के विनिमय की दर को स्थिर रखना है। यह बैंक द्रव्य बाजार (money market) पर नियन्त्रण रखता है और दूसरे बैंकों को समय पर ऋण देता है।

३—प्रदेशीय बैङ्क अपने सम्बन्धित सेन्ट्रल बैङ्क को किस तरह सहायता पहुँचाता है ?

४—प्रदेशीय बैङ्कों का सगठन किस प्रकार का है और वे अपनी कार्यशील पूँजी किस प्रकार इकट्ठा करते हैं ?

चौंतीसवाँ अध्याय

सहकारिता आन्दोलन की दशा

भारत मे सहकारिता आन्दोलन को आरम्भ हुये ४० वर्ष से ऊपर समय हो गया किन्तु हमारे गाँवों की दशा में कोई विशेष सुधार हुआ हो, ऐसा नहीं दिखाई देता। इसका कारण यह है कि सहकारिता आन्दोलन अभी कमजोर है। यह तो इसी से ज्ञात हो जाता है कि प्रतिवर्ष बहुत सी सहकारी समितियाँ दिवालिया हो जाती हैं और बहुतों की दशा अच्छी नहीं है।

चालीस वर्षों में इस आन्दोलन को देश मे एक मजबूत आन्दोलन बन जाना चाहिये था, समितियों की उन्नति होनी चाहिए थी, गाँव वालों को दूसरी तरह की सहकारी समितियों की माँग करनी चाहिये थी, महाजन को सहकारी साख समितियों से डरना चाहिए था, समिति के सदस्यों की गरीबी कम होनी चाहिए थी। लेकिन ऐसा कुछ हुआ हो, यह दिखलाई नहीं देता। इससे ही यह जाना जा सकता है कि इस आन्दोलन की हालत अच्छी नहीं है।

सहकारी समितियों की असफलता के नीचे लिखे मुख्य कारण हैं—

(१) किसान का कर्ज से दबा होना। जब तक किसान का कर्ज से छुटकारा नही होता, तब तक वह अपनी उन्नति के किसी भी काम में दिलचस्पी नहीं रख सकता।

(२) गाँव वालों का अशिक्षित होना। समिति का काम करने के लिये शिक्षित होना जरूरी है। इसका फल यह होता है कि समिति का कर्ता-धर्ता …निक मन्त्री हो जाता है, दूसरे सदस्य उसकी ओर से उदासीन हो जाते

है। गाँव और शहर, दोनों जगह सहकारी सिद्धान्तों की शिक्षा का प्रचार किया जाना चाहिये।

(३) सहकारी समितियों और सहकारिता आन्दोलन पर सरकारी देख-भाल बहुत ज्यादा है। सहकारिता विभाग का रजिस्ट्रार ही इस आन्दोलन का सर्वेसर्वा है। इसका फल यह होता है कि अशिक्षित किसान यह समझता है कि ये सरकारी बैंक हैं और हमें कर्ज देने के लिये खोले गये हैं। सह-कारिता की यह भावना कि हम मिल कर स्वय अपने पैरों पर खड़े हों, इससे नष्ट हो जाती है।

(४) सहकारिता आन्दोलन की एक कमजोरी यह भी रही है कि अभी तक सहकारी साख समितियों की ओर अधिक ध्यान दिया गया और गैर साख-समितियों की स्थापना की ओर कम ध्यान दिया गया। किसान को केवल साख की ही जरूरत नही है, वरन् उसको इस बात की भी जरूरत है कि उसकी पैदावार का उसे उचित मूल्य मिले और उसके काम में आने वाली चीजें भी उसे उचित मूल्य पर मिलें। हर्ष की बात है कि सहकारिता विभाग का इस ओर ध्यान गया है और गैर साख समितियाँ अधिक संख्या में, स्थापित की जा रही हैं।

(५) आन्दोलन की कमजोरी का एक वह भी कारण है कि सहकारिता विभाग के इन्सपेक्टर* और आर्गनाइजर‡ सहकारिता के सिद्धान्तों को बिना अच्छी तरह से सदस्यों को समझाए जल्दी मे समितियों का सगठन कर देते हैं। इन कर्मचारियों का तबादला होता रहता है। अतएव यदि ऐसी कमजोर समितियाँ बाद को टूट जावें तो उन पर दोष नहीं आता। इसलिये अपने ऊँचे अफसरों को प्रसन्न करने के लिये वे जल्दी में बहुत सी समितियों का सगठन कर देते हैं।

(६) कहीं कहीं पंच या सरपंच बेईमान होते हैं, और वे समिति के रुपये से स्वय लाभ उठाते हैं।

(७) कही-कहीं महाजन अपने आदमियों को समिति का सदस्य बना

---

*यह सहकारी समितियों की देखभाल के लिये जिले में एक होता है।

‡यह समितियों का संगठन करते हैं और जिले में कई होते हैं।

-कर उसे हथियाने का प्रयत्न करता है और कहीं-कहीं कोई प्रभावशाली आदमी समिति को हथिया लेता है।

(८) साख समितियों से ऋण मिलने मे कभी-कभी बहुत देर हो जाती है। साथ ही जब किसान साख समितियों से कर्ज लेता है तो यह बात छिपी नही रहती। भारतीय किसान यह नहीं चाहता कि लोग जाने कि वह कर्जदार है।

(६) सहकारी आन्दोलन तभी किसी देश मे सफल हो सकता है जब किसानों को निःस्वार्थभाव से सेवा करने के लिए लोग इस आन्दोलन मे आवे। लेकिन भारत के जो भी गैर सरकारी लोग इसमें आये, वे अधिकतर सरकार को प्रसन्न करने के लिए आये। देश मे किसानों की सेवा करने की जिन्हे लगन है, वे इस आन्दोलन से दूर रहे हैं।

ऊपर दिये हुये दोषों से यह न समझ लेना चाहिये कि सहकारिता आन्दोलन से कोई लाभ ही नहीं हुआ। यह ठीक है कि अभी यह कमजोर है, फिर भी सहकारी समितियों से देश को बहुत लाभ हुआ है।

जहाँ साख समितियाँ हैं, वहाँ महाजन ने भी सूद की दर घटा दी है, किसानों मे कमखर्ची की आदत पड रही है, बैङ्किग के सिद्धान्तों की जानकारी बढ रही है, लडाई-झगडे कम हुए हैं। किसानों की फसलों को बेचने और उचित मूल्य दिलाने का प्रबध किया गया है तथा अच्छे बीज का प्रचार किया गया है।

अभ्यास के प्रश्न

१—निम्नाकित में से किन्ही चार पर सक्षिप्त टिप्पणी लिखिये :—

(क) प्रदेशीय सहकारी बैङ्क (ख) सतुलित भोजन (ग) खत्ती (घ) खेतों की छोटाई (ङ) कृषि विभाग (च) रहन-सहन का तल (छ) उत्तर प्रदेश में भूमि व्यवस्था। (१६४३)

२—किसी पाँच पर नोट लिखिए :—

मुद्रा। बटाई प्रथा। ग्राम पचायत। उपभोग। विलासिता की वस्तुये। ज.। खेवट। शिकमी किसान। (१६४५)

३—निम्नलिखित विषयों मे से चार पर टिप्पणी लिखिए :—

सन्तुलित भोजन। छितरे खेत। घरेलू बजट। हाट और मेला। उत्पत्ति के साधन। सम्पत्ति। उपयोगिता। (१६४५)

४—किन्हीं तीन पर टिप्पणी लिखो :—

सहकारी भूमिबन्धक बैंक। प्रदेशीय सहकारी यूनियन। गारटी यूनियन। प्रदेशीय सहकारी बैंक। जीवन सुधार समिति। क्रय-विक्रय समिति।

(१६४५)

५—निम्नलिखित मे से किन्हीं चार पर नोट लिखो :—

(क) भाग (ख) बचत और गुप्त सचय (ग) अदल-बदल (घ) बटाई प्रथा (ङ) कुल सूद (च) बिखरे खेत (छ) राष्ट्रीय सम्पत्ति। (१६४६)

६—किन्हीं पाँच पर नोट लिखिए :—

कीमत; बटाई प्रथा; बाजार; पूँजी; मुद्रा, रबी की फसल; ठेके की मजदूरी; कुल सूद। (१६४१)

७—निम्नलिखित में से किन्हीं चार पर टिप्पणी लिखिए :—

(क) पंचायत (ख) बेगार (ग) शिकमी किसान (घ) खसरा (ङ) खत्ती (च) अच्छा रहन-सहन का दर्जा (छ) बैंक (ज) हाट और मेला।

(१६४८)

———